एस.सी.ई.आर.टी., बिहार
द्वारा विकसित

F1

दो वर्षीय सेवापूर्व डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन

समाज, शिक्षा और पाठ्यचर्या की समझ

भाग–1 (प्राथमिक स्तर)

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार

बिहार सरकार

एस.सी.ई.आर.टी., बिहार द्वारा विकसित

दो वर्षीय सेवापूर्व
डिप्लोमा इन एलिमेण्ट्री एजुकेशन

समाज, शिक्षा और पाठ्यचर्या की समझ

(प्राथमिक स्तर)

F-1

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार – 800006
तकनीकी सहायता: Implementation Support Agency, SCERT Bihar

प्रकाशक

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, बिहार

© एस.सी.ई.आर.टी., बिहार

विश्व बैंक सम्पोषित परियोजना के अन्तर्गत
डी.एल.एड. (फेस–टू–फेस) के साधनसेवियों एवं प्रशिक्षुओं हेतु

दो शब्द

शिक्षा अपने क्रियात्मक रूप में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया है। इस क्रम में शिक्षा एक तरफ समाजीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हुए उसकी निरंतरता को बनाए रखती है तो दूसरी तरफ सांस्कृतिक बौद्धिक संदर्भों को पुनर्निर्मित करते रहती है। बेहतर और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए अनिवार्य है कि बच्चों को समझा जाए। बच्चों की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की समझ के साथ–साथ उनके शैक्षिक विकास के निमित्त विभिन्न काल खंडों में प्रवृत शैक्षिक चिंतन की समझ भी शिक्षकों के लिए आवश्यक है। पुनः विद्यालय में सीखने सिखाने की प्रक्रिया को आकार देने वाली पाठ्यचर्या तथा बच्चों को परिवेशीय संदर्भ को समेटे स्थानीय पाठ्यचर्या की समझ भी शिक्षक के लिए उतना ही आवश्यक है।

एक शिक्षक को विद्यालय के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ज्ञानात्मक संदर्भ में अन्तः क्रियात्मक गतिविधियों का संचालन करते हुए निरंतर ज्ञान मिमांसीय चिंतन में संलग्न रहना पड़ता है। इन सब के आलोक में यह विषय पत्र 'समाज, शिक्षा और पाठ्यचर्या की समझ' शिक्षकों को शिक्षा और ज्ञान की बुनियादी समझ के साथ–साथ बच्चों के संदर्भ और उनकी समाजीकरण की प्रक्रिया की समझ को व्यापक आधार प्रदान करेगा। निश्चित रूप से यह विषय पत्र शिक्षकों को एक सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ आलोचनात्मक चिंतन की ओर प्रवृत्त करेगा। पुनः प्रारंभिक विद्यालयों की शिक्षायी प्रक्रिया को बेहतर और गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए योग्य और प्रतिबद्ध शिक्षकों के विकास में इस विषय पत्र और संदर्भित सामग्री का यथोचित योगदान रहेगा।

आमुख

शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है जो बच्चों के समाजीकरण को सुदृढ़ आधार प्रदान करती है। साथ ही यह समाज के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक संदर्भों को भी पुनर्निर्मित करती है जहां बच्चों का बचपन आकार ग्रहण करता है। वस्तुतः किसी भी समाज के लिए उसके बच्चे अति महत्वपूर्ण होते हैं। बच्चों के सामाजिक–सांस्कृतिक तथा बौद्धिक विकास की दिशा और दशा से उस समाज के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। बच्चों के प्रति संवेदनशीलता और उनके विकास का सतत प्रयास हमारी सामाजिक प्रतिबद्धता भी है। इस में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

वस्तुतः शिक्षा स्वयं में बच्चों के समाजीकरण की एक व्यापक प्रक्रिया है। शिक्षा और शैक्षिक प्रक्रिया में सन्निहित और आने वाली चुनौतियों की समझ और तदनुरूप रणनीतियों तथा उनके क्रियान्वयन की व्यापक समझ निश्चित रूप से एक शिक्षक को होनी चाहिए। बच्चों की शिक्षा और समाजीकरण में परिवार, अभिभावक, विद्यालय, शिक्षक इत्यादि कारक अपनी सकारात्मक भूमिका कैसे निभा सकते हैं इसकी समझ भी शिक्षक के लिए आवश्यक हैं। प्रथम वर्ष का यह विषय पत्र, 'समाज, शिक्षा और पाठ्यचर्या की समझ' शिक्षकों को बच्चों, उन के समाजीकरण की प्रक्रिया और शिक्षा की समझ के और करीब लाने का एक प्रयास है। इस विषयपत्र में विषय वस्तु पर आधारित पाठ्य सामग्री में कुल 5 इकाई हैं जो बच्चों, उनके समाजीकरण, पाठ्यचर्या, शैक्षिक चिंतन एवं शिक्षा से संबंधित कुछ प्रमुख विषयों पर केंद्रित हैं।

पहली इकाई में बच्चे तथा बचपन की अवधारणा से संबंधित विमर्शों, बच्चों का समाजीकरण, इस प्रक्रिया को संचालित करने वाले अन्य संस्थाओं के बीच अंतर्संबंध तथा बच्चे, वयस्क एवं शिक्षक के गतिशील संबंधों की समीक्षायी समझ के आधार पर शिक्षकों की शिक्षा शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य तथा रणनीति के आधारभूमि को निर्मित करने का प्रयास किया गया है। इसी इकाई के विषय वस्तु को विस्तारित करते हुए दूसरी इकाई का केंद्र बिंदु विद्यालय और इसके माध्यम से किए जाने वाले समाजीकरण की प्रक्रिया है।

साथ ही, सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के रूप में विद्यालयी शिक्षा निरंतर ज्ञानमीमांसीय प्रश्नों से मुखातिब होते रहती है। जैसे–शिक्षा क्या है? यह किस मूल्य विमर्श का प्रतिनिधित्व करती है? ज्ञान क्या है? इसकी प्रकृति क्या है? इसकी प्राप्ति तथा प्रमाणिकता के स्रोत क्या है? इत्यादि प्रश्न कक्षायी तथा विद्यालयी विमर्श के महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। तीसरी इकाई में इन्हीं सब बिंदुओं के विषय में चर्चा की गई है।

चौथी इकाई में शिक्षा शास्त्र को एक सार्वभौम तथा चिंतनशील गतिविधि के रूप में विद्यालय में स्थापित करने के लिए शिक्षकों में अध्ययनशीलता तथा सकारात्मक चिंतन निर्मित करने के लिए कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाविदों के मूल रचनाओं के समीक्षायी अध्ययन को शामिल किया गया है।

पांचवीं इकाई में पाठ्यचर्या संबंधित विमर्शो को शामिल किया गया है। पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम की अवधारणा तथा उनके विभिन्न आधारों की समझ के साथ–साथ शिक्षा, ज्ञान और समाजीकरण के माध्यम के तौर पर पाठ्य पुस्तकों की समझ पर चर्चा की गई है। पुनः स्थानीय स्तर की पाठ्यचर्या क्या है? जैसे मुद्दों को विमर्श में शामिल किया गया है।

प्रयास यह किया गया है कि प्रस्तुत पठन सामग्री सरल, तथ्यात्मक रूप से सटीक, विषय वस्तु में निरंतरता बनाए हुए हो। यथा स्थान गतिविधियों के माध्यम से प्रशिक्षुओं को सक्रिय रूप से सहभागिता निभाने का अवसर दिया गया है। आशा है आप इस पाठ्य सामग्री के माध्यम से शिक्षा की समकालीन आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे। पाठ्य–सामग्री को और संवर्धित करने के लिए आपके सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

निदेशक

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार

पाठ्य पुस्तक विकास समूह
पत्र–F-1
(समाज, शिक्षा और पाठ्यचर्या की समझ)

दिशाबोध	श्री दीपक कुमार सिंह, भा.प्र.से., अपर मुख्य सचिव, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना श्री सज्जन राजसेकर, भा.प्र.से., निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्द्रू, बिहार, पटना डॉ० एस.पी.सिन्हा, सलाहकार, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना
समन्वयक	डॉ० वीर कुमारी कुजूर, विभाग प्रभारी, शिक्षणशास्त्र, पाठ्यचर्चा, पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना
लेखक समूह	1. मनोज कुमार त्रिपाठी, प्रधानाध्यापक, उ.मध्य विद्यालय, भेलडुमरा, आरा, भोजपुर
	2. कुमार रमण जी, सहायक शिक्षक, दुर्गा सर्वोदय +2 विद्यालय, सुखासन, मनहरा, मधेपुरा
समीक्षक	श्रीमती नीलू कुमारी, व्याख्याता, एस.सी.ई.आर.टी, पटना
	डॉ० ममता कुमारी, प्रभारी प्राचार्य, बी०एन०आर० ट्रेनिंग कॉलेज, पटना
	डॉ० श्रवण कुमार, व्याख्याता, डायट, पिरौटा भोजपुर

पाठ–सूची

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	बच्चे, बचपन और समाज	8-36
2	विद्यालय और समाजीकरण	37-63
3	शिक्षा और ज्ञानः विविध परिप्रेक्ष्यों की समझ	64-88
4	प्रमुख चिंतकों के मौलिक लेखन की शिक्षाशास्त्रीय समझ	89-120
5	पाठ्यचर्या की समझः बच्चों तथा समाज के संदर्भ में	121-141
6	संदर्भ सूची	142

इकाई 1

बच्चे, बचपन और समाज

परिचय

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन आपको यह जानने एवं समझने में मदद करती है कि किस प्रकार बच्चे, बचपन एवं समाजीकरण की मूल संकल्पना समय तथा स्थान के अनुसार निरंतर विकसित होती रही है। विद्यालयीय एवं परिवेशजन्य अनुभव एवं अन्तर्क्रियाएँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि प्रत्येक परिवार, समुदाय एवं समाज बच्चे, बचपन एवं उनके समाजीकरण को भिन्न–भिन्न नजरियों से देखते हैं तथा विभिन्न तरीकों एवं साधनों से उनके विकास की व्यवस्था करते हैं। मानव मूलतः एक सामाजिक–सांस्कृतिक प्राणी है। सामाजिक व्यवस्था की वह एक नियामक एवं अपरिहार्य इकाई है। विभिन्न विकासीय अवस्थाओं से गुजरते हुए व्यक्ति के लिए बचपन और उससे जुड़े हुए विभिन्न सन्दर्भ एवं अनुभव जीवन को लगातार प्रभावित करते हैं। इन अर्थों में बचपन मात्र जैविक निर्मिति ही नहीं होता, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक निर्मिति भी होता है। इस दिशा में प्रस्तुत इकाई विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अवधारणाओं के संदर्भ में बचपन एवं समाजीकरण को व्याख्यायित करती है। जैसा कि आप जानते है कि समाज अपनी विभिन्न गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यक्तियों के समाजीकरण की व्यवस्था करता है। आधुनिक सामाजिक परिदृश्य में 'बचपन एवं समाजीकरण' के व्यवस्थापन एवं नियमन में माता–पिता, परिवार, पड़ोस, जेण्डर, समुदाय, मीडिया तथा विद्यालय इत्यादि की भूमिका महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

बच्चे बचपन एवं उनके समाजीकरण के बाद बाल अधिकारों के संदर्भ में ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त ही आवश्यक है क्योंकि बिना बाल अधिकारों के बारें में ज्ञान प्राप्त किये हुए आप बच्चों के सर्वांगींण विकास के प्रति सजग नहीं हो पायेंगे।

उपरोक्त बिन्दुओं पर विमर्श करने के लिए विभिन्न दृष्टांतों को उदाहरण के तौर पर लिया गया है ताकि शिक्षक छात्र उनका विश्लेषण करके बच्चे, बचपन एवं समाजीकरण के विभिन्न पक्षों की संदर्भगत समझ बना सकेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई में आप बच्चे तथा बचपन की अवधारणा के विभिन्न पहलुओं से अवगत होंगे साथ ही समाजीकरण की अवधारणात्मक समझ बना सकेंगे। पुनः बच्चों के समाजीकरण के प्रमुख कारकों की भूमिका का विश्लेषण करते हुए बच्चे तथा बचपन के संदर्भ में बाल अधिकार की अवधारणा को समझ सकेंगे।

पूर्व अनुभव

आप सभी अपने–अपने बचपन से गुजरे हैं और अपने आस–पास के कई बच्चों के बचपन को देख रहे होंगे। यह स्पष्ट है कि बचपन की कई बातें बच्चे के भावी जीवन पर बहुत प्रभाव डालती है। इस इकाई के विभिन्न अवधारणाओं को समझने और विश्लेषित करने में आपके अपने बचपन का अनुभव बहुत काम आएगा।

- **बच्चे तथा बचपन की समझ**

सर्वप्रथम आपको यह समझना आवश्यक है कि बच्चा कौन है एवं उसको मानने का आधार क्या है? बचपन क्या है? बच्चों तथा उनके बचपन से हमारा हर रोज का सरोकार है, जिसके संदर्भ में यह बात बहुत मायने रखती है कि हमारी उनके प्रति क्या समझ है? समाज में बच्चों तथा उनके बचपन को देखने–समझने के कई नज़रिए हैं, जिनसे हम प्रभावित होते हुए किसी बच्चे से व्यवहार करते हैं। इसका सीधा प्रभाव बच्चों के विकास पर पड़ता है। अतः एक शिक्षक या शिक्षिका के लिए तो यह और महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह उन सामाजिक–सांस्कृतिक नज़रियों तथा साथ में अपनी सोंच का गहन विश्लेषण करे। इस खण्ड के पहले भाग में कुछ दृष्टांतों के मदद से इन

मुद्दों को उभारने का प्रयास किया गया है तथा दूसरे भाग में बच्चे तथा बचपन की अवधारणा के ऐतिहासिक विकास से सम्बंधित विश्लेषण को प्रस्तुत किया गया है

बच्चे तथा बचपन – सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा

हमारे समाज में रोज़ाना कई ऐसी घटनाएं या गतिविधियां होती हैं, जिनके आधार पर यह समझना मुश्किल नहीं है कि बच्चों तथा बचपन के बारे में हम क्या सोंचते हैं। आगे दृष्टांतों के माध्यम से कुछ ऐसे उदाहरणों को दिया गया है, जिसके माध्यम से हम बच्चे तथा बचपन की समाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा का विश्लेषण करेंगे।

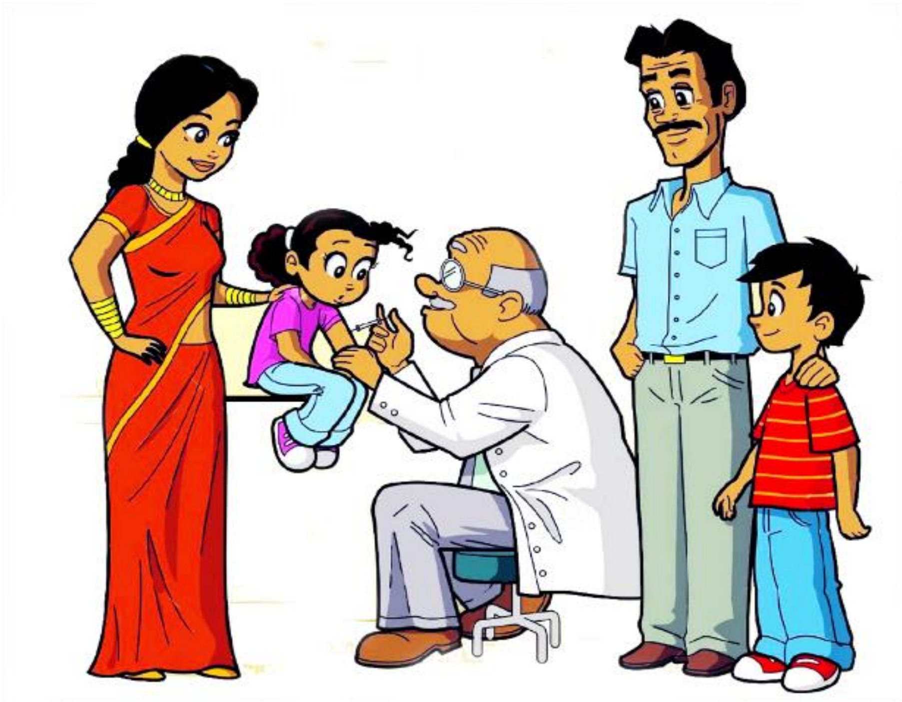

दृष्टांत –1

आरा के मोहनपुर गाँव में मंगरू का परिवार रहता था। मंगरू एक किसान था जो अपने पैतृक जमीन पर साग सब्जी उपजाया करता था। मंगरू का बेटा बीरू गाँव के ही चौधरी के आम का बागान देखकर ललचाया करता था। एक दिन गर्मी की भरी दुपहरी में जब सारे लोग सो रहे थे बीरू चुपके–चुपके आम के बागान में पहुँच गया और ढेला मारकर आम तोड़ने लगा। इसी बीच चौधरी के आदमी आ गए और बीरू उन्हें देखकर भाग गया। यह खबर चौधरी के पास पहुँची। वह आग बबूला हो गया। उसने कुछ बुजुर्गों को इकट्ठा किया तथा बीरू की शिकायत प्रारंभ की। चौधरी ने कहा– "यदि वक्त रहते बीरू की आदतों को नहीं सुधारा गया तो आगे चलकर वह बड़ी–बड़ी घटनाओं को अंजाम देगा। अतः समय रहते उसे समझाना बहुत ही जरूरी है; उसे दंडित करना चाहिए, जिससे फिर कभी वह ऐसे कार्य न कर सके। गाँव के ही रामधनी ने कहा अरे इतना बिगड़ने की कोई बात नहीं है, अभी उसकी उम्र ही क्या है। आठ–दस वर्ष का बच्चा है, प्यार से समझा बूझा के उसे सही रास्ते पर लाया जा सकता है; ये तो बच्चों का स्वभाव ही होता है। चौधरी के बेटे ललन ने कहा – अरे छोटा क्या है? इस उम्र में तो विदेशों में लोग अपनी छोटी–छोटी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हैं। ये सब मंगरू के लाड़ प्यार का नतीजा हैं। दो थप्पड़ लगाया जाए तो अपने आप सुधर जाएगा। शिक्षक राम महतो ने कहा–समझा बूझा के भी तो हल निकाला जा सकता है मार–पीट से बच्चे ढीठ हो जाते हैं। ऐसे भी शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 में बच्चों को दंड देने के विरूद्ध कड़ा कानून है। मंटू ने कहा– बिलकुल ठीक है यदि बच्चों को सही राह दिखाई जाए और सही मार्गदर्शन दिया जाए तो बच्चे बुरी आदतें क्यों सीखेंगे।

बहस का दौर चलता रहा। जहाँ एक पक्ष बीरू को बच्चा न मानते हुए अपराधी मानकर दंड की बात कर रहा था वहीं दूसरा पक्ष बीरू की गलतियों को उसके बचपन की स्वाभाविक प्रक्रिया मानते हुए सही ढंग से विकसित होने देने के पक्ष में था। शाम हो गयी लोगों ने बीरू को एक मौका देने की सिफारिश की और उसके भूलों को बचपन की भूल मानकर माफ करने एवं समझाने–बुझाने की बात पर सहमती बनायी।

विमर्श के बिन्दु :

- उपरोक्त दृष्टांत में बचपन के संदर्भ में विभिन्न वर्गों की अवधारणाओं के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों की विवेचना करें।
- एक विशेष उम्र के बच्चों से समाज का विभिन्न वर्ग किस प्रकार के व्यवहार एवं आचरण की अपेक्षा करता है स्पष्ट करें।
- बीरू के व्यवहार की व्याख्या करें।

क्रियाकलाप

आप अपने पड़ोस के किन्हीं पाँच बच्चों के संदर्भ में उनके परिवार व आस पड़ोस के पाँच–पाँच लोगों से संवाद स्थापित कर उस बच्चे के बचपन के बारे में उनके विचारों को रेखांकित करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

दृष्टांत–2

असलम 20–22 वर्षों से हरियाणा के एक फैक्ट्री में काम करता था। विभिन्न प्रकार की पारिवारिक समस्याओं के कारण असलम का परिवार अपने पैतृक गाँव में रहने आ गया तथा अपनी जमीन पर खेती–बाड़ी प्रारंभ कर जीवन यापन करने लगा। असलम के दो बच्चे थे – बड़ी बेटी सलमा 10 वर्ष की थी और छोटा बेटा सलमान 9 वर्ष का था। दोनों बच्चे हरियाणा में ही पले बढ़े थे। गाँव आने का यहाँ इनका पहला मौका था। असलम ने दोनों बच्चों का नामांकन पास के सरकारी विद्यालय में करवा दिया। कुछ दिनों तक बच्चों को शहरी परिवेश से आकर ग्रामीण परिवेश में सामंजस्य स्थापित करना कठिन लगता था। इतना ही नहीं नयी जगह व परिवेश होने के कारण गाँव के अन्य मुस्लिम परिवारों के बच्चों के साथ वे सहज महसूस नहीं करते थे। गाँव के बच्चों का रहन–सहन, बोल–चाल, वेश–भूषा कुछ दिनों तक उन्हें परेशान करता रहा। शहर में उनका पहनावा उनकी इच्छा के अनुरूप था परन्तु, उन्हें गाँव में गाँव के रीति–रिवाजों के अनुसार ही रहना पड़ता था। विशेषकर सलमा की परेशानी ज्यादा थी। गाँव वाले अक्सर सलमान की कम परन्तु सलमा के रहने–सहने, खेलने–कूदने, पहनने–ओढ़ने को लेकर ज्यादा टिप्पणियाँ करते रहते थे। सलमा को यहाँ शहरों जैसी स्वतंत्रता नहीं थी यहाँ वह अपने भाई की तरह पैंट या जींस नहीं पहन सकती थी। वह अपनी खिड़की पर बैठ धनी किसानों के घरों को देखा करती थी। उसे बड़ा अजीब लगता था, जब वह उनके घर अपने उम्र के बच्चों को खिलौने से खेलते देखा करती तथा वहीं यह भी देखती कि उसी उम्र के दूसरे बच्चे उन की सेवा में लगे हुए थे एवं छोटी–छोटी गलतियों के लिए दण्डित किये जाते थे। वह हमेशा सोचती कि आखिर एक उम्र के होने के बावजूद भी उनसे दोहरा व्यवहार क्यों किया जाता है? जहाँ वे अपने बच्चों को तो बच्चा समझते हैं, वहीं दूसरे गरीब बच्चों से वयस्क के तरह जिम्मेदारी निभाने की अपेक्षा क्यों रखते हैं? हरियाणा में सलमा फैक्ट्री के स्कूल में पढ़ती थी। अतः ऐसी बातें कम देखने को मिलती थी। सलमा हमेशा भ्रमित रहती थी कि आखिर उसमें और दूसरे बच्चों में क्या अंतर है? वे भी तो उसके ही उम्र के हैं। आखिर में बच्चा कौन है और उसे बच्चे के रूप में माने जाने के आधार क्या हैं? रात बहुत हो चुकी थी, अतः सलमा ने सोचा कि दूसरे दिन वह माँ से पूछेगी।

विमर्श के बिन्दु :

- दिए गए दृष्टांत के आधार पर बतायें कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में बचपन की समझ को लेकर क्या फर्क है?
- आपकी समझ से सलमा और सलमान के बचपन को भिन्न रूपों में देखे जाने के प्रमुख आधार क्या हैं?
- धनी और निर्धन परिवार में बचपन किन आधारों पर अलग–अलग ढंग से देखा जाता है? सलमा के समझ को विस्तारित करें।
- किसी बच्चे के बचपन के संदर्भ में समुदाय की सोच को उस बच्चे के परिवार की आर्थिक–सामाजिक दशा किस प्रकार प्रभावित करती है?

क्रियाकलाप

अपने पड़ोस के किन्हीं दो लड़कों और दो लड़कियों के बचपन के संदर्भ में उनके परिवार, आस–पड़ोस एवं समाज के लोगों के द्वारा लैंगिक आधार पर किये जाने वाले फर्कों को रेखांकित करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

विषय–वस्तु की समझ :

उपर्युक्त दृष्टांतों के माध्यम से आपने विभिन्न नजरों से विषय वस्तु पर अपने विचारों को परखा होगा एवं क्रियाकलापों के माध्यम से उसकी समझ को विस्तारित किया होगा। दृष्टांत 1 में बचपन के विविध रूपों का चित्रण विभिन्न परिस्थितियों के माध्यम से इस आशय के साथ किया गया है कि किसी बच्चे को बच्चे के रूप में समझे जाने या न समझे जाने में परिस्थितियाँ किस प्रकार प्रभावी भूमिका निभाती हैं। दृष्टांत 2 भी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बच्चों के बचपन के संदर्भ में, लैंगिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समझ को विस्तारित करता है। इन दृष्टांतों के माध्यम से सलमा के मन में उठे उस प्रश्न को और विस्तारित किया गया है कि आखिर में बच्चा कौन है? तथा उसे बच्चे के रूप में माने जाने के आधार क्या है? अक्सर हमारे समाज में ऐसी उक्तियाँ बार–बार पढ़ने और सुनने को मिलती हैं कि बच्चे नादान होते हैं, उन्हें बड़ों की सहायता से ही आगे बढ़ाया जा सकता है। इन उक्तियों का बच्चों के बचपन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। वे यह सोचने के आदी हो जाते हैं कि वे फिलहाल कोई 'बड़ा' काम नहीं कर सकते, क्योंकि अभी वे छोटे हैं, अतः कोई महत्वपूर्ण कार्य नही कर सकते। सभी महत्त्वपूर्ण काम वे बड़े होकर ही कर सकेंगे। इस कारण वे जल्दी–से–जल्दी बड़े हो जाना चाहते हैं। साथ ही, समाज उनके व्यवहार को नियंत्रित करने के सारे तरीकों को निरन्तर अपनाता रहता है। दण्ड एवं मानसिक डर के माहौल को इस प्रकार बनाया जाता है जिससे हर बच्चा अपने मौलिक स्वभाव को त्याग कर सामाजिक व्यवहार को जल्द से जल्द अपना ले। अलग–अलग समुदायों में इसकी प्रक्रिया भिन्न–भिन्न हो सकती है। समुदाय में बच्चे के ऊपर कई सवालों के दबाव भी होते हैं। 'बड़े होकर क्या बनोगे' ऐसे प्रश्न घर पर आनेवाले अतिथियों द्वारा बार बार पूछे जाते हैं या फिर कहीं न कहीं परिवार ही कई माध्यमों से यह घोषणा

करने लगता है कि उसके बच्चे आगे क्या बनेंगे। इस प्रकार वयस्क बनने की तैयारी का आगाज़ हो जाता है और वयस्क बनने से बहुत पहले ही बच्चे अपने बचपन से कट जाते हैं। लेकिन, ऐसा नहीं है कि समाज में बच्चों की छवि को केवल नकारात्मक ढंग से ही परिभाषित किया जाता है।

यदि देखें तो समाज में बच्चों की छवियों को कई प्रकार से परिभाषित किया जाता है–जैसे आज्ञाकारी, जिज्ञासु, भोले–भाले, नादान, चतुर, चंचल, परिपक्व, नटखट, गुमसुम, बातूनी, मिलनसार, क्रोधी, हंसमुख, जिद्दी, गम्भीर, साहसी, डरपोक, नकलची, मूडी, तार्किक, मनमौजी इत्यादि। बाल साहित्यों में भी बच्चों तथा उनके बचपन को कई तरह से प्रस्तुत किया जाता है, जो हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक चिंतन को दर्शाते हैं। इस पाठ्यक्रम में आप आगे कई ऐसे साहित्य–रचनाओं से अवगत होंगें और उनका अध्ययन करेंगे जिससे बच्चों तथा उनके बचपन से सम्बंधित कई अवधारणाएं स्पष्ट होती हैं।

क्रियाकलाप

बच्चों का मन कोरी स्लेट के समान होता है।

बच्चे कच्ची मिट्टी के घड़े के समान होते हैं।

क्या आप उपरोक्त युक्तियों के तर्कों से सहमत हैं? हाँ अथवा नहीं। अपनी कक्षा में इसपर सामूहिक चर्चा करें। साथ ही, बच्चों से जुड़ी अन्य लोकोक्तियों का संग्रह करें और उनका विश्लेषण करें।

इसमें दो राय नहीं है कि बच्चा स्वयं में एक महत्वपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक इकाई है। हर सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बच्चे एवं बचपन को अलग–अलग नजरिए से देखा जाता है। हर जाति धर्म व परंपरा में बच्चे तथा बचपन की समझ अलग–अलग है। जाति, धर्म, आर्थिक व सामाजिक दशा आदि बच्चे व बचपन को देखने के हमारे नजरिए को प्रभावित करते हैं। समाज में परोक्ष एवं प्रत्यक्ष दोनों तरीकों से बच्चों को जातीय संस्कारों एवं सामाजिक संबंधों को सिखाया जाता है। किसके साथ बैठना है, किसके साथ खेलना है, किसके साथ खाना खाना है, ये सारी बातें सिखायी जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि समाज बच्चों को एक ऐसी इकाई के तौर पर भी देखता है जिन्हें सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं को सीखना वयस्कों की अपेक्षा सहज है।

हम यह भी देख सकते हैं कि जहां एक ओर अभिजात्य वर्गों में बच्चों के लालन–पालन एवं सुरक्षा की अलग अवधारणा है, वहीं सुविधा विहीन परिवारों में बच्चों के लालन–पालन भिन्न प्रकार से होते है। उदाहरण के तौर पर वैश्वीकरण के इस दौर मे बच्चों के पालन–पोषण के लिए क्रेच का सहारा लिया जा रहा है क्योंकि माता–पिता दोनों बाहर काम करते हैं। अन्य विकल्प के तौर पर मां–बाप के स्थान पर बड़े भाई या बहन अपने छोटे भाई या बहन की देख–रेख में होते है। गांवों में तो, कभी–कभी माता–पिता बच्चों को अपने साथ खेतों पर ले जाते हैं। धीरे–धीरे उन्हें अपने साथ काम पर भी ले जाना शुरू कर देते हैं। इस माहौल में बच्चे समर्पण के भाव एवं जातीय व्यवहार सीखते हैं एवं सामाजिक अर्न्तसंबंधों की भी समझ विकसित करते हैं। इन सब के माध्यम से बच्चे के समाजीकरण के प्रक्रिया में

विभिन्न घटकों का समावेश होता रहता है। इसके साथ ही, ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में भी बच्चों के लालन–पालन का तरीका अलग होता है जिसका प्रभाव बच्चों के व्यवहारों से परिलक्षित होता है। शहरी और ग्रामीण बच्चों के प्रति समाज में रूढ़ीवादी विचारधाराएं भी होती हैं। जैसे शहरी बच्चों को स्मार्ट, बुद्धिमान, आदि संज्ञाएं दी जाती हैं, वहीं गांव के बच्चों को दब्बु या कमजोर मानने की आम धारणा है। ऐसी धारणाओं के पीछे असामनता, वंचना और वर्गीय वर्चस्व को स्थापित करनेवाली सामाजिक धारणाएं हैं, जो अपना पहला हमला समाज के बच्चों तथा उनके बचपन पर करती हैं। बच्चा एवं बचपन की सामाजिक–सांस्कृतिक समझ के लिए यह भी जानना आवश्यक है कि बच्चा लड़का है अथवा लड़की। आगे इकाई–2 में इस विषय पर विशेष चर्चा की गई है।

आज के समय में बचपन पर पड़नेवाले विभिन्न सामाजिक दबावों को भी समझना जरूरी है। पढ़ाई–लिखाई से लेकर भोजन करने तथा कपड़ा पहनने तक में बच्चे कई प्रकार के दबावों व प्रतिबंधों को झेलते हैं, जिनसे बच्चों के प्रति समाज के नज़रिए के वास्तविक चरित्र को समझना मुश्किल नहीं है। चाहे ये दबाव विद्यालय के हों या परिवार के, इससे बच्चों के जीवन में ऐसे अवसर लगातार कम होते जा रहे हैं, जब वे आजादी से अपनी पसंद का काम कर सकें। साथ ही, स्कूल की पुस्तकें भी बच्चों पर मानसिक बोझ डालती हैं। यदि देखा जाए तो वर्तमान सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य में बच्चों से वे सारे पल छिन लिये जा रहे हैं जब वे स्वयं को बच्चा समझ सकें। समाज बच्चों को उनके बचपन के प्रति हतोत्साहित करने का मौका नहीं छोड़ता।

यह स्पष्ट है कि बच्चों का बचपन व्यक्ति विशेष के सामाजिक–सांस्कृतिक परिपेक्ष्यों के अनुरूप विशिष्ट होते हैं। अलग अलग समाज व संस्कृतियों में बच्चों को भिन्न भिन्न रूपों में समझा जाता है। बच्चों व बचपन के बारे में हमारे समाज में कई धारणाऐं हैं, जो बच्चों के प्रति हमारे व्यवहार को निर्मित करते हैं। बचपन सिर्फ विभिन्न प्रभावों तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि यह स्वयं भी समाज को प्रभावित करता है। इस प्रकार बचपन के अनुभव समाज व बच्चे के मध्य के सक्रिय अनुभव हैं जो सतत अंतःक्रिया के माध्यम से बनते हैं। बचपन की कई बातें बच्चे के भावी जीवन पर बहुत प्रभाव डालती है।

क्रियाकलाप

अपने आस पास के बच्चों के दैनिक जीवन का अवलोकन करें तथा निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करें :–

- क्या उन सभी बच्चों का दैनिक जीवन एक जैसा है या एक दूसरे से भिन्न है। इसके पीछे के कारणों का विश्लेषण करें।
- बच्चे अपना कितना समय किस कार्य में देते हैं, इसका भी अध्ययन करें और इसका उनके व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसका विश्लेषण करें।

अपने अवलोकन के आधार पर इसपर विचार करें कि क्या एक ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चे और शहरी पृष्ठभूमि के बच्चे के बचपन में क्या मूलभूत अंतर हो सकते हैं। उपरोक्त बिन्दुओं के संदर्भ में अपनी कक्षा में एक प्रस्तुतिकरण करें तथा अध्ययन से प्राप्त आंकडों पर चर्चा करें।

बच्चे तथा बचपन की अवधारणा – ऐतिहासिक समझ

मानव समाज के विकास का अपना एक लम्बा अतीत रहा है जिसे हम विशेष रूप से इतिहास के माध्यम से समझते हैं। हम यह जानते हैं कि इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में विभिन्न सभ्यताओं व संस्कृतियों से संबंधित समुदायों का उद्भव व विकास होता रहा है। स्पष्ट है कि उन समुदायों के अस्तित्व में उन बच्चों का अस्तित्व भी समाहित है जिन्होंने भविष्य में उन समुदायों को आगे बढ़ाया होगा। अतीत में बच्चों की भूमिका इतनी अहम होने के बावजूद, ऐसा प्रतीत होता है कि हमने अपने इतिहास के अध्ययन में इसे कभी भी ज्यादा महत्व नही दिया। लेकिन बच्चों के मामले पर इतिहास के ऐसे चुप रहने अथवा उत्साही साक्ष्य न मिलने का निष्कर्ष यह नहीं निकाला जाना चाहिये कि अतीत में विकसित समुदाय अपने बच्चों के प्रति संवेदनशील नहीं थे। आज के काल में बच्चों का जो स्वरूप विद्यमान है, यह कहीं न कहीं अपने अतीत में हुए विकास का भी द्योतक है। अतः बच्चों के बचपन की संकल्पना को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना भी अति महत्वपूर्ण है।

बच्चों के बचपन को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर स्वतः ही कई सवाल उठते हैं। जैसे– अतीत के समुदायों में बच्चों के बचपन की क्या अवधारणाएं रही होंगी? किस प्रकार बचपन की संकल्पना, बच्चों की छवि, तथा परिवार के नजरिये में सदी–दर–सदी बदलाव आते रहे हैं? इस बदलाव के पीछे क्या कारण रहे होंगे? उस समय व आज के आधुनिक युग में इन संकल्पनाओं में कितना परिवर्तन हुआ है? इन सभी सवालों का कोई सटीक उत्तर देना काफी कठिन है। फिर भी उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कुछ अनुमान लगाने की गुंजाइश जरूर बनती है। यह स्वाभाविक है कि साक्ष्यों की बहुलता व प्रमाणिकता के मामले में आधुनिक काल इतिहास के अन्य कालखण्डों की तुलना में अधिक धनी है। अतः वर्तमान काल में बच्चों के बचपन के विषय में क्या स्थिति बनी है, उस पर बेहतर तरीके से विमर्श किया जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से विभिन्न कालखण्डों में बच्चों की स्थितियों के विषय में जानने को कम ही मिलता है। इस सीमा के कारण बच्चों की अवधारणा के निश्चित क्रमिक विकास को इतिहास के सभी कालखण्डों के परिप्रेक्ष्य में पूरी तरह से देखा नही जा सकता। यहां हम बच्चों और बचपन से सम्बंधित कुछ मूलभूत विशेषताओं व मान्यताओं को लेते हुये इतिहास में उनसे जुड़े साक्ष्यों का विश्लेषण करेंगे। साथ ही यह प्रयास भी होगा कि यथा सम्भव हम अपने विश्लेषण को इतिहास के विभिन्न कालों के संदर्भ में कर पायें और उन्हें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखें।

बच्चों के बारे में पहले के लोग क्या सोचते थे?, यह प्रश्न हमारे मन में कौतुहल को अवश्य जागृत करता है। आगे दिया उदाहरण बच्चे और बचपन के ऐतिहासिक अवधारणा के कुछ मूल पक्षों पर विशेष प्रकाश डालता हैं। इसके विश्लेषण के माध्यम से हम बचपन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने का प्रयास करेंगे। आइये इसे पढ़ते हैं और इसमें उठाये गये बचपन से संबंधित विभिन्न पहलुओं को समझते हैं।

एक जैविक अवधारणा (बच्चा मात्र जैविक प्राणी के रूप में) सामाजिक अवधारणा (बच्चा सामाजिक प्राणी के रूप में) में तब्दील हो रही है कि बच्चा सिर्फ जैविक छोटा प्राणी नहीं है जो कि बड़े का एक छोटा संस्करण हो, उसका अलग व्यक्तित्व है। प्लेटो ने दो सहस्त्राब्दी पहले कहा था कि बच्चा दरअसल बड़ो के बीच एक विदेशी की तरह होता है, जैसे आप किसी विदेशी से जिसकी भाषा आपको न आती हो जब बात करते हैं तो आपको मालूम होता है कि मेरी कई बातें वो ठीक समझेगा, कई नहीं समझेगा या गलत समझेगा और जब वो कुछ बोलता है, अपनी भाषा में बोलता है और हमको उसकी भाषा नहीं आती तो हम भी उसकी पूरी बात नहीं समझ पाते। कुछ समझते हैं, कुछ नहीं समझते हैं, और इस तरीके से जो आदान–प्रदान होता है वह आधा–अधूरा ही रहता है।

प्लेटो ने जरूर इस रूपक को यह सब सोचकर रखा होगा कि जब बच्चों से लोग बात करते हैं तो केवल इस कारण कि ये बच्चा मनुष्य जैसा दिखता है, ये न सोंचे कि ये मेरी बात को समझेगा और मैं इसकी बात को समझूंगा। उनके बीच में ये गुंजाइश रहे कि वे दोनों ही एक–दूसरे की बात को नही समझ पायेंगे। सम्प्रेषण का एक बहुत बड़ा क्षेत्र रहेगा जो अंधेरे में रहेगा। जाहिर है, उस समय इतना मनोविज्ञान विकसित नही हुआ था कि प्लेटो समझ सकता कि क्यों अंधेरा रहता है। लेकिन उसने फिर भी एक बहुत बड़ी बात कही थी और इस आधार पर यह अनुशंसा भी की थी कि अपने बीच में जैसा सम्मान हम विदेशियों को देते हैं, वैसा ही सम्मान हमें बच्चों को भी देना चाहिये। अभी तो समझ मे नही आ रहा है, लेकिन क्या पता बाद में वही सही निकले। वैसे ही बाद में वही रहेगा, हम तो रहेंगे नहीं। तो इस नाते कम से कम एक संस्कार रखने की कोशिश प्लेटो ने की थी। और पिछले 2000 सालों पर गौर करें तो ऐसे कई लोग हुए जिन्होंने हमें याद दिलाया कि बच्चों को गम्भीरता से लेने की जरूरत है। हमारे देश में भी ऐसे लोग लगातार होते रहे हैं। अगर सूरदास के शब्दों पर विचार करें जिन्होंने अपने पदो ंके जरिए बच्चों की झूठ बोलने की प्रवृति पर, बहाना बनाने, छिपाने की प्रवृति पर विचार किया था और यशोदा को एक ऐसी माँ के रूप में स्थापित किया जो ये सब सहन करती हैं और बहाना सुन के कहती नहीं है कि मुझे पता है कि ये तुम्हारा बहाना है बल्कि गले लगा लेती है, तो सूर कौन–सा रूपक रच रहे थे। वो वही रूपक रच रहे थे कि बच्चों की दुनिया में लोकपाल बनने की कोशिश मत कीजिए। उनको छिपने की जगह दीजिए। उनको बहाना बनाने की जगह दीजिए। उनको अपनी कल्पना की दुनिया में रहने का मौका दीजिए। इसको लेकर अनेक परम्पराएँ हैं, लोक आख्यान हैं, कोई कमी नही है।

(स्रोतः कृष्ण कुमार, बचपन की अवधारणा और बाल साहित्य, शैक्षणिक संदर्भ, अंक–24 (मूल अंक 81), पृ.57,58)

क्रियाकलाप

दिये गये उद्धरण के आधार पर निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करें।

- जैविक अवधारणा और सामाजिक अवधारणा के रूप में बचपन को समझने के क्या–क्या मायने हो सकते हैं?
- उद्धरण में बच्चों के जो भी गुण परिलक्षित हुये हैं उनकी पहचान करें, सूचीबद्ध करें तथा इस पर विचार करे कि आज के समाज में उन गुणों के प्रति क्या धारणाएं हैं और क्यों?
- उदाहरण के आधार पर आप उस समय के बच्चों की स्थिति के विषय में क्या अनुमान लगा सकते हैं? उन स्थितियों का आलोचनात्मक विश्लेषण भी करें।

आपने ऊपर के उद्धरण के माध्यम से बच्चों के विषय में कुछ प्राचीन मतों को जाना और उनसे संबंधित दिये गये बिन्दुओं पर विचार किया। विचारकों के अनुसार प्राचीन मानव समाजों में 'बच्चे' को एक स्वतंत्र सामाजिक प्राणी की श्रेणी में नहीं रखा जाता था और आज भी यह मत किसी न किसी रूप में विद्यमान है। कई मनोवैज्ञानिकों का यह भी विश्लेषण है कि हमारे समाज में वयस्क की अवधारणा तो है, लेकिन बचपन की नहीं है, और किशोरावस्था की भी नही के बराबर है। बच्चे के तीन–चार साल की आयु बीतने के बाद से हमारे समाज तथा परिवार में उससे की जाने वाली अपेक्षाएं दरअसल उसे वयस्क बनाने की तैयारी रही है और बचपन की संकल्पना को यहां कभी स्वीकारा नहीं गया। अब हम ऊपर के उद्धरण के माध्यम से उठाये गए विचारों को आगे बढ़ाते हुए अपने अतीत में बच्चों की संकल्पना कैसी थी, इसकी पड़ताल करेंगे। आज के समय में बच्चे की अवधारणा कैसे बन रही है, इसकी चर्चा आगे के खण्ड में की जायेगी।

क्रियाकलाप

हड़प्पा सभ्यता में पाए गए कुछ खिलौनों के चित्र आपने देखे होंगे। आप इन्हें देखकर आप क्या–क्या अनुमान लगा सकते हैं?

अतीत में देखें तो भारत की प्राचीन सभ्यताओं में बच्चों के विषय में कुछ उत्साहवर्द्धक अनुमान लगाने की भरपूर संभावना मिलती है। अब तक की खोजों में कुछ साक्ष्य ऐसे मिले हैं जो हड़प्पाकालीन सभ्यता के लोगों के बच्चों एवं बचपन के प्रति संवेदनशील होने का स्पष्ट प्रमाण देते हैं। खिलौनों का पाया जाना उनकी संवेदनाओं एवं जागरूकता का ही एक उदाहरण है। यहाँ भवन निर्माण से जुड़ी एक महत्वपूर्ण बात भी ध्यानाकर्षित करती है। हड़प्पा कालीन भवनों के मुख्य द्वार कभी मुख्य सड़क की ओर नहीं पाए गए। ऐसा माना

जाता है कि इसका एक मुख्य कारण बच्चों की सड़क पर चलने वाले सवारियों से सुरक्षा करना भी था।

उपरोक्त सभी तथ्य इस धारणा को और पुष्ट करते हैं कि वह समाज अपने बच्चों के पालन–पोषण और शिक्षा के प्रति भी जागरूक व संवेदनशील रहा होगा। जिस सभ्यता में लोग अपने बच्चों के प्रति इतने सचेत रहे हैं, अनुमानों के आधार पर उस समाज में एक जीवन्त बचपन की अपेक्षा की जा सकती है।

इसके साथ साथ, प्राचीन काल में रचित काव्यों, कथा–कहानियों में भी उस काल के बच्चों के बचपन की छवि दिखती है। उदाहरण के तौर पर कालिदास रचित अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला पुत्र भरत के बचपन की परिस्थितियों का वर्णन है। प्राचीन काल की कई कथाओं में ऐसे उदाहरण भी हैं जहां बच्चों के बचपन पर सामाजिक दबाव काबिज़ है। महाभारत के कर्ण और एकलव्य की कथा से आप जरूर परिचित होंगें।

क्रियाकलाप

आप कुछ पौराणिक कथाओं का संग्रह करें जिसमें बच्चों के विशेष चरित्रों व दशाओं के विषय में लिखा हो। उनको पढ़े और यह विश्लेषण करें कि :

- उन कथाओं में उल्लेखित बच्चों की सामाजिक स्थिति क्या थी? उदाहरण के तौर पर एकलव्य की कथा को ले सकते हैं।
- क्या उन कथाओं में किसी बालिका के बचपन का भी विवरण मिला है?
- आप उनमें से किसके बचपन से सबसे अधिक प्रभावित हुए और क्यों?

प्राचीन काल के बाद, अब हम बचपन के मध्ययुगीन अवधारणा पर विचार करते हैं। इतिहासकार फिलिप एरीज (1962) मानते हैं कि एक बार जब बाल्यावस्था की संस्था का अभ्युदय होना आरम्भ हुआ, तो समाज में वयस्कों और बच्चों के मध्य के सम्बंध की स्थिति बदलने लगी। बच्चों को वयस्क की वास्तविकता से बचाने के क्रम में बच्चों से उन सभी असहज बातों को छिपाना शुरू हुआ जिसे बच्चों के लिये जानना अच्छा नही माना गया। एरीज़ ने चित्रों, लेखों, सामग्री आदि के विश्लेषण से निकाला कि मध्ययुग से पूर्व बचपन की अवधारणा अस्तित्व में नहीं थी परन्तु बच्चे को अनदेखा भी नहीं किया जाता था। यहां बचपन की अवधारणा और बच्चे के प्रति स्नेह के मायने अलग–अलग हैं। बच्चे के प्रति स्नेह का अर्थ यह नही है कि कोई समाज उसके बचपन को मान रहा है। इस काल में शैशवावस्था को युवावस्था व वयस्कों से अलग नही माना जाता था, अर्थात शैशवावस्था खत्म होते ही वह वयस्क समाज से संबंधित हो जाता था। आगे चलकर, धीरे–धीरे बच्चों की अपनी मिठास, सादगी व अपने नटखटपन के कारण वयस्कों के मनोरंजन एवं तनावमुक्ति के स्रोत के रूप में नई अवधारणा प्रकट होती नज़र आती है। इस समय लिखी किताबों में हमें दिखाई देता है कि मां और परिवार के अन्य लोग बच्चों के खुश होने पर खुश रहते हैं। ऐसा माना जा सकता है कि बच्चों की उछलकूद, बोलना सिखाना, खेलना, आदि छोटी–छोटी हरकतों से मिलनेवाले आनन्द को समाज व परिवार ने महत्व देना शुरू

कर दिया था। इसी कालक्रम में उक्त अवधारणा के विरूद्ध आलोचनात्मक प्रतिक्रियाएं भी सामने आने लगी जिनमें बच्चे का इस तरह से पालन पोषण के दौरान अत्यंत प्रेम और खुले माहौल को गलत माना गया। कालांतर में बच्चे बड़ों के बीच अपने चटपटे उत्तरों के कारण परिहास का कारण बनने लगे तथा ऐसा लगने लगा कि वे वयस्कों के मनोरंजन के लिए बने हैं। यदि आलोचनात्मक दृष्टिकोण से परखें तो पाएंगे कि फिलिप एरीज का यह विश्लेषण का दायरा वस्तुतः एक विशेष अभिजात्य वर्ग के बच्चों पर ही सीमित है, जिसमें मध्ययुगीन समाज के अन्य वर्गो के बच्चों का बचपन शामिल नहीं है। उस समय के किसानों, मजदूरों, उपेक्षित समुदायों में बच्चों का जीवन कैसा था, इसकी समझ उनके विश्लेषण से नहीं मिलती है।

यदि मध्यकाल में भारतीय समाज का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि इसके राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य में कई बदलाव आएं, जो मुख्य रूप से भारत में बाहर के समुदायों के आगमन के कारण हुआ। इस परिस्थिति में बच्चों के विकास का संदर्भ भी बदला, जैसे उनके लालन–पालन, शिक्षा–दीक्षा व परिवेश से संबंधित स्थितियों में विशेष परिवर्तन हुए। बच्चों के पठन–पाठन के लिए विद्यमान पहले की धार्मिक व सामुदायिक संस्थाओं के साथ–साथ 'मकतब', 'मदरसो' व 'पाठशाला' का भी विकास हुआ। इसी काल में इसाई मिशनरियों के आने से बच्चों के बचपन पर प्रभाव परिलक्षित होने लगा। इन संस्थाओं का आप आज भी विकसित रूप में देख सकते हैं।

मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में लगभग सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से वैश्विक स्तर पर बच्चों की अवधारणा में कुछ और परिवर्तन हुए। अब विचारकों का बच्चों के प्रति रूझान का कारण बच्चों से उनका स्नेह नहीं था बल्कि बच्चों के प्रति मनोवैज्ञानिक व नैतिक चिन्ता थी। वे बचपन की अवधि को समझ के विकास का समय मानते थे। धीरे–धीरे बच्चों के मनोविज्ञान पर टिप्पणियों का दौर भी शुरू हुआ। बचपन के भोलेपन के साथ साथ बच्चों की तर्क शीलता विकसित करने, विचारशील व्यक्तित्व का निर्माण करने पर जोर दिया गया ताकि वे अच्छे व सभ्य नागरिक बन सकें। बच्चों के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये विभिन्न प्रयोगों व युक्तियों को भी अपनाये जाने का दौर शुरू हो गया।

कुल मिलाकर देखा जाये तो मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में बाल्यावस्था की वैश्विक अवधारणा में कई स्थायी परिवर्तन हुए, हालाकि पूरे वैश्विक स्तर पर उनमें कितना परिवर्तन आया, इसकी स्पष्ट समझ बना पाना कठिन है। यहां मध्यकालीन समाज की वैश्विक अवधारणा को मोटे तौर पर इस रूप में भी समझा जा सकता है, जहाँ प्रायः बच्चों को उनके पिता या अभिभावक अपने नियंत्रण एवं सत्ता के अधीन रखने के पक्ष में थे। वहीं दूसरी ओर पारम्परिक भारतीय दृष्टिकोण में बच्चों को दया, करूणा, अहिंसा इत्यादि का अधिकारी माना गया, बच्चों में आत्म–अनुशासन, दूसरों का सम्मान करने वाला, निश्छल इत्यादि गुणों को आवश्यक समझा गया है। गहराई में देखा जाये तो बचपन की विशिष्ट चरित्र, स्नेह व दयाभावना वाली अवधारणा का उद्भव परिवार में हुआ। वहीं इसके विपरीत, नियंत्रण, सत्ता और अनुशासन की दूसरी अवधारणा परिवार के बाहर के स्रोतों से निकलकर आई।

क्रियाकलाप

- मध्यकालीन भारत में बच्चों के विषय में लिखे गयें साहित्यों की सूची बनाएं।
- उनमें से किसी एक साहित्य का अध्ययन करें तथा उसमें बच्चों के बचपन पर आये दृष्टांतो/घटनाओं/विवरणों को संकलित करें एवं उनपर अपना विश्लेषण प्रस्तुत करें।

वर्तमान समय में बाल्यावस्था के उद्भव और इतिहास का अध्ययन शुरू करने वालों ने पाया है कि बाल्यावस्था, मातृत्व, घर व परिवार जैसी संस्थाएं आज जिस रूप में मिलती है वे कुछ महत्वपूर्ण अर्थों में न केवल स्थानीय हैं, बल्कि उनका उद्भव हाल में ही हुआ है। अर्थात बाल्यावस्था को हम जिस रूप में जानते हैं वह न केवल एक आधुनिक आविष्कार है बल्कि उसकी प्रकृति संस्थागत है। संस्थागत बाल्यावस्था उन दृष्टिकोणों, भावनाओं, रिवाजों तथा नियमों से बंधी है जो एक बच्चे और उसके बुजुर्गों के बीच गहरी खाई खोदते है। इससे बच्चों और युवाओं को अपने इर्द–गिर्द तथा समाज से सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई आती है, या यह सम्पर्क असंभव हो जाता है। और तो और वे समाज में किसी प्रकार की सक्रिय जिम्मेदारी या उपयोगी भूमिका भी नहीं निभा पाते। जॉन हॉल्ट का मानना है कि आधुनिक बाल्यावस्था की संस्था, दृष्टिकोण, रीति–रिवाज और आधुनिक जीवन में बच्चों से संबंधित कानून इत्यादि का निर्माण एक अनिवार्य प्रयास है, जिसके अन्तर्गत बच्चों का जीवन किस प्रकार है? बड़े–बुर्जुग इनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं? इनके जीवन के लिए क्या बेहतर हो सकता है? इत्यादि, ये सब प्रश्न वयस्कों ने पहली बार आधुनिक युग में सोचना प्रारम्भ किया। यह स्पष्ट है कि आधुनिकता ने 'बच्चे एवं बचपन' के प्रति हमारी समझ में व्यापक बदलाव किये हैं। आगे के भाग में हम इस पर चर्चा करेंगे।

क्रियाकलाप

- क्या आप इस मत से सहमत हैं कि बचपन की अवधारणा एक नवीन संकल्पना है और यह आधुनिक दुनिया की खोज है? कक्षा में इस कथन के ऊपर एक वाद–विवाद परिचर्चा का आयोजन करें।
- बच्चों एवं बचपन की आधुनिक और आधुनिक–पूर्व अवधारणा में किस प्रकार के अंतर हैं, ऐसे अंतर क्यों आए? इस विषय पर अपने कक्षा में चर्चा करें।
- आपका अपना बचपन कैसा रहा है और आप आज के बच्चों को किस प्रकार देखते हैं? इसपर एक आलेख लिखें और कक्षा में अपने साथियों से साझा करें।
- आज के बच्चों को कैसा बचपन चाहिए? इस बारे में कुछ बच्चों से बात करें और उनके जवाबों का विश्लेषण प्रस्तुत करें।

- **समाजीकरण की समझ**

समाजीकरण की अवधारणा – विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण

यह समाजीकरण की अवधारणा क्या है और बच्चों के संदर्भ में क्यों महत्वपूर्ण है, इसे समझने के लिए आइए आगे दिए गए दृष्टांतों का अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं।

दृष्टांत–3

शिक्षा दिवस के अवसर पर गाँधी मैदान पटना में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। बिहार के प्रत्येक प्रमंडल से पाँच–पाँच बच्चे चित्रकला प्रतियोगिता में भाग लेने हेतु आये हुए थे। उनके रहने–खाने की व्यवस्था एक साथ की गई थी। शाम के समय जब बच्चे आपस में मिले तो वे विभिन्न बातों पर चर्चा करने लगे। बिहार के उत्तर के जिलों से आये बच्चे जहाँ बाढ़ की त्रासदी से त्रस्त थे, वहीं सूखा ग्रस्त इलाके के बच्चे पानी की आवश्यकता खेतों में उपज के लिए महसूस करते थे। भाषा, खान–पान, रहन–सहन आदि में भी बच्चे अलग थे। आरा, छपरा के बच्चे चावल दाल, लिट्टी चोखा, खाना पसंद करते थे वही मिथिला के बच्चे दही–चुड़ा खाते थे । बच्चे पहनावे में भी एक दूसरे से भिन्न थे। फिर भी, सारे बच्चे मिलजुलकर रह रहे थे। उनके सामाजिक सांस्कृतिक, जातीय, धार्मिक एवं भौगोलिक विशेषताओं के कारण उनके आचरण, व्यवहार, रहन–सहन, भाषा एवं रीति–रिवाजों में भी अंतर दिखाई पड़ता था।

विमर्श के बिन्दु :

- विभिन्न क्षेत्रों का प्रभाव बच्चों के बचपन पर कैसे पड़ता है ? सोदाहरण व्याख्या करें।
- विभिन्न प्रमंडलों से आये बच्चों के समाजीकरण को प्रभावित करनेवाले प्रमुख कारकों की पहचान करके उनका उल्लेख करें।
- यदि किन्ही दो बच्चों की पृष्ठभूमि एक जैसी नही है तो इस आधार पर उनमें अन्तर किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में शिक्षक के समक्ष कई प्रकार की कक्षागत चुनौतियां उभर कर आती हैं। इस संदर्भ में विचार करें की अपनी कक्षा के बच्चों को 'विविधता' और 'विभेद' की अवधारणा को आप कैसे समझाएंगे।

क्रियाकलाप

- बिहार के समस्त प्रमंडलों के प्रमुख खान–पान, पहनावे, बोलियों, रीति–रिवाजों व भौगोलिक परिस्थितियों की सूची बनाएँ। बच्चों के समाजीकरण में इनकी भूमिकाओं को स्पष्ट करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करें।
- आप अपने आस पड़ोस के विद्यालय के शिक्षक व शिक्षिकाओं से चर्चा करें और यह विश्लेषण करें कि बच्चों के समाजीकरण के विभिन्न तरीकों के प्रति उनका मत क्या है।
- अपने आस पड़ोस के विद्यालय में पढ़ने वाले किन्हीं पाँच बच्चों के संदर्भ में यह पता लगायें कि उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य एवं भाषाई विविधताएँ उनके समाजीकरण को कैसे प्रभावित करती हैं?

दृष्टांत–4

रमेश बाबू एक धनी किसान थे। उनके दो बच्चे थे – सुदेश और मुकेश जो अपने परिवार के साथ अपने पिता रमेश बाबू के घर पर ही रहते थे एवं खेती में उनका हाथ बँटाया करते थे। सुदेश के दो बेटे थे जब कि मुकेश को एक बेटा और एक बेटी थी। चारों बच्चे घर के आँगन में एक साथ खेला करते थे। एक दिन रमेश बाबू की चाची उनके घर आई। चाची को चारों बच्चों का इस तरह खेलना अच्छा नहीं लगता था। उन्होने पिंकी को बुलाकर पास बैठाया और कहा कि – मेरे पैर में बहुत दर्द है जरा तेल लगा दे।

तभी पिंकी की माँ शैल ने कहा – चाची अभी तो वह बच्ची है, लाइए मैं लगा देती हूँ। चाची भड़क कर बोली– 10 साल की लड़की है और तुम इसे बच्ची कह रही हो। तुम भी क्या बात करती हो। दिन भर केवल भाइयों के साथ खेलती है आखिर घर के रीति–रिवाज व संस्कार कब सीखेगी? स्कूल से आते ही बंदरों की तरह उछलती रहती है। इसे कुछ काम धंधा सीखाओ नहीं तो बहुत बदनामी होगी।''

शैल ने कहा, ''चाची इसे समय कहाँ मिलता है। स्कूल के कार्यों से तो बस थोड़ी सी फुरसत मिलती है। उसे भी तो खेलने का मन करता है।''

चाची ने कहा, ''भाई आज कल तो जमाना ही बदल गया है। हमारे जमाने में तो बच्चियाँ माँ के कामों में हाथ बँटाती थी। बड़े बुजुर्गों की सेवा करती थीं। परन्तु आज ये पढ़ने लिखने वाली पीढ़ी घर और परिवार को तो कुछ समझती ही नहीं है।

शैल ने कहा, ''चाची पढ़ना लिखना भी तो जरूरी है। समय के साथ साथ नहीं चलेंगें तो बिलकुल पिछड़ जाएँगें। आज समाज की सोच बदलने लगी है।''

चाची ने कहा, ''तुम्हारी बातें तुम ही जानो। मैं तो मंदिर चली''। मंदिर में उन्हें गाँव की अन्य महिलाएँ मिल गईं। एक ने अपनी बहु की शिकायत करते हुए कहा, ''क्या बतलाऊँ इतना समझाती हूँ कि बेटी को घर के रीति–रिवाज, धर्म–कर्म और परम्परा की बातें सिखाएँ, लेकिन कोई ध्यान ही नहीं देता।

दूसरी ने कहा, ''अरे पहले तो मुस्लिम परिवार की लड़कियाँ पर्दा किया करती थीं, आज तो वे भी पढ़ने के लिए स्कूल जाती हैं।

तीसरी ने कहा, ''शहरों में तो लड़कियाँ और भी स्वतंत्र हो गई हैं। लड़कों की तरह पैंट–शर्ट पहन कर घूमती रहती हैं।''

उनमें से एक महिला जिसकी बेटी शहर में नौकरी करती थी, ने कहा – ''यही तो परेशानी है। हम घर–परिवार, आस–पड़ोस, वाले अपनी इच्छा से जबरन बच्चों के बचपन को सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप ढालना चाहते हैं। कितनी खुशी की बात है कि हमारी बच्चियाँ डॉक्टर, इंजीनीयर, बन कर देश और समाज की सेवा करती हैं तथा घर एवं परिवार का नाम रोशन करती हैं। मीरा कुमार, सानिया मिर्जा, कल्पना चावला, शारदा देवी, इंदिरा गाँधी इत्यादि भी तो लड़कियाँ ही हैं। सही बताना क्या उस समय ऐसा नहीं लगता कि हम अपनी झूठी शान के नाम पर उनके पैरों में सामाजिक मान्यताओं की बेड़ियाँ डाल देते है।''

इस बात ने चाची के दिल को झकझोर दिया। उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ।

विमर्श के बिन्दु :

- चाची के विचार समाज की किस सोच को दर्शाता है? विवेचना करें।
- क्या आप अपने घरों में लिंग भेद के व्यवहारों को अनुभव करते हैं? इसको दूर करने के कौन से उपायों को आप सुझाएँगें?

क्रियाकलाप

- विद्यालय में छात्राओं के साथ हो रहे उन व्यवहारों की पहचान करें जिसे आप लिंग–भेद संबंधी व्यवहार मानते हैं। इसके संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

विषय वस्तु की समझ :

उपरोक्त दृष्टान्तों के माध्यम से आपने देखा की समाजीकरण की प्रक्रिया कैसे समाज में आकार लेती है, कैसे समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं पारिवारिक कारक बच्चों के बचपन को अलग ढंग से देखते हैं एवं उनके समाजीकरण को प्रभावित करते हैं। आपने क्रियाकलापों के माध्यम से भी इसकी सत्यता की पड़ताल की। बच्चा समाज में जन्म लेता है और जन्म से ही वह सामाजिक विश्व का अंग बन जाता है। इस सामाजिक विश्व में परिवार, मित्र–समूह, समुदाय आदि सभी शामिल हैं। इन सभी के साथ बच्चा ऐसे अंतर्सम्बन्धों का ताना–बाना बनाता है जो जीवन पर्यन्त चलता रहता है। बच्चा जैसे–जैसे बढ़ता है , उसके सामाजिक संसार का फैलाव होता जाता है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह अपने परिवेश, विशेषरूप से अपने परिवार, समुदाय, विद्यालय, मित्र–समूह, व अन्य संचार माध्यमों से निरंतर सीखता रहता है और संबंधित व्यवहार, व विश्वास निर्मित व पुननिर्मित करते रहता है। इन्हीं में वह अपने जीवन को ढालने लगता है। हर समाज अपने तरह के लोग चाहता है। इसके लिए परिवार, जाति, समूह, धर्म जैसी न जाने कितनी ही संस्थाएँ समाज ने ऐतिहासिक विकास–क्रम मे बनाई हैं। इस प्रकार समाज में अपने आंतरिक जीवन मूल्यों और मान्यताओं को सिखाने के लिए एक सचेत व्यवस्था है, इन्हीं व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं में बच्चे बड़े होते हैं। चाहे–अनचाहे उनका सामना विभिन्न सामाजिक, संस्थाओं और प्रक्रियाओं से होता है। ये संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे को ''कुछ करने के लिए'' और ''कुछ ना करने के लिए'' कहती हैं। बच्चों की अपनी एक निराली दुनिया होती है जिसमें कभी–कभी बड़े अपनी सामाजिक हैसियत की दरार डालते नजर आते हैं। आपने देखा कि विभिन्न सामाजिक और आर्थिक परिवेश में पलने वाले बच्चों की प्रकृति भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। उसी तरह दृष्टान्त में यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि विभिन्न भौगोलिक, जातीय एवं आर्थिक परिवेश का प्रभाव बच्चों के समाजीकरण पर पड़ता है। अंतिम दृष्टान्त चाची एवं उनके जैसी अन्य महिलाओं के सोच को दर्शाता है जो लैंगिक आधार पर बच्चों के बचपन को ढालने का प्रयास करती है वही शैल और दूसरी महिला दोनों के पालन पोषण में एकरूपता लाने की बात करती है। अगर देखा जाय तो किसी बच्चे का विकास कैसे हो, समाज में उनकी भूमिका कैसी हो यह विभिन्न कारकों के द्वारा निर्धारित होता है।

इस प्रकार समझे ंतो समाजीकरण वह अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह के मूल्य, विश्वास, मनोवृति, मानदण्ड और भाषिक विशेषताएँ अर्जित करता है। इन सांस्कृतिक तत्वों को अर्जित करने के दौरान व्यक्ति की अपनी पहचान और व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस प्रकार समाजीकरण की प्रक्रिया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक समाजिक निरंतरता को बरकरार रखती है। अगर देखा जाए तो समाजीकरण मूलतः सदस्यों द्वारा समाज के तरीके सीखने की प्रक्रिया है। इसका अभिप्राय यह है कि बच्चा संस्कृति के तत्वों को आत्मसात कर अपने व्यवहार को सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप परिमार्जित कर समाज का सदस्य बनता है। बच्चा समाज में सह–अस्तित्व, परस्पर निर्भरता और अपेक्षाएँ सीखता है। इस प्रक्रिया में वह अपने आपको जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में रूपान्तरित करता है और वह समाज का स्वीकार्य सदस्य बनता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बच्चे के जेंडर (लिंग) के अनुसार एक ही समाज अलग–अलग तरीके से समाजीकरण करता है।

इस प्रकार, समाजीकरण की अवधारणा के कई पहलू हैं। विभिन्न शास्त्र समाजीकरण की प्रक्रिया के अलग–अलग पहलूओं पर बल देते हैं। नृविज्ञानी समाजीकरण को मुख्यतया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सांस्कृतिक हस्तांतरण के रूप में देखते हैं। समाजशास्त्री समाजीकरण को मुख्य रूप से सामाजिक भूमिकाओं को सीखने के रूप में देखते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति अपने समूह की भूमिकाओं को सीखते हुए और उसे आत्मसात करते हुए उसका अभिन्न अंग बन जाता है। कुछ समाजशास्त्री समाजीकरण को स्व–अवधारणा के निर्माण के रूप में देखते हैं। आत्मीय और पारस्परिक संबंधों के संदर्भ में 'स्व' और 'पहचान' के विकास को समाजीकरण का केन्द्रीय अंग समझा जाता है।

शिक्षक के रूप में हमारा बच्चों के साथ गहरा संबंध होता है, इसलिए हमें समाजीकरण की उस प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है जो बढ़ते बच्चों पर प्रभाव डालती है। दूसरे शब्दों में 'संदर्भ' और 'मुख्य संबंधों' का बच्चे के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है इसे जानना आवश्यक है। व्यक्तियों में विचार प्रक्रियाएँ समाजीकरण के दौरान विकसित होती हैं। अतः समाजीकरण वह तरीका है जिसमें ज्ञान एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी को सम्प्रेषित किया जाता है। सामाजिक निरंतरता एवं एकता के लिए समाज द्वारा स्वीकृत या निर्धारित मानदंडों, मूल्यों और नियमों का अनुपालन आवश्यक है। सामाजिक रीति–रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक समारोहों के रूप में परंपराएँ इत्यादि वे तरीके हैं जिनमें समूह एक दूसरे के साथ बंधे होते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु आयोजनों एवं धार्मिक उत्सवों जैसे अवसरों पर सामूहिक सहभागिता इसके उदाहरण है। बढ़ते हुए बच्चे को विभिन्न प्रकार से समुदाय के तरीके सिखाए जाते है।

समाजीकरण बच्चों को सामाजिक नियमों एवं परम्पराओं को सिखाता है। हमारे समाज की अनेकों नियम एवं मान्यताएँ हैं जो सामाजिक असमानता को जन्म देते हैं। यह असमानता जाति, धर्म या आर्थिक परिस्थिति के कारण हो सकता है। एक शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय एवं कक्षा–कक्ष में इस प्रकार की असमानता को पनपने न दें एवं बच्चों की गरिमा का एक व्यक्ति के रूप में हो इसका ख्याल रखें।

क्रियाकलाप

- अपने समुदाय से समाजीकरण की प्रक्रिया के कुछ उदाहरणों की सूची बनाएं और यह विश्लेषण करें कि उनके कारण बच्चों के बचपन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।
- क्या समाजीकरण की प्रक्रिया एक निरपेक्ष प्रक्रिया है? अपने अध्ययन केन्द्र पर चर्चा करें।

- **बच्चों का समाजीकरण – प्राथमिक एवं परवर्ती चरण के विभिन्न कारकों से परिचय**

पहलेवाले खण्ड में हमने जाना कि समाजीकरण की प्रक्रिया बहुत जटिल एवं बहुआयामी है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि बहुत सारे कारक इस प्रक्रिया में भागीदार होते हैं। इन कारकों की भूमिका को समझना जरूरी है, जिसे आगे दिए गए दृष्टांतों के माध्यम से विश्लेषित करने की कोशिश की गई है।

दृष्टान्त–5

मुन्ना एक फैक्ट्री में काम किया करता था। एक दुर्घटना में उसकी मौत हो गयी। उसकी पत्नी अपने दो वर्ष के बच्चे चुन्नू के साथ अपने भाई मोहन के घर रहने आ गई। मोहन के दो बच्चे थे – छोटा बेटा टिंकू चुन्नू का हम उम्र था, जबकि बड़ा बेटा रिंकू उससे दो वर्ष बड़ा था। मोहन की पत्नी सोनी को चुन्नू और उसकी माँ का यहाँ रहना बिलकुल पसंद नहीं था। रिंकू और टिंकू पलंग पर बैठ कर खिलौने से खेलते रहते, वहीं चुन्नू जमीन पर पड़ा रहता था और चुन्नू की माँ घर के सारे काम किया करती थी। समय के साथ–साथ बच्चे बड़े हो गए। रिंकू और टिंकू, शहर के निजी विद्यालय में पढ़ने जाने लगे। सुबह–सुबह नाश्ता कर वे स्कूल बस से स्कूल जाया करते थे। चुन्नू उनके स्कूल बैग को बस स्टैंड तक पहुचाया करता था। वही चुन्नू पास के सरकारी स्कूल में पढ़ने जाने लगा। रात के बचे हुए खाने को खाकर वह स्कूल जाया करता था। स्कूल से आने के बाद जहाँ रिंकू, टिंकू कम्प्यूटर गेम खेलने लगते थे, वहीं चुन्नू को उनकी किताबें सजाकर रखनी पड़ती थी। एकदिन टिंकू ने अपनी बैट तोड़ डाली और चुन्नू का नाम लगा दिया। सोनी ने चुन्नू को बहुत डाँटा, कि ''इतना बड़ा हो गया और कोई तरीका नहीं सीखता। बच्चे का बैट तोड़ दिया। जा भाग यहाँ से। चुन्नू हमेशा सोचता की यदि मैं बड़ा हूँ तो मेरा हम उम्र टिंकू छोटा कैसे है? अपनी बातों से वह माँ को हमेशा परेशान किया करता था। माँ किसी तरह उसे शांत कर देती पर उसे समझा नहीं पाती।

विमर्श के बिंदु :

1. चुन्नू और रिंकू के समाजीकरण की परिस्थितियों में क्या फर्क है? स्पष्ट करें।
2. चुन्नू के समाजीकरण में उसके घर परिवार या समाज की भूमिका की पड़ताल करें।

क्रियाकलाप

- अपने आस पड़ोस के विद्यालय के किन्हीं तीन बच्चों का सर्वेक्षण करके बताएँ कि उनके समाजीकरण में उनके परिवार की क्या भूमिका है? इस संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

दृष्टान्त –6

गर्मी की छुट्टियाँ प्रारंभ हो गयी थीं। पलक अपने पापा से जिद कर रही थी कि उसे बोकारो में रहने वाली अपनी मौसी के घर ले चले। मौसी उसे बहुत मानती थी। घर में तो उसे घरेलू काम भी करना पड़ता था और अपने छोटे भाई ईशान की देखभाल भी करनी पड़ती थी। ईशान 8 वर्ष का था लेकिन वह पलक को बहुत तंग किया करता था। माँ पिताजी भी पलक की अपेक्षा ईशान को ज्यादा महत्व दिया करते थे। दादी माँ तो पलक को देखना भी नहीं चाहती थी। कुछ भी लाती थी तो ईशान को पहले मिलता था। पलक अगर माँगती तो दादी माँ उसे झिड़क दिया करती थी। उसी की हम उम्र मौसी की बेटी प्रशंसा के साथ ऐसा नहीं था। मौसी के भी दो बच्चे थे प्रशंसा व अपूर्व परन्तु मौसी दोनों पर सामान रूप से ध्यान दिया करती थी। यही नहीं प्रशंसा भी अपूर्व की तरह पैंट शर्ट पहना करती थी। शाम को दोनों भाई बहन मैदान में साथ–साथ खेलने जाया करते थे। जबकि पलक जब भी गाँव में भाई के साथ बाहर जाकर खेलने की बात करती थी तो दादी बिगड़ जाती और कहती ''अरे कुछ तो लड़कियों वाले गुण सीख। नहीं तो पूरी बिरादरी में नाक कट जाएगी।' माँ बचाव करती व कहती ''अरे माँजी बड़ी होकर वह सब समझ जाएगी अभी वो 9 (नौ) वर्ष की बच्ची ही तो है।''

दादी बिगड़ जाती ''अरे उसकी उम्र में तो हमारी शादी हो गयी थी। यह बच्ची कैसे है? और घर परिवार समाज के तौर तरीके कब सीखेगी? इसी की उम्र की जरीना है देखो कितने संस्कार वाली बच्ची है। घर के रीति–रिवाजों को समझती है। आस पास के सभी लोग उसकी कितनी प्रसंशा करते हैं।

पलक बिगड़ कर कहती ''दादी तुम मुझे हमेशा डांटती रहती हो? क्यों आस–पड़ोस, घर, परिवार मुझे ही कहते हैं ईशान को कोई कुछ नहीं कहता वह भी तो बड़ा हो गया है।

दादी कहती ''अरे ईशान तो लड़का है। तुम्हें दूसरे घर में जाना है। ऐसे बात व्यवहार रखोगी तो ससुराल में तुम्हारा वास कैसे होगा ? वहाँ के रीति–रिवाज, परंपरा इस घर के जैसे हो यह कोई जरूरी है? फिर वहाँ कैसे ताल मेल बैठाओगी? इसीलिए घर परिवार की मान्यताओं के अनुरूप ही तुम्हें काम करना चाहिए।'' पलक नाराज होकर भुन भुनाते हुए रह जाती।

विमर्श के बिंदु :

- पलक के परिवार में उसकी दादी और माँ समाज की कैसे सोच को दर्शाती है?

- पलक की मौसी समाज के किन विचारों का प्रतिवाद करती हैं, क्या आप उन विचारों से सहमत हैं? तर्कपूर्ण विवेचना करें।

क्रियाकलाप

- अपने पड़ोस के विद्यालयों में पढने वाले किन्हीं पाँच बच्चों का अध्ययन करें जिनकी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक पारिवारिक और भाषाई परिवेश अलग–अलग हों। पता लगायें कि इस अन्तर का उनके समाजीकरण पर क्या प्रभाव पड़ता है।

विषय वस्तु की समझ :

ऊपर वर्णित विभिन्न दृष्टांतों के आधार पर यह देखने को मिलता है कि किसी भी बच्चे का समाजीकरण उसके घर, परिवार, आस, पड़ोस, समुदाय, जाति एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में ही होता है। पहले दृष्टांत में आपने देखा कि कैसे चुन्नू की मामी चुन्नू से अपने बच्चों की तुलना में किसी खास व्यावहार की अपेक्षा करती है या दूसरे शब्दों में धनी और गरीब परिवार के बच्चों के समाजीकरण को उनका परिवारिक परिवेश अलग अलग ढंग से परिभाषित करता है। बाद वाले दृष्टांत में पलक की दादी के माध्यम से यहाँ स्पष्ट किया गया है की बच्चों की सामाजिक मूल्यों का निर्धारण भी समाज के, परिवार के लोग अपनी–अपनी मान्यताओं के आधार पर करते हैं, यह बच्चों के लिंग, जाति, धर्म व ग्रामीण और शहरी परिवेश में पले बढे पारिवारिक और सामाजिक मान्यताओं से ही होता है। अर्थात माता–पिता, परिवार, पड़ोस एवं समुदाय धर्म, संस्कृति, लिंग (जेंडर), जाति आदि से संबंधित प्राथमिक व्यवहारों की नींव परिवार में ही पड़ती है।

अब समाजीकरण के इन कारकों को चरणों के आधार पर समझने की कोशिश करते हैं। यदि देखें तो समाजीकरण के दो चरण माने गए हैं – प्राथमिक समाजीकरण और द्वितीयक समाजीकरण। इन दोनों प्रकार के समाजीकरण को उनके कारकों के आधार पर समझा जा सकता है। सामान्य अर्थों में यदि समझा जाए तो परिवारजनों के माध्यम से बच्चे के जन्म से ही समाजीकरण की जो अनौपचारिक प्रक्रिया शुरू हो जाती है, उसे प्राथमिक समाजीकरण के रूप में समझा जा सकता है। इसके अंतर्गत बच्चे अपने सांस्कृतिक मूल्य, व्यवहार, सामाजिक मान्यताओं, इत्यादि को सीखते हैं। बचपन के शुरूआती सालों के संदर्भ में प्राथमिक समाजीकरण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। बच्चों का प्राथमिक समाजीकरण माता–पिता, परिवार, पड़ोस एवं समुदाय के द्वारा होता है जबकि द्वितीयक समाजीकरण में विद्यालय एवं संचार माध्यम प्रमुख भूमिका निभाते हैं। बच्चों के समाजीकरण में प्रथम भूमिका माता–पिता एवं परिवार की होती है, खासकर माता की। माता को बच्चों का प्रथम गुरू कहा जाता है। बच्चों के प्रारंभिक समाजीकरण में माता की भूमिका सबसे प्रमुख होती है। यहाँ यह जानना जरूरी है कि माता–पिता के आपसी संबंध न केवल बच्चों के भावात्मक विकास को प्रभावित करते हैं बल्कि सामाजिक विकास को भी प्रभावित करते हैं। बच्चों में सामाजिक गुणों के विकास में परिवार के सदस्यों द्वारा बच्चे के साथ बिताए गए समय एवं परिवार के सदस्यों के आपसी संबंध की बहुत बड़ी भूमिका होती है। संयुक्त परिवार में

बच्चों के समाजीकरण में माता–पिता, दादा–दादी, चाचा–चाची की भूमिका अहम होती है। लेकिन संयुक्त परिवार धीरे–धीरे टूटने लगे हैं और धीरे–धीरे एकल परिवारों की संख्या बढ़ने लगी हैं। परिवार के स्वरूप का बच्चों के समाजीकरण पर अलग–अलग प्रभाव होता है। संयुक्त परिवार के बच्चे अक्सर सहयोगी एवं सहिष्णु प्रवृति के होते हैं जबकि एकल परिवार के बच्चे ज्यादा स्वतंत्र होते हैं। परिवार में बच्चों की संख्या भी बच्चों की समाजिकता को प्रभावित करती है। एक या दो बच्चे का माता–पिता अच्छी तरह से लालन–पालन कर बेहतर शिक्षा दे सकते जो न केवल बच्चों में अच्छे गुणों को विकास करता है बल्कि बेहतर जीवन के लिए भी प्रेरित करता है। धर्म, संस्कृति, लिंग (जेंडर) जाति से संबंधित प्राथमिक व्यवहारों की नींव परिवार में ही पड़ती है। छोटी उम्र में ही परिवार के सदस्य दंड, पुरस्कार तथा पुनर्बलन का उपयोग कर पारिवारिक मूल्यों एवं समाज के वांछित व्यवहारों को आकार देते रहते हैं। बड़ों के प्रति आदर, चोरी न करना, लड़ाई–झगड़ा न करना आदि स्वीकृत सामाजिक व्यवहार के विकास में परिवार की प्रमुख भूमिका होती है।

बच्चों के प्राथमिक समाजीकरण में आस–पड़ोस की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। परिवार के बाद बच्चे का पहला कदम पड़ोस ही होता है। एक बच्चा अपने परिवार के बाद समाज की जिस इकाई से सबसे पहले अन्तः क्रिया करता है वह पड़ोस ही है। पड़ोस की संरचना अलग–अलग हो सकती है। कहीं एक ही जाति के लोग पड़ोसी हो सकते हैं तो कहीं एक से अधिक जाति एवं धर्म के लोग पड़ोसी हो सकते हैं। शहरी क्षेत्रों में पड़ोस जाति या धर्म की बजाय लगभग समान आर्थिक परिस्थितियों के लोगों का समूह होता है। इन सभी परिस्थितियों में बच्चों का समाजीकरण अलग–अलग होता है।

परिवार की संस्कृति एवं रीति–रिवाजों के बाद वह सबसे ज्यादा अपने आस–पड़ोस की संस्कृति से प्रभावित होता है। बच्चे के पहले मित्र समूह का निर्माण भी पड़ोस में ही होता है। गाँवों में पड़ोसियों के संबंध नातेदारी के रूप में होते हैं जहाँ बच्चे को पड़ोसी को भी भैया, दीदी, चाचा, दादी कहना सिखाया जाता है। इस तरह का समाजीकरण बच्चों को पड़ोस के साथ पारिवारिक रूप से एकीकृत करता है। पड़ोस भी उस बच्चे को अपने बच्चे की तरह देखता है। यह बच्चों में भाई–चारा एवं सहयोग की भावना का विकास करता है। शहरी क्षेत्रों में पड़ोस के साथ संबंध जान–पहचान एवं आमंत्रित कार्यक्रमों में उपस्थिति तक सीमित रहता है। इसलिए संकट की स्थिति में उस प्रकार से पड़ोसी का सहयोग नहीं मिल पाता जैसा कि ग्रामीण क्षेत्रों में होता है। पड़ोस, बच्चों में बड़ों के प्रति आदर का भाव, धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों के सहभागिता, एक जुटता, सहयोग जैसा गुणों का विकास करता है। साथ ही यह बच्चों से सामाजिक संबंधों का विस्तार करता है।

बच्चे के समाजीकरण में परिवार, मित्र–समूह, समुदाय, विद्यालय, संचार माध्यम, राजनीति एवं धर्म प्रमुख भूमिका निभाते हैं। परिवार बच्चे के समाजीकरण की प्राथमिक इकाई है। इसी में बच्चों के समाजीकरण का प्रारंभिक चरण चलता है। धर्म, संस्कृति, लिंग, जाति से संबंधित प्राथमिक व्यवहारों की नींव परिवार में ही पड़ती है। छोटी उम्र में ही परिवार दंड, पुरस्कार तथा पुनर्बलनों का उपयोग कर परिवार एवं समाज के वांछित व्यवहारों को आकार देता है। मित्र–समूह बच्चों का वह खुला मंच होता है जहाँ वे खुलकर अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं एवं अपने मित्रों से बहुत–सारी आदतें सीखते हैं। बच्चों का पहनावा, खान–पान, खेल–कूद एवं जीवन शैली पर मित्र समूह का बहुत बड़ा प्रभाव होता है।

समुदाय हमेशा यह चाहता है कि बच्चा समाज–स्वीकृत व्यवहार ही करे। उनके व्यवहार पर न केवल परिवार का बल्कि अन्य लोगों की भी निगाहें होती हैं। बच्चों की आदतों में सुधार के लिए समुदाय कई बार परिवार पर दबाव भी डालता है।

समुदाय शब्द का प्रयोग दो अर्थो में होता है। एक अर्थ में समुदाय किसी स्थान विशेष में रहने वाले ऐसे लोगों के समूह से है जिनका समान ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत हो एवं समान सरोकार हो। दूसरे अर्थ में एक पूरे शहर, राज्य या देश को भी समुदाय माना जाता है। यहाँ हम समुदाय का प्रयोग पहले अर्थ में देख रहे हैं। इस प्रकार के समुदाय का निर्माण एक जाति, एक धर्म या अनेक जातियाँ एवं अनेक धर्मों से होता है। इन सभी परिस्थितियों में बच्चों का समाजीकरण अलग–अलग होगा।

एक ही जाति द्वारा निर्मित समुदाय में उस जाति विशेष की परम्पराएँ, रीति–रिवाज बच्चों को सिखाया जाता है। जहाँ एक से अधिक जातियों द्वारा निर्मित समुदाय है वहाँ बच्चे की अपनी जाति विशेष की परम्पराओं एवं रीति–रिवाजों के अलावा अन्तर्जातीय संबंधों के बारे में भी सीखने का अवसर मिलता है। इसी प्रकार एक ही धर्म द्वारा निर्मित समुदाय में बच्चों को उस धर्म विशेष के रीति रिवाज, कर्मकाण्ड एवं धार्मिक अनुष्ठानों से अवगत कराया जाता है। जबकि विभिन्न धर्मों द्वारा निर्मित समुदाय में बच्चे के अपने धर्म से संबंधित रीति–रिवाजों, कर्मकाण्डों एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अलावा दूसरे धर्मों से समानता व भिन्नताओं को भी सीखने का अवसर मिलता है।

इसके साथ ही, बच्चे का सामना जब विभिन्न सामाजिक संस्थाओं जैसे–विद्यालय, पाठ्यचर्या, राज्य, आदि से होता है तो समाजीकरण की औपचारिक प्रक्रिया शुरू होती है, जिसे द्वितीयक समाजीकरण कहते हैं। यह प्रक्रिया बाल्यावस्था के उत्तरवर्ती काल से शुरू होती है जब बच्चे का समय परिवार के अलावा समाज के किसी अन्य संस्था जैसे विद्यालय में व्यतीत होना आरम्भ होता है। समाजीकरण की यह प्रक्रिया आगे निरन्तर चलती रहती है।

परवर्ती समाजीकरण के संदर्भ में विद्यालय की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। विद्यालय समाजीकरण में समाज एवं राज्य के बीच कड़ी की भूमिका निभाता है। विद्यालय के पास ऐसे अनेकों उपकरण होते हैं जिनके द्वारा वह बच्चों का समाजीकरण करता है। उसमें से कुछ उपकरण है – पाठ्यचर्या, शिक्षण–पद्धति, शिक्षक की भूमिका, पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ इत्यादि।

इसके साथ ही, आज संचार माध्यम भी समाजीकरण के एक प्रमुख कारक के रूप में उभरा है। कार्टून चैनलों की भरमार एवं मोबाइल फोन की उपलब्धता ने बच्चों की समाजिकता को प्रभावित किया है। ये संचार माध्यम धीरे–धीरे बच्चों को परिवार एवं समुदाय से दूर करते चले जा रहे हैं। कई बार बच्चों में द्वन्द्व की स्थिति भी पैदा करते हैं जब बच्चे संचार माध्यमों पर दिखाए गए दृश्यों को अपने परिवेश के संदर्भ में देखते हैं। राज्य भी परवर्ती समाजीकरण का एक सशक्त माध्यम है जो अपने नीतियों, नियम–कानूनों और सेवाओं के माध्यम से बच्चों के जीवन में हस्तक्षेप करता है।

क्रियाकलाप

अपने आस–पास के किसी परिवार या अपने परिवार में बच्चों के समाजीकरण की जो प्रक्रिया अपनायी जाती है, उसका अवलोकन करके विश्लेषण करें।

• बच्चे, बचपन और बाल अधिकारों का संदर्भ

बच्चे एवं बचपन की अवधारणा में एक आमूलचूल परिवर्तन इस दिशा में भी हुआ कि जहाँ बच्चे के लिए वयस्कों द्वारा किए जाने वाले कार्य 'बाल कल्याण' की परिभाषा में आते थे, वहीं अब इन्हें बाल–अधिकारों की श्रेणी में रखा गया तथा इन्हें बच्चों के हक के रूप में परिभाषित करते हुए, इनकी संवैधानिक जवाबदेही सुनिश्चित की गई। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 'क' एवं अनुच्छेद 45 में बच्चों के लिए 14 वर्ष तक की आयु का संज्ञान लिया गया है। बाल श्रम निषेध एवं नियमन कानून 1986, 14 वर्ष की उम्र तक के व्यक्ति को बच्चे की श्रेणी में रखता है। वहीं दूसरी ओर बागानी कृषि श्रम कानून 1957, बचपन की अवस्था को 18 वर्ष तक मानता है। भारतीय वैवाहिक कानून बाल विवाह रोकथाम अधिनियम 2006 के अनुसार 21 वर्ष से पूर्व कोई लड़का एवं 18 वर्ष से पूर्व कोई लड़की वयस्क की श्रेणी में नहीं रखी जा सकती।

बच्चों और उनके बचपन को आधुनिक समाज में बिना बाल अधिकारों के नहीं समझा जा सकता। आपने बच्चों के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के विषय में जरूर सुना होगा। पर क्या आपने इस पर विचार किया है कि यह अधिकार क्या है और इससे देश में बच्चों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है या पड़ेगा? शिक्षा का अधिकार बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसे बच्चों का अधिकार कहने के क्या मायने हैं? इन मुद्दों को समझने के लिए हमें बाल अधिकारों के विकास की पृष्ठभूमि को समझना होगा।

समाज में बच्चों से संबंधित कई मान्यताएं काफी पहले से चली आ रही हैं। जैसे– बच्चे अति संवेदनशील होते हैं। वे विभिन्न परिस्थितियाँ में जीते हैं, उनकी कुछ आकांक्षाएं भी होती हैं, उनमें क्षमताएं होती हैं, वे अपनी पहचान चाहते हैं, हमें उन्हें समझना चाहिए और उनका ध्यान रखना चाहिए आदि–आदि। इन सभी बातों में समाज की बच्चों के प्रति संवदेनशीलता व दया तो झलकती है। परन्तु यह भी प्रतीत होता है कि बच्चों का महत्व वयस्कों के समान नहीं है क्योंकि अधिकार सिर्फ वयस्कों का ही हो सकता है, बच्चों का नहीं। इस मान्यता ने कहीं न कहीं बच्चों को उन सभी अवसरों से दूर किया है जिससे उनका बेहतर विकास हो पाता। यदि गौर से देखें तो बच्चों के हितों को अत्यधिक नुकसान पहुँचाने वाली प्रथाएँ सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक प्रवृतियों का हिस्सा होती हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी विद्यमान रहती हैं। अतः केवल कानून पारित कर देना ही काफी नहीं है। वरन् इसके लिए सतत् शैक्षिक एवं जागरूक प्रयास, क्षमता निर्माण, परस्पर सहयोग तथा बच्चों के साथ–साथ अभिभावकों की पूर्ण भागीदारी व समर्थन का होना भी आवश्यक है।

जन्म से पूर्व गर्भावस्था तथा जन्म के 18 वर्षों तक बच्चे अपने से बड़ों के सरंक्षण में रह कर अपना जीवन यापन करते हैं। लेकिन, संरक्षण के साथ–साथ यह बात अहम है कि

सभी बच्चे को अपने बचपन की मूलभूत सुविधाएं और अधिकार प्राप्त हों, उन्हें स्वाधीनता, न्याय व शान्तिमय माहौल मिले, ताकि आगे की सामाजिक प्रगति और जीवन को बेहतर बनाने का उन्हें उम्दा अवसर मिल सके।

इन्हीं सब बातों को मानते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा की है तथा सहमति व्यक्त की है कि ''हर व्यक्ति को जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक, राजकीय अथवा सामाजिक, सम्पत्ति, जन्म या हैसियत जैसे किसी भी भेदभाव के बिना प्रदत्त अधिकार और स्वाधीनताएं प्राप्त हैं।'' संयुक्त राष्ट्र संघ ने कहा है कि बचपन पर विशेष ध्यान और सहायता की आवश्यकता है। बच्चों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता सबसे पहले 1924 में बाल अधिकारों के बारे में जेनेवा घोषणा में की गई।

इस घोषणा–पत्र पर दस्तखत करने वाले देशों में भारत भी शामिल है। इनमें बच्चों की रक्षा, उनके विकास आदि के लिए कुछ बातों पर सहमति व्यक्त की गई है। इन बातों को तय करते वक्त यह ख्याल रखा गया है कि प्रत्येक देश की परम्परा और संस्कृति को ध्यान में रखते हुए बच्चों के जीने के हालातों में सुधार किए जाएँ। इस दस्तावेज़ में दुनिया भर के बच्चों के लिए कुछ बुनियादी हकों का ज़िक्र भी किया गया है। यह समझा गया है कि विश्व के सभी देशों में अत्यंत कठिन परिस्थितियों में अनेक बच्चें रह रहे हैं और इन पर विशेष ध्यान दिया जाना जरूरी है। इस प्रकार बच्चे के सरंक्षण एवं समग्र विकास के लिए प्रत्येक राष्ट्र की परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों का पूरा ध्यान रखते हुए प्रत्येक देश में विशेषकर विकासशील देशों में बच्चों की स्थितियों में सुधार का काम किया जाना अपेक्षित है। अतः बच्चों के लिए नागरिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकार निर्धारित किये गये हैं।

प्रमुख बाल अधिकारः

जीने का अधिकार :– यह अधिकार बच्चे के जन्म से पूर्व माता के गर्भ से प्रारंभ होता है। इसके अन्तर्गत बच्चों के अच्छे स्वास्थ्य, पोषण, उपयुक्त जीवन स्तर प्राप्त करने, अपनी पहचान व राष्ट्रीयता का अधिकार सम्मिलित है।

विकास का अधिकार :– बच्चा सशक्त व्यक्तित्व का नागरिक बने अतः उसे उसके सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक शिक्षा, देखभाल, सामाजिक सुरक्षा, सांस्कृतिक एवं मनोरंजनात्मक

गतिविधियों में शामिल होने का अधिकार प्राप्त है। इस ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।

सरंक्षण का अधिकार :– बच्चे ज्यादा संवेदनशील होते हैं इन्हें दुनियादारी, अच्छे–बुरे, सही–गलत की पहचान नहीं होती। अतः इन्हें सुरक्षा व सरंक्षण की आवश्यकता होती है। इसके अन्तर्गत शोषण, दुर्व्यवहार, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार, उपेक्षा(विशेष सरंक्षण आपातकाल, लड़ाई, विकलांगता की स्थिति) से मुक्ति का अधिकार दिया गया है।

सहभागिता का अधिकार :– बच्चों में अनेक जिज्ञासाएं होती हैं, वे स्वयं अभिव्यक्त करना चाहते हैं, स्वतंत्र रूप से कुछ करना चाहते हैं, अहम बातचीत और निर्णय में शामिल होना चाहते हैं। अतः बच्चों के विचारों का आदर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, उपयुक्त सूचना प्राप्त करने हेतु पहुँच, अंतःकरण की आवाज़ सुनने तथा धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार बच्चों की सहभागिता बढ़ाने हेतु दिया गया है।

हमारे देश के संदर्भ में बाल अधिकार की अवधारणा इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि बच्चों की बहुत बड़ी आबादी अभी भी इससे वंचित है। आप अपने आस–पास ही कई ऐसे बच्चों को देखेंगे जिनके बचपन और बाल अधिकारों का रोजाना हनन होता है। यही कारण है कि बाल अधिकारों को भारतीय संविधान में भी अहम जगह दी गई।

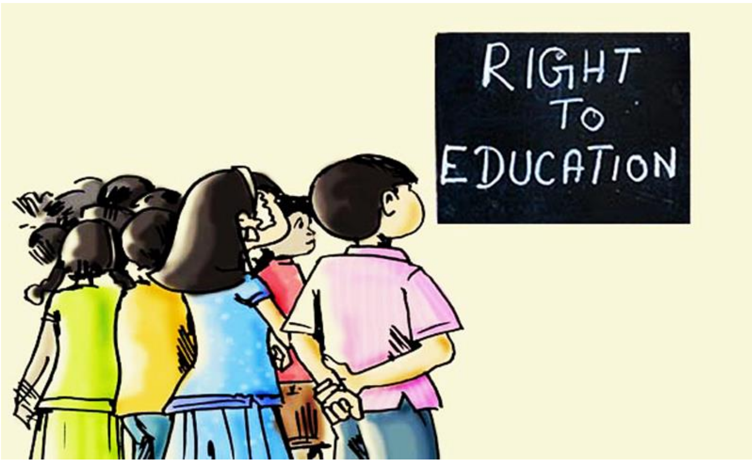

भारत के संविधान में बाल अधिकार

हमारे सविधांन में बच्चों के मुख्य अधिकार निम्न है–

- 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को प्रारम्भिक स्तर तक निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा।
- 18 वर्ष तक की आयु के बच्चों को रोजगार में लगाने से बचाना।
- आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुपयुक्त रोज़गार में जबरदस्ती प्रवेश से बचाना।
- स्वतंत्र एवं सम्मानजनक परिस्थितियों में स्वस्थ रूप से विकसित होने के लिए समान अवसर व सुविधाए प्राप्त करने का अधिकार

''बच्चे देश के भविष्य है'' इस कथन को हम अक्सर कहते हैं जब बच्चों की महत्ता को दर्शाना होता है। यदि बच्चों की अधिकारों की बात करें तो अब हमें यह समझना होगा कि – 'बच्चे देश के वर्त्तमान हैं'। जब हम कहते हैं कि बच्चा वर्त्तमान है तो हम उसकी स्वतंत्र अवस्था को स्वीकार करते हैं तथा उनके अधिकारों की बात करते हैं। इसलिए, बच्चों को भविष्य की अपेक्षित तैयारी के संदर्भ में न समझ कर उन्हें उनके वर्त्तमान संदर्भ में जानना एवं समझना चाहिए। यह दृष्टिकोण हमें बच्चों को यथार्थवादी दृष्टिकोण से समझने में मददगार होगा। एक शिक्षक या शिक्षिका के तौर पर आप अपने विद्यालय के माध्यम से बाल अधिकारों के प्रति सामाजिक चेतना को लाने में अहम भूमिका निभा सकते हैं। विद्यालय के विभिन्न गतिविधियों में भी बाल अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता लाने की जरूरत है।

क्रियाकलाप

- अपने आस–पास के शिक्षकों से बातचीत करें और पता लगाएं कि बाल अधिकारों के बारे में वे क्या–क्या जानते हैं? चर्चा करें।
- आपके समुदाय में बाल–अधिकारों के प्रति क्या जगरूकता है, इसका पता लगाए और कक्षा–कक्ष में साझा करें।
- बच्चे, बचपन और बाल अधिकारों के प्रति समुदाय में संवेदनशीलता लाने के लिए एक योजना बनाए और उसका क्रियान्वयन करें।

समेकन तथा सीखने–सिखाने में सहयोगी ई–संसाधन

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह बात स्पष्ट होती है कि बच्चे एवं बचपन की अवधारणा को समझने के लिए कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। बचपन को लेकर हमारे बहुलतावादी समाज में कई अवधारणाएँ है। एक संवेदनशील एवं लोकतांत्रिक शिक्षक के नाते हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ''अलग–अलग सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों को इस बात का पूरा अवसर मिलना चाहिए कि वे अपने अनुभवों के माध्यम से ज्ञान का स्वयं सृजन करे।'' इस प्रक्रिया में यह जरूरी जान पड़ता है कि हमें (शिक्षकों को) बच्चों की क्षमताओं एवं लोकतांत्रिक मूल्यों में पूरा यकीन हो। यह विश्वास तभी संभव है जब हम बच्चों को समतावादी एवं बहुलतावादी दृष्टिकोण से देखें हैं। हमारी कक्षाओं में अलग–अलग अनुभव जगत एवं विविध क्षमताओं से पूर्ण बच्चे एक साथ होते हैं। इकाई में हमने समाजीकरण की अवधारणा को भी समझा। विभिन्न दृष्टांतों के माध्यम से हमने जाना कि समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम समाज के सक्रिय सदस्य बनते हैं। इस प्रक्रिया में समाज के मानदंडों और मूल्यों के आत्मसातीकरण के साथ–साथ अपनी सामाजिक भूमिकाओं का संपादन करना तथा सीखना ये दोनों बातें

सम्मिलित होती हैं। बच्चे, बचपन एवं समाजीकरण की अवधारणा में परिवार, समुदाय और विद्यालय की विशेष भूमिका होती है। अंत में हमने बाल अधिकारों का बच्चों एवं उनके बचपन के संदर्भ में महत्व को जाना।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें :

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी. / ऑडियो–विजुअल / एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।
- इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, इत्यादि।

मूल्यांकन

1. क्या हर समाज में बच्चे तथा उनके बचपन की एक जैसी अवधारणा है? उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करें।
2. बच्चे तथा बचपन की सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा का विश्लेषण करें।
3. बच्चे की अवधारणा का ऐतिहासिक विकास कैसे हुआ है, उसके प्रमुख बिन्दुओं की चर्चा करें।
4. आधुनिक समय में बचपन की अवधारणा के संबंध में क्या बदलाव आया है ?
5. समाजीकरण से क्या आशय है? कुछ वास्तविक उदाहरणों के माध्यम से समझाएं।
6. बच्चों के समाजीकरण के विभिन्न चरणों का विश्लेषण करें। अपने अनुभव से कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत करें।
7. बच्चों के समाजीकरण के प्रमुख कारकों की भूमिका का विश्लेषण करें।
8. बाल अधिकार की अवधारणा को स्पष्ट करें।
9. बच्चों के संदर्भ में बाल अधिकारों का क्या महत्व है? समझाएं।

2

विद्यालय और समाजीकरण

परिचय

आपने अनुभव किया होगा कि समाज अपने विभिन्न रूपों में सामाजिक मानदण्ड, मूल्य, विश्वास, मनोवृति, आशा तथा दृष्टिकोणों को हस्तगत एवं विकसित करने की व्यवस्था करता है। माता–पिता, पड़ोस एवं समुदाय के बड़े बुजुर्ग तथा एक समूह विशेष द्वारा बच्चों में एक सामाजिक अवस्थिति एवं चेतना का विकास किया जाता है। यह पूरी प्रक्रिया अनौपचारिक व औपचारिक स्तर पर संगठित होती है। कभी–कभी समाजीकरण की प्रक्रियाओं को प्राथमिक तथा द्वितीयक स्तर की प्रक्रिया में विभाजित किया जाता है; जिसमें माता–पिता, परिवार, पड़ोस के बुजुर्ग तथा समुदाय प्राथमिक स्तर की प्रक्रिया से संबंधित है, जबकि विद्यालय, धर्म तथा राज्य द्वितीयक स्तर की प्रक्रिया से। शिक्षा समाजीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। इस संदर्भ में शिक्षा को एक सतत् रूप से संचालित होनेवाली प्रक्रिया या समाजीकरण को संचालित करने वाली व्यवस्था, संगठन या संस्था के रूप में जाना जाता है।

आधुनिक समाज शिक्षा की प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्तियों के समाजीकरण की व्यवस्था करता है। विद्यालय समाजीकरण के इसी एजेण्डे का एक संस्थायीकृत एवं सांगठनिक प्रारूप है। समाज, शिक्षा तथा विद्यालय एक दूसरे से परस्पर अन्तःक्रिया करते हुए बच्चे तथा बचपन दोनों को पुनः निर्मित करते हैं। अतः एक शिक्षक को इनके अंतःक्रियात्मक संबंधों की गतिशीलताओं की समझ आवश्यक है। इसके अतिरिक्त विद्यालय एक विशेष व्यवस्था है जिसमें मानव अभिकर्ता – छात्र, शिक्षक, प्रशासक तथा अन्य प्रतिभागी (हितधारक) अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर्दृष्टि तथा दृष्टिकोणों के माध्यम से एक दूसरे के साथ अंतः क्रिया करते हैं। ये एक निश्चित सामाजिक–सांस्कृतिक तथा राजनैतिक अवस्थिति एवं चेतना के साथ अंतःक्रिया करते हैं। विद्यालय के बाहर का सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिवेश इस अंतःक्रिया को प्रभावित करता है। प्रस्तुत इकाई में उक्त गतिशीलताओं के संदर्भ में व्याप्त विमर्शों की समझ प्राप्त की जायेगी। एक लोकतांत्रिक शिक्षक को एक विद्यालय विशेष में शिक्षक होने तथा शिक्षण को सम्पादित

करने की सीमाओं की समीक्षायी समझ तथा उनको शिक्षाशास्त्रीय सम्भावनाओं में रूपांतरित करने की अपरिहार्यता एवं विकल्पों का बोध कराया जाएगा।

उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप विद्यालय को बच्चों के समाजीकरण के विस्तारित संस्था के रूप में वर्णित करते हुए उनकी शिक्षा के संदर्भ में परिवार, समाज तथा विद्यालय के अंतर्निर्भरता, साझेदारी एवं अंतर्द्वन्द्वों को स्पष्ट कर पाएँगें। विद्यालय के परिप्रेक्ष्य में समाजीकरण की प्रक्रिया को निर्मित करनेवाले क्रियाओं/प्रक्रियाओं एवं अन्य कारकों को भी रेखांकित कर पाएँगे। पुनः विद्यालय की गतिविधियों को प्रभावित करने में स्थानीय आर्थिक–राजनैतिक कारकों/परिस्थितियों के प्रभावों को व्यक्त करने की समझ बनेगी। साथ ही एक शिक्षक के रूप में उपरोक्त समझ के आधार पर उपयुक्त रणनीति बनाकर विद्यालयीय व्यवस्था में उसका प्रयोग कर पाएँगे।

पूर्व अनुभव

पिछली इकाई में हमने बच्चे से सम्बंधित वैसे पहलुओं का अध्ययन किया, जिनको लेकर वे विद्यालय में आते हैं। अतः उस इकाई और संबंधित अनुभव आपको इस इकाई को समझने में काम आएगा। इसके साथ ही, आपको स्वयं अपनी शिक्षा के दौरान विद्यालय का एक विशिष्ट अनुभव हुआ होगा। उसका प्रयोग भी आप इस इकाई के विभिन्न अवधारणाओं को समझने में जरूर करें।

शिक्षा, विद्यालय तथा समाज – अंतर्सम्बंधों की पड़ताल

अपने एक रूप में विद्यालयी शिक्षा, वयस्कों द्वारा बच्चों तथा बचपन के परिसर में एक सकारात्मक हस्तक्षेप है और परवर्ती समाजीकरण का सशक्त माध्यम है। आगे के विभिन्न दृष्टांतों के माध्यम से हम विद्यालयी शिक्षा और इसके समाजीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करेंगे।

दृष्टांत–1

मटुकपुर गाँव के उत्तर–पश्चिमी छोर पर तारकनाथ का परिवार रहता था। तारकनाथ के परिवार में पत्नी, तीन बच्चों के आलावा वृद्ध पिता श्री वंशीधर रहते थे। बड़ी बेटी सरला 13 वर्ष की, मझला बेटा मंटू 11 वर्ष का तथा सबसे छोटी बेटी रूपा 9 वर्ष की थी। उनके घर के बाहर एक नीम का पेड़ था जहाँ उनकी बड़ी बेटी सरला बोरा बिछाकर पढ़ाई कर रही थी; वही उनके दोनों भाई–बहन आपस में झगड़ा कर रहे थे। शोर–शराबा सुनकर उनकी माँ शांति घर के काम को छोड़ कर बच्चों को फटकार लगाने लगी और दोनों को अपने दीदी की तरह काम करने को कहकर वापस चली गई। फिर भी बच्चे झगड़ते रहे। बड़ी बेटी सरला ने भी दोनों बच्चों को शांत करने की कोशिश की लेकिन झगड़ा थमने का नाम नहीं ले रहा था। तभी बच्चों के पिता तारकनाथ जो सुबह–सुबह टहलने गए थे, वापस आ गए। उन्होंने बच्चों से झगड़े का कारण पूछा। छोटी बेटी अपने बड़े भाई मंटू से पेन्सिल माँग रही थी, लेकिन वह देने को तैयार नहीं था क्योंकि पेन्सिल उसकी थी। पिता ने समझाया अगर पेन्सिल उसकी है तो भी वो अपनी छोटी बहन को दे दे। तो मंटू ने तुरंत जबाब दिया – मै नहीं दूँगा। मैं ना इससे कुछ लेता हूँ और ना ही इसको कुछ दूँगा। इस बीच माँ शांति आयी और झल्लाहट में अपने पति से कहा – ना जाने भगवान ने तरह–तरह के बच्चे क्यों बनाए हैं। देखो सरला अपना काम मन लगाकर करती है, घर के कामों में भी मदद करती है। इसका तो किसी से बनता ही नहीं है ना जाने इसके दिन कैसे कटेंगे। आज 11 साल का है कल बड़ा होगा, पढ़ने के लिए बाहर जायेगा, अपना घर परिवार होगा तो सभी जगह इसको दूसरे के मदद की जरूरत पड़ेगी। लेकिन इसके इस व्यवहार से कौन इसे मदद करेगा। तारकनाथ ने कहा – इसके शिक्षक और विद्यालय के दोस्त भी ऐसा ही कह रहे थे। विद्यालय में भी यह किसी से सहयोग नहीं करता, पता नहीं विद्यालय में क्या सीखता है? तभी शांति कहने लगी कि इस रूपा को भी कम ना समझो, एक नंबर की लड़ाकन है यह। अपना पेन्सिल कहीं फेंक दिया और मंटू से लड़ रही है। इतना ही नहीं, मैंने कहा कि तुम बड़ी हो गई हो घर के छोटे–छोटे कामों में हाथ बटाओ तो उसने सीधे जवाब दे दिया कि हमें दीदी की तरह नहीं बनना, मैं तो पापा की तरह बाहर का काम करूँगी। यह कहती है कि मंटू घर का काम क्यों नहीं करता? यह तो मुझसे बड़ा है। शांति कि बात पर तारकनाथ ने कहा – यह लड़की है, इसे समझाओ नहीं तो समाज में लोग क्या कहेंगे। रूपा ने तपाक से जवाब दिया – विद्यालय में शिक्षिका कहती है कि समाज लड़कियों के साथ बुरा व्यवहार करता है। उन्हें केवल घर का काम करने को कहता है। इसलिए मुझे जो अच्छा लगेगा करूँगी। मैं घर का काम नहीं करूँगी।

दोनों पति पत्नी बच्चों को अच्छी आदतें, व्यवहार और सबसे मिलजुल कर रहने एवं अनुशासन की बात सिखा रहे थे तथा उन्हें पढ़ाई–लिखाई की अहमियत भी बता रहे थे कि पढ़ाई से सोचने–समझने की क्षमता विकसित होती है और अपना जीवन बेहतर बन सकता है। परन्तु बच्चों पर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ा। इसी बीच बच्चों के दादा आ गए। उन्होंने भी सरला की प्रशंसा की परन्तु शेष दोनों बच्चों के बारे में

शिकायत किया कि ये पढ़ते–लिखते नहीं है, पता नहीं आज के युग में क्या करेंगें? तारकनाथ ने कहा–जो नहीं पढ़ेंगें वो मूर्ख बने रहेंगे, कौन पूछेगा इन्हें। तारकनाथ के पिता ने कहा–विद्यालय जा कर भी ये संस्कार व व्यवहार नहीं सीख रहे हैं पढ़ाई का मतलब नहीं समझ रहे हैं। देखा नहीं हमारी जाति में जो पढ़े–लिखे लोग हैं उनकी कितनी प्रतिष्ठा है और वे क्षेत्र के सम्मानित लोगों व अधिकारियों से विभिन्न मुद्दों पर बातचीत व बहस भी करते हैं। इसी बीच शांति ने बच्चों से कहा कि अब विद्यालय जाने में देर हो रही है, जल्दी तुमलोग बैग उठाओ और विद्यालय जाओ। यह सुन कर बच्चे शीघ्रता से विद्यालय की ओर प्रस्थान किये। रास्ते में उन्होंने कुछ कुत्तों को लड़ते हुए देखा। बस क्या था। मंटू व रूपा ने उन्हें ईंट–ढेलों से मारना शुरू कर दिया। सरला उन्हें रोक रही थी, परन्तु वे उसकी नहीं सुन रहे थे। 25–30 वर्ष के कुछ युवकों की नजर उन पर पड़ी तो उन्होंने बच्चों को ऐसा करने से रोका और उन्हें कहा कि तुमलोग यह क्या कर रहे हो? किसी जीव को परेशान करना ठीक बात नहीं है। तुम अपनी दीदी की भी बात नहीं मानते? तुम लोगों को विद्यालय जाने में भी देर हो रही है, विद्यालय जाओ। लेकिन बच्चों ने उसे अनसुना कर दिया और ढेला मारना जारी रखा। किसी तरह समझा–बुझा कर व शिक्षा के महत्व की बात कर उन युवकों ने बच्चों को विद्यालय की ओर भेजा।

विद्यालय के ठीक पहले एक बरगद के पेड़ के नीचे 8–10 लोग बैठे हुए थे। कुछ ताश खेल रहे थे तो कुछ देख रहे थे। अचानक अब्दुल की नजर उन बच्चों पर पड़ी। उसने बच्चों से देर होने की वजह पूछी। तभी अन्य लोगों का भी ध्यान उन बच्चों पर गया। उनमें से एक ने कहा–अरे ये तो तारकनाथ के बच्चे हैं। बड़ी वाली तो ठीक है, लेकिन ये दोनों तो बहुत बदमाश हैं। यह लड़का तो बिलकुल अपने पिता से अलग है। इसकी किसी से पटती ही नहीं है। यह सबके साथ झगड़ा करता है। हमारे बच्चे बताते हैं कि यह किसी से कोई भी चीज बांटना ही नहीं चाहता। दो–तीन लोगों ने भी इस बात का समर्थन किया। दूसरे ने कहा कि यह छोटी तो क्रन्तिकारी है। यह सबका जवाब देती है, जब भी इसे कुछ समझाओ तो उसका उल्टा करती है। तभी किसी ने कहा अरे भाई तुम लोग यह क्या लेकर बैठे हो? जाने दो, बच्चों को विद्यालय जाने में देर हो रही है ये बच्चे विद्यालय में ही सुधर पाएँगें। अच्छा बच्चों अब तुमलोग जाओ। बच्चे विद्यालय की ओर बढ़ गए।

विमर्श के बिन्दु :

- उपरोक्त दृष्टांत में तीन बच्चों को दर्शाया गया है। जो बच्चे व बचपन के संदर्भ में पायी जाने वाली विविधता के तीन भिन्न रूप है। आप अपने बचपन को किस रूप के करीब पाते हैं?
- समाज की दृष्टि से बच्चों की देखभाल व विकास हेतु जिन व्यक्तियों/संस्थाओं द्वारा प्रभाव डाला जाता है, उनका उल्लेख करें।
- उपरोक्त दृष्टांत में तीनों बच्चों के सामाजिक व्यवहार/अभिमुखता के संदर्भ में प्रचलित माता–पिता, बड़े बुजुर्ग तथा समुदाय के मान्यताओं, दृष्टिकोणों, मूल्य–निर्धारण व संवेदनशीलता को रेखांकित करें तथा विद्यालय में उनके

समायोजन से सम्बंधित मुद्दों एवं संभावनाओं का दृश्यावलोकन करते हुये अपने विचार प्रस्तुत करें।

- आप कहाँ तक सहमत हैं कि बच्चों में समाजीकरण हेतु माता–पिता, परिवार, आस–पड़ोस, बड़े बुजुर्गों व विद्यालय के समाकलित प्रयासों की आवश्यकता है?

क्रियाकलाप

- अपने आस–पास के बच्चों को उपरोक्त दृष्टांत में दर्शाये गये बचपन के तीन रूपों के अनुरूप सूचीबद्ध करें व रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

दृष्टांत –2

सहरसा जिले के पंचगछिया गाँव के मध्य विद्यालय में प्रधानाध्यापक व अध्यापकों के बैठक में तय हुआ कि बच्चों के सीखने–समझने के स्तर में सुधार व उन्नयन के लिए अभिभावकों की सहायता ली जाय। इन्हीं दिनों स्कूल में बच्चों की छात्रवृति भी वितरित होनी थी। यह तय हुआ की छात्रवृति देने के लिए सभी अभिभावकों को एक ही दिन बुलाया जाय और उस दिन बच्चों की छात्रवृति भी वितरित की जाय और लगे हाथ बच्चों के विषय में भी बात हो जायेगी। बैठक की तिथि व समय की सूचना सभी अभिभावको ं तक पहुँचाई गयी। बैठक के दिन 9 बजे से ही अभिभावक विद्यालय में आने शुरू हो गए। प्रवेश करते ही उनकी मुलाकात 2–3 शिक्षकों से हो गयी जो शायद अभिभावकों के स्वागतार्थ ही वहाँ खड़े थे। बैठक लगभग 9:30 बजे से प्रारम्भ होनी थी। 9:45 तक सभी अभिभावक सभा कक्ष में आ गए। प्रधानाध्यापक, मुखिया, सरपंच तथा अन्य शिक्षाप्रेमियों का इंतजार हो रहा था। 9:50 तक सभी लोग आ गए। बैठक प्रधानाध्यापक के स्वागत भाषण से प्रारम्भ हुई। प्रधानाध्यापक ने बच्चों की अनुपस्थिति, उनके द्वारा गृहकार्य ना करना, बच्चों की शैक्षिक प्रगति, विद्यालय में अभिभावकों के सहयोग तथा विद्यालय में स्वच्छता इत्यादि मुद्दा प्रस्तुत किया; साथ–साथ सभी अभिभावकों व अन्य प्रतिभागियों से अपील की कि वे खुलकर अपने मुद्दे, समस्याएँ व विचार रखें। बातचीत सौहार्दपूर्ण वातावरण में प्रारम्भ हुई लेकिन जैसे–जैसे बात आगे बढ़ी, अभिभावकों का समूह लगभग 3 उपसमूहों में विभाजित हो गया। एक उपसमूह के लोग विनम्रतापूर्वक अपनी बातें रख रहे थे तथा विद्यालय को हर आवश्यक सहयोग प्रदान करने के लिये अपनी तत्परता जता रहे थे। दूसरा उपसमूह भी विनम्रता से अपनी बात रख रहा था लेकिन उतनी रूचि से नहीं। प्रधानाध्यापक व अन्य अध्यापकों की बातों से यह पता लगा कि इनके बच्चे 15–20 दिनों में 1 या 2 दिन ही स्कूल आते हैं। बैठक में ये फुसफुसाहट भी थी की इनके बच्चे प्राइवेट विद्यालयों में भी पढ़ते हैं। तीसरा उपसमूह जो की लगभग 40 प्रतिशत अभिभावकों का था के सदस्य विद्यालय के विभिन्न समस्याओं पर सवाल कर रहे थे – मसलन, विद्यालय का अधिकांश समय खिचड़ी बनाने और खिलाने में चला जाता है, बच्चों को लिखने–पढ़ने नहीं आता, शिक्षक केवल गप्प करते हैं, कक्षाएँ खाली जाती हैं, शिक्षक भेदभाव भी करते हैं; बच्चों के सामने झगड़ा भी करते हैं। शिक्षकों ने भी आरोप लगाया आपके बच्चों में पढ़ने का संस्कार नहीं है, आप अपने बच्चों पर समय नहीं देते, आप इनसे घर का काम कराते हैं आदि–आदि। इस तरह अभिभावकों का यह उपसमूह सभी लोगों के सामने झगड़ने लगा। प्रधानाध्यापक और मुखिया जी ने किसी तरह सभी को शांत कराया। बैठक में

मुखिया जी ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा की शिक्षक और अभिभावक दोनों अपनी जिम्मेदारियाँ बच्चों के प्रति समझें और विद्यालय के उभरे इन मूलभूत मुद्दों का हल निकालने का प्रयास करें और स्कूल में अच्छी पढ़ाई–लिखाई हो ऐसा वातावरण बनाएँ। अंत में धन्यवाद ज्ञापन प्रस्ताव के बाद सभी को चाय पर आमंत्रित किया गया और अभिभावकों से कहा गया कि वे अपने बच्चों की छात्रवृति प्राप्त करें।

विमर्श के बिन्दु :

- उपरोक्त दृष्टांत में विद्यालय के प्रधानाचार्य तथा शिक्षकों द्वारा बच्चों व अभिभावकों के प्रति व्यक्त दृष्टिकोणों व मुद्दों की सूची बनाएँ।
- उपरोक्त दृष्टांत में अभिभावकों द्वारा विद्यालय के प्रति व्यक्त दृष्टिकोणों व मुद्दों की सूची बनायें।
- दोनों सूचियों का मिलान करते हुये विद्यालय/शिक्षक तथा समुदाय/अभिभावक के मध्य अंतःक्रिया की विवेचना सहयोगात्मक, विरोधात्मक व तटस्थ संबंधों के आलोक में करें। एक शिक्षक के रूप में विद्यालय तथा अभिभावकों के बीच विरोधात्मक व तटस्थ दृष्टिकोणों/प्रवृत्तियों को शैक्षिक रूप में उर्वर संभावनाओं में तब्दील करने के लिये आप किस प्रकार की रणनीति अपनाएँगे।
- जब आप स्वयं विद्यालय में एक विद्यार्थी के रूप में अध्ययन कर रहे थे, उस समय विद्यालय तथा परिवार/समुदाय के बीच किस प्रकार के संबंध थे। वर्त्तमान में आप जिस विद्यालय में पढ़ा रहे हैं, उसका परिवार/समुदाय के साथ संबंध पूर्व संबंध से किन मायनों में समान अथवा भिन्न है, स्पष्ट करें।

क्रियाकलाप

- अपने आसपास के 10 छात्र–छात्राओं के अभिभावकों से उनके बच्चों से संबंधित शैक्षिक व व्यवहारगत समस्याओं के संदर्भ में जानकारी लेकर उसकी सूची बनाएँ। अभिभावक विद्यालय व शिक्षकों को इसके लिये किन–किन बिंदुओं पर दोषी मानते हैं, उसकी भी सूची तैयार करें।

दृष्टांत –3

बिहार में गंडक नदी के किनारे गौसियाँ नाम का एक गाँव है। गाँव में एक प्राथमिक विद्यालय है। उस विद्यालय में रमेश बाबू नये प्रधानाध्यापक बन कर आये। रमेश बाबू जब कार्यभार ग्रहण करने हेतु विद्यालय गए तब विद्यालय की दुर्दशा देखकर अत्यंत दुखी हुए। बरसात का दिन था। विद्यालय भवन जो देखने से तो लगता था कि हाल ही में बन कर तैयार हुआ है परन्तु भवन के कई हिस्सों से बरसात का पानी लगातार टपक रहा था। और तो और विद्यालय भवन का एक हिस्सा बरसात के पानी के लगातार रिसने से भहराकर गिर गया था। नव निर्मित चहारदीवारी भी कई जगहों से

टूटी हुई थी और उसकी ईंटें भी वहाँ से नदारत थीं। वहाँ के शिक्षक दीनानाथ से पूछने पर पता चला कि बीते जाड़े में ही भवन बन कर तैयार हुआ था। उस समय के प्रधानाध्यापक, मुखिया जी, विद्यालय शिक्षा समिति के अध्यक्ष, बी॰ ई॰ ओ॰ साहब तथा गाँव के कुछ दबंग लोगों के बीच काफी कहासुनी हुई थी। लेकिन पता नहीं कैसे यह सब मामला शांत हो गया। दीनानाथ से यह भी पता चला कि विद्यालय में वैसे तो करीब दो सौ छात्रों का नामांकन है परन्तु सिर्फ दक्खिन टोला के ही बच्चे पढ़ने आते हैं। बाकी के छात्रों का नाम तो विद्यालय में चलता है परन्तु वे पढ़ने के लिये रामनाथपुर बाजार के प्राइवेट विद्यालय में जाते हैं। रमेश बाबू ने लंबी साँस लेते हुए विद्यालय परिसर की ओर देखा। पूरा परिसर उबड़–खाबड़ व झाड़–झंखाड़ से भरा हुआ था। सभी छात्र लगातार टपकते हुए पानी से बचने के लिये भवन के एक कोने में सटके हुए थे। मैले–कुचैले कपड़ों में बरसात के पानी की तरह बहते हुए नाक को शर्ट की बाँह से पोछते हुए बच्चे दीवार के किनारे जाने के लिये आपस में झगड़ रहे थे। कमरे के अंदर टपकते हुए पानी से बचने के लिये छाता लगाये रमेश बाबू अपने बचपन की यादों में खो गए। उन्हें याद आया की एक बार जब बरसात में उनकी कक्षा चल रही थी और कमरे में एक जगह से पानी टपकने लगा था तो कैसे यह खबर गाँव में पहुँचते ही लोगों ने सीमेंट, बालू, ईटें आदि जुटायी और पूरन राजमिस्त्री व अन्य लोगों ने उसे घर के काम से भी बड़ा काम मानते हुए ठीक किया। उन्हें यह भी याद आया कि विद्यालय को सुन्दर बनाने के लिये उनके दादा, गाँव के अन्य लोग व सारे छात्र किस प्रकार फूलों की क्यारियाँ बनाते थे, तरह–तरह के फूल लगाते थे। उस समय विद्यालय में सिर्फ थोथा ज्ञान ही नहीं दिया जाता था बल्कि बागवानी व खेती के गुर भी सिखाये जाते थे। अगल–बगल के पेड़–पौधों व जीव–जन्तुओं से भी गहरे रिश्ते का बोध कराया जाता था। बरसात के दिनों में जब नदी में पानी भर जाता तब नाव चलाना भी सिखाया जाता था। हल्की–फुल्की बीमारियों में काम आने वाली जड़ी–बूटियों की पहचान व उनका प्रयोग भी बताया जाता था। गाँव की सफाई व सौंदर्यीकरण में भी मास्टर जी व सारे छात्र सहयोग देते थे। स्कूल में आम, जामुन, लीची, केला, अमरूद आदि के पेड़ लगे हुए थे। परन्तु उन पेड़ों पर लदे हुए फलों को गाँव का कोई भी व्यक्ति नुकसान नहीं पहुँचाता था। पकने के बाद वे सारे फिर छात्रों में बाँटे जाते थे। विद्यालय में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में गाँव के लोग बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते थे। गाँव में होने वाले किसी भी बड़े काम में विद्यालय के शिक्षकों से जरूरी सलाह ली जाती थी। बच्चे यदि घर पर शरारत करते तो घर के लोग यह कहते कि आदत सही कर लो नहीं तो इसकी शिकायत मास्टर साहब से की जाएगी। कैसे उस दौर में गाँव के जीवन से विद्यालय का तथा विद्यालय के जीवन से गाँव का गहरा रिश्ता था। पर हाय! आज......। क्या हो गया है लोगों को? आज वे क्यों विद्यालय को अपना नहीं मान रहे हैं? अपने विचारों में गहरे डूबे हुए रमेश बाबू को मास्टर दीनानाथ ने जैसे अचानक जगा दिया। दीनानाथ ने कहा की बरसात के कारण बच्चे काफी परेशान हैं। आज 'रेनी डे' घोषित कर बच्चों की छुट्टी कर दीजिए। रमेश बाबू ने हामी में सिर हिलाया। छुट्टी हो गयी बच्चे बोरे से सिर ढकते हुए घर की ओर भागे। रमेश बाबू भी भारी मन से घर की ओर चले।

घर पर भी रमेश बाबू विद्यालय की दशा के बारे में सोचते रहे। रात बड़ी बेचैनी में बीती। लेकिन उन्होंने एक संकल्प किया कि वो विद्यालय और गाँव के गहरे रिश्ते को

फिर से जीवित करेंगे। अगले दिन इस संकल्प के साथ उन्होंने विद्यालय के शिक्षकों की एक बैठक बुलाई। लेकिन ज्यादातर शिक्षक वैसे थे जो यह मान बैठे थे की यह स्थिति सुधर नहीं सकती। परन्तु रमेश बाबू ने उनसे असहमति जताते हुए विश्वास के साथ एक रणनीति बनाई कि बच्चों की छोटी–छोटी टोलियाँ बनाई जाय और उन्हें गाँव के विभिन्न लोगों के पास भेज कर विद्यालय के साथ सहयोगात्मक रवैया अपनाने की अपील की जाय। टोलियाँ बनाई गयी, प्रत्येक टोली का नेतृत्व एक–एक शिक्षक को सौंपा गया। टोली ने अपना कार्य किया और कार्य के दौरान उभरे मुद्दों की चर्चा रमेश बाबू से की। टोलियों ने बताया कि लोगों ने मुख्यतः तीन प्रकार से प्रतिक्रियाएँ दी। कुछ लोगों ने सहयोग से सीधे मना कर दिया और कहा की उनके बच्चे प्राइवेट विद्यालय में पढ़ते है, उन्हें इस सरकारी विद्यालय से क्या काम? कुछ लोगों ने विद्यालय में हुए भ्रष्टाचार का हवाला देते हुए विरोधी स्वर अपनाये और कहा कि इस प्रकार के फालतू कामों से कुछ नहीं होने वाला है। आपका काम पढ़ाना है ना की समाज सुधार और हमारे बच्चों से भी यह फालतू काम मत कराइए। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी मिले जो बहुत उत्साहित होकर सहयोग की इच्छा व्यक्त किये।

टोलियों द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर रमेश बाबू ने सहयोग की इच्छा रखने वाले लोगों, विद्यार्थियों व शिक्षकों की मदद से विद्यालय की सफाई कराई, उबड़–खाबड़ व झाड़–झंखाड़ से भरे परिसर को ठीक कराया। सुंदर फूलों, पौधों व फलदार पेड़ों को लगवाया। गाँव के कुछ राजमिस्त्रियों से सहयोग की प्रार्थना की व चंदा जुटाकर निर्माण सामग्रियाँ लायी गयी। विद्यालय भवन ठीक कराया गया। लेकिन रमेश बाबू इतने से संतुष्ट नहीं हुए। वे चाहते थे की विद्यालय भी गाँव के लिये कुछ योगदान दे सके। वे समस्त सहयोगियों के साथ गाँव में फैली गन्दगी व जल–जमाव की समस्या को दूर करने में जुट गए। इससे प्रेरित होकर अन्य लोग भी जो प्रारम्भ में विरोधी व तटस्थ भाव रख रहे थे पूरे मनोयोग से सहयोग हेतु आ गए। ऐसा लगने लगा की विद्यालय व पूरा गाँव एक ही परिवार है और अब पूरा परिवार एकजूट होकर सबके बेहतरी की दिशा में चल रहा है। रमेश बाबू के चेहरे पर मुस्कान लौट आयी।

विमर्श के बिन्दु :

- उपरोक्त दृष्टांत में विद्यालय तथा समुदाय के बीच संबंध को जीवन्त बनाने में प्रधानाध्यापक द्वारा अपनायी गयी रणनीति की एक अध्यापक के रूप में समीक्षा करें।
- उपरोक्त दृष्टांत में विद्यालय की बेहतरी हेतु प्रधानाध्यापक के प्रयासों के संदर्भ में सामुदायिक असहयोग के कारणों व तर्काधारों की विवेचना करें।
- एक अध्यापक के रूप में आप विद्यालय व समुदाय के बीच विश्वासपरक साझेदारी को अधिक उर्वर बनाने के लिये कौन–कौन सी रणनीतियाँ अपनाएँगे।
- विद्यालय 'समाज का', 'समाज के लिये' तथा 'समाज के द्वारा' है। इस उक्ति की व्याख्या अपने संचालित सामुदायिक कार्यों की वांछनीयता के संबंध में करें।

क्रियाकलाप

- अपने आस–पड़ोस के बुजुर्गों से उनके दौर के विद्यालय और समाज के अंतर्संबंधों को स्पष्ट करने वाले दस दृष्टान्तों का संग्रह करें तथा उसके प्रमुख बिंदुओं को रेखांकित करें।

विषय–वस्तु की समझ :

हम पहली इकाई में यह चर्चा कर चुके हैं कि समाजीकरण की प्रक्रिया के मुख्यतः दो चरण हैं – प्राथमिक तथा परवर्ती। प्राथमिक चरण पर माता–पिता, परिवार, आस–पड़ोस तथा समुदाय जहाँ समाजीकरण के मुख्यतः सरल पक्ष से संबंधित हैं वहीं परवर्ती स्तर पर विद्यालय, धर्म व राज्य समाजीकरण के मुख्यतः जटिल पक्ष से संबंधित हैं। चूँकि समाज जटिल समग्र है, अतः उच्च स्तर के समाजीकरण हेतु समाज ने संचित ज्ञान, समझ, व्यवहार, भाव, आस्था व विश्वास की शिक्षा दिये जाने के लिये विद्यालय नामक संस्था को निर्मित किया जहाँ अध्ययन कर बच्चे समाज की विभिन्न जटिलताओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने में दक्ष बन सके। इस प्रकार एक संस्था के रूप में शिक्षा व विद्यालय मूलतः उच्च स्तर के समाजीकरण के बड़े दायित्व का निर्वहन करते हैं, साथ ही समाज के रीति–रिवाजों, मान्यताओं व मूल्यों इत्यादि को संशोधित, निर्मित व पुनर्निर्मित भी करते रहते हैं। इस प्रकार शिक्षा व विद्यालय तथा समाज के मध्य परस्पर पूरकता का संबंध है।

आपने ऊपर दिये गए तीन दृष्टान्तों का अध्ययन किया, उससे संबंधित विमर्श के बिंदुओं पर चिंतन किया तथा दिये गए क्रियाकलापों के माध्यम से वास्तविक परिस्थिति में शिक्षा, विद्यालय तथा समाज के अंतर्संबंधों के बारे में अपनी समझ विकसित की। पहले दृष्टान्त में आपने देखा कि बालक–बालिकाओं जिनका समाजीकरण हो रहा है, में समाज के अनुरूप व्यवहार करने वाली बड़ी बेटी सरला को सामाजिक स्वीकृति मिली है जबकि तटस्थ रहने वाले मझले बेटे मंटू तथा विरोधी स्वर वाली छोटी बेटी रूपा की हर जगह आलोचना हो रही है। सारे लोग मंटू व रूपा के व्यवहार में सुधार की निरंतर शिक्षा दे रहे हैं। इन तीन पात्रों के माध्यम से आपने यह देखा कि समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान बालक–बालिकाएँ मुख्यतः तीन प्रकार के व्यवहार प्रदर्शित करते हैं– सहयोगपरक अनुकूलन, तटस्थ भाव तथा विरोधी प्रतिक्रियाएँ। समाज में सहयोगपरक अनुकूलन प्रशंसित होता है। जबकि तटस्थ भाव व विरोधी प्रतिक्रियाएँ हतोत्साहित की जाती हैं व उनके व्यवहार परिवर्तन का निरंतर प्रयास किया जाता है। साथ ही समुदाय की यह भी आस्था है कि विद्यालय में ही उनके व्यवहार का समुचित रूपांतरण हो पायेगा। इस प्रकार समुदाय विद्यालय को समाजीकरण की उच्चीकृत संस्था के रूप में देखता है।

दूसरे दृष्टान्त में आपने यह देखा की समाजीकरण के दायित्व को किस प्रकार विद्यालय व समुदाय एक दूसरे पर थोप रहे हैं। समुदाय बच्चे को विद्यालय भेज कर ही अपने कर्तव्यों की पूर्णाहुति मान लेता है , जबकि विद्यालय जो तमाम कारणों से अपने कर्तव्यों को पूरी तरह से नहीं निभा पा रहा है, समुदाय से भरपूर सहयोग चाहता है। इस दृष्टान्त में भी समुदाय के तीन प्रकार के दृष्टिकोण सामने आते हैं– सहयोगी, तटस्थ व विरोधी। सहयोगी

समूह की आस्था है कि समाजीकरण समुदाय और विद्यालय के सम्मिलित प्रयास से ही संभव है जबकि तटस्थ समूह उस विद्यालय को अपना मानता ही नहीं है क्योंकि उनके बच्चे प्राइवेट विद्यालयों में पढ़ते हैं और उनका संबंध विद्यालय से सिर्फ वजीफ़ा व अन्य सुविधाएँ प्राप्त करने तक का है। वही विरोधी समूह सारी कमियों के लिये सिर्फ विद्यालय को जिम्मेदार मानता है और अपने उत्तरदायित्त्व से भागता है। यहाँ यह बात समझना होगा कि विद्यालय व समाज दोनों के सम्मिलित प्रयास ही समाजीकरण की प्रक्रिया को बेहतर बना सकते हैं।

तीसरे दृष्टान्त के माध्यम से आपने यह महसूस किया कि किस प्रकार आज का समाज विद्यालय के प्रति असंवेदनशील हो गया है; वह विद्यालय (खासकर सरकारी विद्यालय) को अपना नहीं मान रहा है। विद्यालय की व्यवस्था को बेहतर बनाने में सहयोग प्रदान करने की बजाय उसे क्षति पहुँचाने की बढ़ती प्रवृति को भी आपने महसूस किया होगा। दृष्टान्त के माध्यम से बुजुर्गों के समय के विद्यालय और समुदाय के गहरे रिश्ते को भी आपने समझा होगा। पहले समुदाय विद्यालय को यह जताता था की विद्यालय उसका अपना है परन्तु आज विद्यालय को यह सिद्ध करना पड़ रहा है कि वह समुदाय का, समुदाय के लिये व समुदाय द्वारा है। आपने दृष्टान्त में यह भी पढ़ा की एक संस्था के रूप में शिक्षा, शिक्षायी विषय, व्यवस्थाओं व आयोजनों में प्रकृति, परिवार व समुदाय के साथ गहरे रिश्ते के विकास के लिये जगह, बुजुर्गों के समय के विद्यालयों में तो थी परन्तु, आप अनुभव कर रहे होंगे कि आज के शिक्षायी व्यवस्थाओं में अपने अगल–बगल के पेंड़–पौधों, पशु–पक्षियों, जीव–जन्तुओं, नदी–नालों व प्राकृतिक विविधताओं तथा अपने आस–पड़ोस के लोगों से जुड़ाव व उनके प्रति प्रेम–संवेदना के लिये पर्याप्त अवसर नहीं है। अतः एक संस्था के रूप में शिक्षा व विद्यालय की समाज के प्रति भूमिका के संदर्भ में वर्तमान विद्यालयीय व्यवस्थाओं का अवलोकन व तदनुरूप सुधार आवश्यक है। वहीं समाज को भी विद्यालय के प्रति उसकी भूमिकाओं के संदर्भ में जागरूक बनाने की जरूरत है। शिक्षायी विषयों में प्रकृति व समाज से जुड़ाव के अवसर देने, विद्यालयी आयोजनों में उसको व्यवहार में लाने तथा समाज के हार्दिक सहयोग के माध्यम से ही समाजीकरण की प्रक्रिया बेहतर संचलित हो सकती है। परन्तु आवश्यक यह भी है कि समाजीकरण की प्रक्रिया लोकतांत्रिक हो; उसमें तमाम मतों, विचारों, भावनाओं व संवेदनशीलताओं के लिये भी कहीं ना कहीं स्थान हो फिर चाहे वह उन बच्चों द्वारा ही क्यों ना दिया गया हो जो उस समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं।

क्रियाकलाप

- विद्यालयी शिक्षा और समाज के बीच कें विभिन्न अंतर्सम्बंधों को आपने कई दृष्टांतों के माध्यम से समझा। आप अपने अनुभव से कुछ को स्वयं लिखें और साथियों के साथ साझा करें।
- विद्यालयी शिक्षा को समाज किस प्रकार प्रभावित करती है और समाज को विद्यालय में चलनेवाली शिक्षा कैसे प्रभावित करती है, दोनों से सम्बंधित कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करें।

- विद्यालयी शिक्षा के बारे में आस–पास के समुदाय के लोगों का क्या दृष्टिकोण है, यह विद्यालय और समुदाय के अंतर्सम्बंधों को समझने में बहुत कारगर होगा। इस संबंध में आप समुदाय के कुछ लोगों का साक्षात्कार लेकर उसका विश्लेषण करें।

विद्यालय में समाजीकरण की प्रक्रिया – विभिन्न कारकों की भूमिका व प्रभावों की समझ

विद्यालय में चलनेवाली समाजीकरण की प्रक्रिया में विभिन्न कारकों की जटिल भूमिका होती है। इन कारकों का प्रभाव केवल बच्चों पर ही नहीं बल्कि समूचे समाज पर परोक्ष रूप से पड़ता है। आईए, विद्यालय में समाजीकरण की प्रक्रिया को निम्नलिखित दृष्टांतों के माध्यम से समझने की कोशिश करें।

दृष्टान्त –4

रामपुर का उत्क्रमित मध्य विद्यालय रोज की तरह 8 बजे सुबह प्रारम्भ हुआ। प्रार्थना प्रारम्भ हुई। सभी बच्चे, कक्षावार, पंक्तिबद्ध खड़े होकर प्रार्थना में भाग ले रहे थे। जैसे–जैसे प्रार्थना आगे बढ़ रही थी कुछ बच्चे अधीर हो रहे थे। रेनू और समिता आपस में फुसफुसाते हुए कुछ बात कर रहे थे। वहीं पंक्ति के पीछे के कुछ बच्चे प्रार्थना में चुपचाप खड़े थे तथा गाने में भाग नहीं ले रहे थे। कुछ बच्चे गर्मी से परेशान होकर गिर रहे थे। कुछ शिक्षक इन बच्चों को छाया में ले जा रहे थे। इसी बीच पी० टी० शिक्षक श्रीमती मंजू की नज़र बात करते हुए रेनू और समिता पर पड़ी तो उन्होंने दोनों को डाँटते हुए प्रार्थना में भाग लेने का निर्देश दिया। साथ ही 'बिहार गीत' समाप्त होने के बाद समस्त बच्चों को सावधान होने का आदेश देकर प्रार्थना में एकाग्रता के साथ भाग लेने के बारे में बताने लगी। हालाकि प्रार्थना में भी उत्तर पश्चिम कोने पर खड़े दो तीन शिक्षक आपस में बात करते हुए हँस रहे थे। प्रार्थना खत्म होने के बाद बच्चे अपने – अपने कक्षा की तरफ बढ़े। रास्ते में बच्चों के बीच धूप में बच्चों के गिरने, रेनू और समिता को मिली फटकार तथा मंजू मैम के द्वारा सभी बच्चों को अनुशासित रहने के सलाह पर छोटे–छोटे समूहों में बात हो रही थी। बच्चे रास्ते में मिलने वाले शिक्षक–शिक्षिकाओं का अभिवादन भी कर रहे थे। जिसमें कुछ शिक्षक जवाब देते और

कुछ बिना बोले या बिना किसी जवाबी मुद्रा के आगे बढ़ते जा रहे थे। कक्षा प्रारम्भ हुई। शिक्षिका ने उपस्थिति लिया तथा गणित का शिक्षण कार्य शुरू हुआ। शिक्षिका ने एक सवाल श्यामपट्ट पर लिखकर बच्चों को हल करने के लिये कहा और कोई दूसरा व्यक्तिगत कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। बच्चे आपस में बात करने लगे और लड़ने लगे। तभी राजू को गिरने से चोट लगी। शिक्षिका का ध्यान उस तरफ गया।

उसने राजू को डाँटना प्रारम्भ कर दिया। तब कक्षा मानिटर ने नम्रतापूर्वक हस्तक्षेप करते हुए कहा कि–मैडम–मैडम ! यह गलती सौरभ की है। शिक्षिका ने सौरभ को भी डाँटा और दोनों को बैठने को कहा। शिक्षिका के जाने के बाद बच्चों के बीच बातचीत होने लगी। बातचीत का बिंदु मैडम का कक्षा में खड़ा होने की स्थिति थी। ब्रजेश कह रहा था कि मैडम बोर्ड पर लिख कर बोर्ड के ही सामने खड़ी हो जाती हैं। उसपर राकेश ने कहा – तुम तो मैडम से ऐसे ही चिढ़ते हो। इस पर राखी ने कहा – हाँ ! तुम सही कह रहे हो। मैडम बहुत अच्छी हैं। वह स्मार्ट लगती हैं। वो जब सामने खड़ी होती हैं तो उनके खड़े होने का तरीका हम को बहुत अच्छा लगता है। इस पर शुभ्रा ने कहा – वाकई मैडम अच्छी हैं। कक्षा के बाहर भी मिलने पर वह प्यार से सिर पर हाथ रखती हैं और हालचाल भी पूछती हैं। इस पर धीरज ने कहा – मैडम तुम सब लड़कियों को प्यार करती हैं; लड़कों को तो केवल डाँटती ही हैं। इसपर गुलशन ने कहा – मैडम से अच्छी कोई भी शिक्षिका इस विद्यालय में नहीं है। मैं तो बड़ी होकर उन्हीं की तरह बनना चाहूँगी। इस पर एक लडकी ने कहा – तुमको उनमें क्या अच्छा लगता है? इस पर गुलशन ने कहा – मुझे उनका कपड़ा पहनना, उनके बात करने का तरीका तथा कक्षा के बाहर भी बच्चों से प्यार करना यह सब अच्छा लगता है। इस पर शोभित ने कहा–हाँ, मैडम खाली घंटी में कुछ न कुछ पढ़ती रहती हैं। कभी किसी से गप्पें मार कर समय बर्बाद नहीं करती। इस पर एक लड़का संजय ने कहा – हाँ तुम बिलकुल सही कहती हो। मैडम बहुत अच्छी हैं सबको बहुत प्यार करती हैं। गुलशन ने कहा – ब्रजेश कहता है कि मैडम केवल बच्चों को डाँटती हैं। शोभित ने कहा – यह गलत कह रहा है। मैडम किसी को नहीं डाँटती। गलती करोगे तो समझाएँगी नहीं? वर्ग के लगभग सभी लड़कों ने शोभित की बात का समर्थन किया। इसी बीच अगली शिक्षिका का प्रवेश हुआ। इस घंटी के समाप्त होने के बाद अतुल अपने दोस्तों से बात कर उन्हें मना रहा था कि उसके एक – दो दोस्त सामने टूटी हुई बिल्डिंग में चलें क्योंकि कल उसका क्रिकेट बॉल वहाँ चला गया था; परन्तु वे तैयार नहीं हो रहे थे; क्योंकि पकड़े जाने पर डांट पड़ सकती है। एक लड़की ने भी इसका समर्थन किया। इसी बीच शिक्षिका आ गयी तथा कक्षा फिर से चलने लगी। फिर भोजनावकाश की घंटी बजी। सभी बच्चे बरामदे तथा खुले मैदान में शोर मचाते हुए जाने लगे। शिक्षक–शिक्षिकाएँ भी उस स्थान की ओर प्रस्थान किए। भोजन के लिये पांत लगी। सारे बच्चे पांत में बैठ गए। कुछ मैले कुचैले कपड़ों में, कुछ के नाखून बढ़े हुए। उनकी दशा को देखने से ही उनके आर्थिक व सामाजिक परिवेश का पता चल रहा था। कुछ बच्चों का समूह भोजन परोसने में शिक्षिकाओं की मदद कर रहा था। भोजन परोसते हुए वे बच्चे लगातार उन बच्चों को ज्यादा देना चाहते थे जो उनके मित्र थे या देखने में संभ्रांत दिखते थे। तभी एक बच्चे ने अपने बगल के बच्चे की थाली से कुछ निकालने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप आपस में झगड़ा होने लगा कि इस बच्चे ने

मेरे भोजन को हाथ लगा दिया; मैं तो खाना नहीं खाऊँगा। किसी तरह झगड़ा का निपटारा कर दिया गया।

भोजनावकाश ख़त्म हुआ और कक्षा की घंटी भी लग गई। परन्तु शिक्षक–शिक्षिकाओं का ध्यान इस ओर नहीं गया। वे अपने–अपने बातों में मशगुल थे। बातों का मुख्य विषय पैसों का निवेश, गाँव की राजनीति, खेती–बाड़ी, बढ़ती महंगाई इत्यादि थी। यह रोज कि परंपरा हो गयी थी; शिक्षक–मंडली बातचीत में मशगूल रहती है तथा बच्चे खेलते या झगड़ते रहते हैं। इन दिनों शिक्षकों की बैठकी में राधा मैडम, पुष्पा मैडम, संतोष पासवान सर तथा जाफर सिद्दीकी सर भी बैठने लगे थे। ये शिक्षक पहले नहीं बैठते थे। लेकिन दूसरे सभी इन पर ताने दिया करते थे। कभी–कभी अकेले भी कर दिया करते थे। उधर बच्चे आपस में लड़ाई–झगड़ा कर रहे थे, कुछ मार–पीट कर रहे थे, कुछ गालियों का प्रयोग कर रहे थे। सातवीं–आठवीं पीरियड में दो बच्चे बात कर रहे थे। उनमें से एक कह रहा था–आज हमारे पास कुछ पैसे हैं, मैं घर से कुछ पैसे लाया हूँ, हम सब बाजार चलते हैं वहाँ वीडियो गेम खेलेंगे, कुछ खाएँगे पिएँगे। ये दोनों बच्चे और भी बच्चों जैसे नील, मंटू, दिनेश, नीलिमा, पिंकी, कौशल, शमीम, जावेद को भी ले जाना चाहते थे। इसमें से नीलिमा नहीं जाना चाहती थी। उसने कहा कि माँ ने मुझे मना किया है; हमें पढ़ाई करनी है। यह चर्चा चलती रही। अंत में बच्चों ने सोचा कि इनके समूह में रहने से बहुत सुविधाएँ मिलेंगी व मजा भी आएगा। यदि इनके साथ नहीं जायेंगें तो ये तंग करेंगें। यह सोच कर बच्चे जाने के लिये राजी हो गए।

दूसरी ओर प्रधानाध्यापक गाँव के एक व्यक्ति से चर्चा करने में व्यस्त थे। उसी बीच कक्षा में काफी कोलाहल होने लगा, घंटी समाप्त होने के 10 मिनट पहले प्रधानध्यापक ने बच्चों के पास पहुँच कर कारण की पड़ताल करना चाहा। एक बच्चा ने कहा कि–सर हमलोगों के गेम की कक्षा है; और पी० टी० शिक्षक से बॉल माँगा जा रहा है तो वो दे ही नहीं रहे हैं। अभी यह बात चल ही रही थी कि गाँव का एक व्यक्ति काफी रोष में विद्यालय परिसर में प्रवेश किया। उसने बताया कि मेरा बच्चा तो विद्यालय आना ही नहीं चाहता है; बताता है कि शिक्षक मुझ से साफ़–सफाई का काम तो करवाते है ; परन्तु जब पानी देने, चॉक देने या बैठने की बात होती है तो, वे हमेशा भेदभाव करते हैं; मेरा मन विद्यालय में नहीं लगता है। प्रधानाध्यापक ने इस समस्या को गंभीरता से लेते हुए न्यायोचित कदम उठाने का आश्वासन दिया। इसी बीच छुट्टी की घंटी बजी और सारे विद्यार्थी अपने–अपने घर की ओर चल पड़े। कुछ लडकियाँ आपस में चर्चा करती हुई घर जा रही थीं। चर्चा का मुख्य बिंदु था कि ये लड़के तो जब मन करता है कक्षा में रहते हैं, नहीं मन करता है तो भाग जाते हैं। हमलोग ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि घर और बाहर सबों का ध्यान हमारी ओर लगा रहता है। एक ने कहा मंटू तो इतना शैतान है कि शिक्षिका की अनुपस्थिति में हमेशा हमें तंग करते रहता है। पता नहीं क्यों शिक्षिकाएँ भी उससे कुछ क्यों नहीं कहती? दूसरे ने कहा–अरे हमें तो घर के काम में भी हाथ बटाना पड़ता है और पढ़ना भी पड़ता है। इन लड़कों का क्या ? ना घर का कोई काम है ना कोई जिम्मेदारी; मस्ती में घुमते रहते हैं। हम तो बोझ से लदे रहते हैं। दूसरी ने कहा–यार घर से स्कूल अच्छा लगता है; यहाँ दोस्तों से भी मिलते हैं तथा बहुत कुछ सीखने को मिलता है। शिक्षक यह भी बताते हैं कि भविष्य में क्या बनाना अच्छा होगा और कैसे बना जा सकता है ? इस पर एक लड़की ने कहा कि बनना क्या है ? हम शिक्षक या डाक्टर बनेंगें, नेता या सैनिक तो लड़के ही बनेंगें। श्रुति ने कहा कि अधिकांश शिक्षक यही सलाह देते हैं। केवल जवाहर सर तथा कांति मैडम कहते हैं कि लड़के या लड़की में कोई अंतर नहीं है। जो लड़के बनेंगें वह लड़कियाँ भी बन सकती हैं। बल्कि लड़कियाँ ज्यादा अच्छा कर रही हैं। इस तरह बातें करते हुए बच्चियाँ गाँव में प्रवेश करती हैं।

विमर्श के बिंदु :

- आपके अनुसार विद्यालय में प्रार्थना के आयोजन की क्या जरूरत है?
- समाजीकरण की प्रक्रिया में छात्र–छात्राओं के आपसी संवादों की क्या भूमिका है? स्पष्ट करें।
- विद्यालय में समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का उल्लेख करें।
- 'विद्यालयीय जीवन आलोचनात्मक चेतना (Critical Consciousness) को विकसित करता है।' इस कथन से आप कितना सहमत हैं? अपने पक्ष में उपयुक्त तर्क दें।

क्रियाकलाप

आप अपने विद्यालयीय जीवन का स्मरण करें तथा विद्यालय में होने वाली औपचारिक व अनौपचारिक गतिविधियों व व्यवहारों की सूची विद्यालय व शिक्षक–संचालित, छात्र संचालित तथा अन्य इन तीन कोटियों के अन्तर्गत बनाएँ। आप यह भी स्पष्ट करें कि बच्चे–बच्चियों के समाजीकरण की प्रक्रिया में अधिक प्रभावी कौन–कौन सी गतिविधियाँ व व्यवहार हैं? इस संदर्भ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

दृष्टान्त –5

रूकुंपुरा गाँव की बात है। गाँव के दक्षिण–पश्चिम किनारे पर अवस्थित खेल के मैदान में कुछ बच्चे क्रिकेट खेलने के बाद गोधुली बेला में एक जगह एकत्र होकर विभिन्न मुद्दों तथा विद्यालय के अनुभव पर चर्चा कर रहे थे। समूह में लगभग सभी बच्चों ने इसी वर्ष पड़ोस के उच्च विद्यालय के नवीं वर्ग में दाखिला लिया था। अपने इस नए विद्यालय से सम्बंधित अनुभवों पर परिचर्चा करते हुए एक बच्चे, जिसका नाम मोनू था कहा कि यार नया विद्यालय तो अपेक्षाकृत बड़ा है। बहुत सारे शिक्षक, कैंटीन, बड़ा खेल का मैदान एवं खेलने के बहुत सारे सामान भी हैं तथा वहाँ कई प्रकार की गतिविधियाँ भी करायी जाती हैं। लेकिन पता नहीं वहाँ मन क्यों नहीं लगता है। डर भी लगता है। इस पर गोलू ने कहा – यार यह तो होगा ही क्योंकि विद्यालय नया है; हम वहाँ के बाकी बच्चों को भी बहुत नहीं जानते क्योंकि वे दूसरे–दूसरे गाँवों से आते हैं। हमारे रमेश भैया भी यही कह रहे थे कि जब उन्होंने उस उच्च विद्यालय में प्रवेश लिया था तब उनका भी मन नहीं लगता था। लेकिन बाद में वहाँ उनके कई दोस्त बन गए और उनका मन लगने लगा। इस पर उनमें से एक जिसका नाम फुरकान था ने कहा – यार हमें तो यह उच्च विद्यालय अच्छा लगता है, क्योंकि अब हमें घर वाले भी उम्र में बड़ा मानने लगे हैं। पहले कहीं घर से बाहर जाने ही नहीं देते थे परन्तु, अब बहुत रोक–टोक नहीं करते। अब हम भी अपने आप को बड़े मानने लगे हैं। इस पर कुणाल ने कहा – यार पहले तो गाँव का मध्य विद्यालय भी अच्छा नहीं लगता था, लेकिन धीरे–धीरे दोस्तों के प्यार एवं शिक्षकों के स्नेह के कारण एक दिन भी विद्यालय छोड़ने का मन नहीं करता था। समय बीतने के साथ–साथ मैं तो पढाई–लिखाई में भी अच्छा हो गया। तभी सोनू ने पूछा – आखिर तुम लोगों को क्या अच्छा लगता था विद्यालय

में। कुनाल ने तपाक से कहा – क्यों तुम्हें याद नहीं है? गणित के शिक्षक कितने अच्छे थे। कितने अच्छे तरीके से गणित पढ़ाते थे। और यही नहीं यदि हम कभी गृह–कार्य नहीं करते थे तो बड़े धैर्य से उसका कारण सुनते थे और हमें समझाते थे। मोनू ने कहा कि–याद करो, उस समय जब तक हम समझ नहीं जाते थे तब तक विज्ञान की शिक्षिका विषय को बड़े धैर्य से समझाती थीं। तभी फुरकान ने कहा कि मुझे तो सबसे ज्यादा मजा खेल–कूद की घंटी में आता था या फिर जब बाल–संसद की बैठक करने का मौका मिलता था। तुम्हें तो याद ही होगा कि हमलोगों की दोस्ती कबड्डी खेलने के दौरान हुई थी। इस पर गोलू ने हामी भरते हुए कहा–और पता है, सबसे अधिक मजा तो तब आता था जब हम कुछ अच्छा कार्य करते थे और प्रधानाध्यापक हमें बुला कर प्रोत्साहित करते थे या टॉफी देते थे। राहुल ने बीच में ही रोकते हुए कहा कि मुझे और मेरे जैसे कुछ बच्चों का तो विद्यालय में बिल्कुल मन ही नहीं लगता था। राहुल की इस बात पर सोनू ने कहा कि यह सही बात है कि कुछ शिक्षक तुम लोगों के साथ बुरा व्यवहार किया करते थे। तभी फुरकान ने बात बदलते हुए कहा कि अरे वो सूट पहन कर आने वाली मैडम हमलोगों को कितना परेशान करती थीं। हम जब लडकियों से बात करते या वो हमसे बात करतीं तो मैडम इतना डाँटती थी कि बहुत से लड़के–लडकियां तो रोना शुरू कर देते थे। गोलू ने कहा–फिर भी मुझे विद्यालय अच्छा लगता था, क्योंकि वहाँ दोस्तों का साथ अच्छा लगता था। हम बातें करते थे, मिल–जुल कर खाते थे और गप्पें लड़ाते थे तथा खेलने को भी मिलता था। परन्तु मुझे वह लंबी प्रार्थना बहुत बुरी लगती थी। इसलिये मैं विद्यालय जान–बूझ कर प्रार्थना के बाद पहुंचता था। परन्तु मुझे उससे भी बुरा कुछ शरारती बच्चों की टोली को देख कर लगता था जो किसी को पढ़ने नहीं देते और तंग किया करते थे। फिर भी कम से कम इतनी शिक्षा तो मिली ही थी, जो आज नवें वर्ग में काम आ रही है। राहुल ने फिर बोला हमें तो विद्यालय बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि हमें केवल सफाई के कार्य करने पड़ते थे और मास्टर जी भी बेवजह हमलोगों को जाति का नाम लेकर डाँटते रहते थे। इस पर सोनु ने कहा–सफाई तो हमसे नहीं होता। हमने घर में भी ऐसा नहीं किया। तभी राहुल ने कहा–मास्टर जी तो सिर्फ हमलोगों से सफाई कराते थे। हाँ, सिर्फ पाठक सर ही यह भेद–भाव नहीं करते थे। गोलू ने बात बदलते हुए कहा–इस विद्यालय में तो केवल खेलना होता है, पढ़ाई तो बिल्कुल नहीं होती। और तो और गाँव के कुछ लोग हमेशा विद्यालय की गतिविधियों में रोक–टोक करते रहते हैं जिससे पढ़ाई नहीं हो पाती। इस प्रकार बातें करते हुए सभी बच्चे अपने–अपने घर को चल पड़े।

विमर्श के बिंदु :

- क्या आप मानते हैं कि विद्यालय का जीवन, परिवार व आस–पड़ोस के जीवन से अधिक विस्तृत होता है और वहाँ विविधताओं के कारण समाजीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से चलती है? अपना मत देते हुए उसके पक्ष में तर्क दें।
- समाजीकरण के संदर्भ में आप किसी एक बच्चा–बच्ची के विद्यालय के साथी–समूह तथा आस–पड़ोस के साथी समूह में क्या भिन्नताएँ पाते हैं? स्पष्ट करें।
- उपरोक्त दृष्टान्त में राहुल की पीड़ा के कारणों व उसके समाजीकरण के संदर्भ में उस पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करें।

क्रियाकलाप

आप विद्यालय में बच्चों द्वारा खेले जाने वाले खेलों की सूची बनायें। अपने अनुभव से स्पष्ट करें तथा उनके समूह से यह पता करें कि इन खेलों का उनके बच्चों के साथी समूह के निर्माण में क्या भूमिका है? तत्संबंधी रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

विषय–वस्तु की समझ

आपने यह विचार किया होगा कि हमारे बचपन के शुरूआती दिन परिवार व आस–पड़ोस तक ही सीमित रहते हैं। इस परिवार व आस–पड़ोस में बच्चों के समाजीकरण का प्रथम चरण चलता है, परन्तु वहाँ उनको उतनी विविधताओं का सामना नहीं करना पड़ता, जितनी विविधताएँ उन्हें विद्यालय में मिलती है। भिन्न–भिन्न उम्र, लिंग, जाति, धर्म, संप्रदाय, संस्कृति, आचार–व्यवहार, आर्थिक–सामाजिक दशा आदि से संबंधित बच्चों, शिक्षकों व अन्य कर्मचारियों आदि की मौजूदगी, बच्चों के लिये समाज के एक लघु रूप का विम्ब प्रस्तुत करता है; और इस प्रकार समाजीकरण हेतु बच्चों को विद्यालय में ज्यादा अवसर प्राप्त होता है। विद्यालय में बच्चे ना सिर्फ समाज के विविध रूपों से परिचित होते हैं वरन विभिन्न प्रकार की गतिविधियों, आयोजनों व भूमिकाओं से भी होकर उन्हें गुजरना पड़ता है। प्रार्थना, योग–व्यायाम, खेल–कूद, कक्षा–शिक्षण, सांस्कृतिक गतिविधियों, बागवानी, वृक्षारोपण, प्रभातफेरी, रैलियों, विभिन्न दिवसों को मनाये जाने हेतु आयोजित कार्यक्रमों तथा अपने साथी–समूहों, शिक्षकों व अन्य लोगों के साथ होने वाले संवादों, वस्तुओं के आदान–प्रदान आदि के माध्यम से और विद्यालय–प्रतिनिधि, कक्षा–प्रतिनिधि, बाल–संसद व विद्यालय में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों में मिलने वाली भूमिकाओं व उत्तरदायित्व आदि के माध्यम से बच्चों के अंदर संवेदनशीलता, मैत्री, समूह–भावना तथा परस्पर सहयोग व जिम्मेदारी की भावनाओं का विकास होता है। बच्चे के विद्यालयीय जीवन में ऐसे अनेकों कारक मौजूद होते हैं जिनके माध्यम से समाजीकरण की प्रक्रिया संचालित होती है।

परन्तु कभी–कभी विद्यालयों में बच्चों के समाजीकरण की यह प्रक्रिया सहभागात्मक की बजाय दमनकारी स्वरूप धारण कर लेती है। बच्चों की समझ व संवेदनाओं को महत्व ना देते हुए विद्यालयीय घटक अपने निर्मित आधारों के अनुरुप अनुकूलन हेतु बच्चों को बाध्य करते हैं। यह स्थिति बालमन को गंभीर कुण्ठाओं व अंतर्विरोधों से भर देती है और कभी–कभी बच्चा परिवार व आस–पड़ोस के माध्यम से स्वाभाविक ढंग से सीखे हुए व्यवहारों व मूल्यों को भूलाकर नकारात्मक व्यवहार करने लगता है। और इस प्रकार दमनात्मक समाजीकरण, विसमाजीकरण (De-Socialization) {पूर्व समाजीकरण के प्रभाव को नष्ट कराने वाला} तथा नकारात्मक समाजीकरण (Negative Socialization) {त्याज्य व निषेधित व्यवहार प्रतिमान को ग्रहण करना} की दिशा की ओर ले जाने का काम करने लगती है। अतः विद्यालयीय वातावरण में चलने वाले सोद्देश्य समाजीकरण (Deliberate Socialization) की प्रक्रिया में बच्चों की समझ व संवेदनाओं के लिये भी जगह होनी चाहिए ताकि सही मायने में यह प्रक्रिया बाध्यकारी की बजाय लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप

चयनात्मक व मूल्यांकनात्मक हो सके। अतः विद्यालयों में एक समझ विकसित करने की आवश्यकता है कि बच्चे भविष्य नहीं बल्कि वर्तमान हैं।

विद्यालयीय जीवन के विभिन्न कारक बच्चों के समक्ष सामाजिक अंतःक्रिया के विभिन्न अवसर प्रस्तुत करते हैं। यह सामाजिक अंतःक्रिया मूलतः सहयोग (Cooperation), प्रतियोगिता (Competition), संघर्ष (Conflict), समायोजन (Accommodation) तथा आत्मसातीकरण (Assimilation) के रूप में होती है। इसकी विशेष समझ आपको 'बाल विकास और सीखना' विषयपत्र में मिलेगी।

दृष्टान्त 5 के माध्यम से आपने समझा कि प्रार्थना से एकाग्रता व अनुशासन का विकास होता है और अनुशासन समाजीकरण की प्रक्रिया में अत्यंत ही महत्वपूर्ण बिंदु है। आपने यह भी समझा कि अनुशासन का पाठ पढ़ाने वाले शिक्षक किस प्रकार स्वयं उसका पालन नहीं करते। यहाँ प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री पाओलो फ्रेरे की वह पीड़ा ठीक समझ में आती है कि शिक्षक अनुशासन का नियम बनाते हैं और छात्र उसका पालन करते हैं; वह अनुशासन शिक्षक स्वयं पर लागू नहीं करते। विद्यालयीय वातावरण की यह बड़ी विडम्बना है। आपने इस दृष्टान्त के माध्यम से यह भी समझा कि विद्यालय में छात्र–छात्राओं के आपसी संवाद जिनका संदर्भ शिक्षक–शिक्षिकाओं का व्यवहार, छात्रों के प्रति उनकी संवेदना व समझ, शिक्षकों द्वारा बच्चों के साथ किए जाने वाले भेद–भाव, बच्चों के आपसी झगड़े, परिवार द्वारा बच्चे–बच्चियों के बीच किया जाने वाला भेद–भाव, खेल–कूद, सैर–सपाटा आदि है, के माध्यम से बच्चों के अंदर समाज के विविध पक्षों की समझ विकसित होती है। समाज की विधेयात्मक व नकारात्मक प्रवृतियों के प्रत्यक्षण व बोध द्वारा बच्चे का सामाजिक व्यवहार संशोधित, निर्मित व पुनर्निर्मित होते रहता है। बच्चे विद्यालय में अनुशासन भी सीखते हैं और गाली भी, सहयोग भी सीखते हैं और संघर्ष व मार–पीट भी, प्रेम का भी बोध करते हैं और तिरस्कार का भी, कर्त्तव्यपरायणता भी सीखते हैं और तथाकथित घुमक्कड़पन भी। और इस प्रकार विभिन्न द्वंद्वों के बीच उनके विचारों का संश्लेषण होता है। यह संश्लेषण बच्चे की मूल प्रवृति तथा उसके परिवार व आस–पड़ोस के संपर्क में स्वाभाविक रूप से हुए समाजीकरण के आलोक में होता है। इस प्रकार परिवार व आस–पड़ोस के स्तर पर हुए समाजीकरण का विद्यालय में विस्तार होता है।

दृष्टान्त 5 के माध्यम से आपने यह देखा कि प्रारंभिक स्तर की विद्यालयी शिक्षा प्राप्त बच्चे जो उच्च विद्यालय में गए हैं किस प्रकार यह स्वीकार कर रहे हैं कि जब वो पहली बार विद्यालय गए थे तो उनका मन नहीं लगता था परन्तु बाद में विद्यालय ने उन्हें इतना कुछ दिया कि विद्यालय से निकलने का उन्हें मन ही नहीं करता था। अर्थात जब बच्चा घर व आस–पड़ोस के माहौल से निकल कर पहली बार विद्यालय पहुँचता है तो वहाँ के विस्तार व नियंत्रित तथा अनुशासनात्मक वातावरण के साथ तालमेल बैठाने में उसे वक्त लगता है क्योंकि वह उसके बाल–सुलभ मन के विपरीत प्रतीत होता है। परन्तु धीरे–धीरे वह समाज के उस लघुरूप विद्यालय में कई संबंधों को सृजित करता है, अपने स्व का विकास करता है, उस नये माहौल में खुद को चयन व मूल्यांकन के आलोक में ढालता है और तब वह खुद का विस्तार हुआ महसूस करता है। इस प्रकार उसके समाजीकरण की प्रक्रिया चलती है।

क्रियाकलाप

विद्यालय में समाजीकरण के विभिन्न गतिविधियों का विश्लेषण करें और उसमें शिक्षक के भूमिका की समीक्षा करें। विद्यालय में चलनेवाले समाजीकरण की किन–किन गतिविधियों में आपकी सक्रिय भूमिका हो सकती है।

शिक्षा, शिक्षण तथा विद्यालय – सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आधार

विद्यालय में चलनेवाली शिक्षण की प्रक्रिया के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आधारों की समझ से परवर्ती समाजीकरण के आयामों को समझने में मदद मिलेगी। आगामी दृष्टांतों के माध्यम से इसके विश्लेषण की कोशिश की गई है।

दृष्टान्त –6

मिथिलेश मंडल की करीमपुर मध्य विद्यालय में विज्ञान के शिक्षक के रूप में नई नियुक्ति हुई। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से बी.एससी. और बी. एड. की डिग्री अर्जित की थी। मंडल बाबू अपने विषय में दक्ष थे तथा विद्यालय की उन्नति के लिए सदैव नए तरीके से सोचते थे। एक दिन की बात है मिथिलेश बाबू की कक्षा को बागवानी का कार्य करना था। सभी बच्चे स्कूल के मैदान में छोटी–छोटी क्यारियाँ बना रहे थे। मिथिलेश बाबू के हाथ में भी कुदाल थी। काम चल ही रहा था कि इसी बीच गाँव के बड़े किसान जो गाँव में परंपरागत रूप से मालिक कहलाते थे अचानक वहाँ आ पहुँचे। बिना सोचे समझे ही उन्होंने मिथिलेश बाबू को झाड़ लगाना शुरू कर दिया। हमारे बच्चों से कुदाल चलवा रहे हैं? क्या इसी काम के लिये ये यहाँ आते हैं? अपने घर में तो ये काम करते ही नहीं हैं और आप यहाँ काम करा रहे हैं। तभी प्रधानाध्यापक ने आकर मामले को किसी तरह शांत किया। उसके बाद बच्चे अपनी–अपनी कक्षा में चले गए। एक दिन की बात है; बच्चे मध्याह्न भोजन कर रहे थे और अपनी पसंद के अनुसार अपने दोस्तों के साथ बैठे हुए थे। बच्चों को खाना खिलाने की जिम्मेदारी

आपसे इसीलिए कहता हूँ कि यह विद्यालय, समाज में चलता है अतः समाज के रिवाजों का ध्यान रखना होगा। जवाब देते हुए मिथिलेश बाबू ने कहा कि विद्यालय समाज को सही दिशा देने पहले–पहल मिथिलेश बाबू को दी गयी थी। बच्चे चाव से खा रहे थे। तभी प्रधानाध्यापक आ पहुँचे। उन्होंने मिथिलेश बाबू को समझाते हुए कहा कि आपने यह क्या किया है? कुछ बच्चों के अभिभावक देखेंगे तो हंगामा करेंगे। क्योंकि कुछ अभिभावक नहीं चाहते हैं कि उनके बच्चे एक विशेष समुदाय के बच्चों के साथ बैठ कर खाना खाएँ। मिथिलेश बाबू को प्रधानाध्यापक की यह बात अच्छी नहीं लगी और वे उनसे तर्क करने लगे। इस पर प्रधानाध्यापक ने कहा कि यह यहाँ की परंपरा है। मैं के लिये स्थापित की गयी है, अतः कम से कम यहाँ तो इन रूढ़ियों को बदलना आवश्यक ही है। प्रधानाध्यापक ज्यादा विवाद में ना पड़ते हुए वहाँ से निकल गए। परन्तु विद्यालय में होने वाले इन तमाम घटनाओं ने मिथिलेश बाबू के स्वयं के मूल्यों जो लोकतंत्र के मूल भावनाओं की बुनियाद पर निर्मित थे तथा वहाँ के समाज के सांस्कृतिक–आर्थिक व राजनैतिक मूल्यों व परम्पराओं के मध्य एक गंभीर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। वे इसे ठीक करने की दिशा में गंभीरता से प्रयास करना चाहते थे। मिथिलेश बाबू ने बालकेंद्रित शिक्षण पद्धति का प्रशिक्षण लिया था, वे इस विद्यालय में भी इसका प्रयोग करना चाहते थे; परन्तु कभी–कभी सामग्रियों, अन्य व्यवस्थाओं, पैसे व सहयोगियों की कमी इसमें बड़ी बाधा बन जाती थी। वे अक्सर अपने पास से भी कुछ पैसे लगा देते। मिथिलेश बाबू चाहते थे कि सभी बच्चे नियमित रूप से तथा समय पर विद्यालय पहुँचें। लेकिन उन्होंने पाया कि विद्यालय में अनुपस्थिति एक जटिल समस्या है। वे इसका कारण ढूढ़ने लगे। उन्हें सबसे महत्वपूर्ण कारण गाँव की जीवन पद्धत्ति लगी। कृषि कार्य के व्यस्ततम समय में तो अनुपस्थिति रहती ही थी, पर्व–त्योहारों में भी बच्चे जब दो दिनों की छुट्टी होती थी तब छः दिन विद्यालय नहीं आते थे। यदि दूर के रिश्तेदारों के यहाँ शादी–विवाह हो तो उस समय बच्चों की उपस्थिति महीनों तक नहीं रहती थी। हलाँकि मिथिलेश बाबू ने पाया कि इस गाँव में पढ़े–लिखे लोगों की भी संख्या ठीक–ठाक है, तथा सभी समुदाय के लोग शिक्षा के महत्व को समझते हैं व अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। परन्तु गाँव में पठन–पाठन में आने वाली बाधाओं की स्थिति के प्रति लोगों में संवेदनशीलता का अभाव है। कुछ ही दिनों बाद विद्यालय में शिक्षा समिति का चुनाव था। मिथिलेश बाबू ने इस उपयुक्त अवसर पर इन सारे मुद्दों को सभा में रखने की योजना बनाई। उस सभा में उन्होंने गाँव के लोगों से विद्यालय की सभी परेशानियों व जातिगत भेद–भावों को दूर करने तथा श्रम के प्रति सम्मान का भाव विकसित करने की अपील की। विभिन्न बिंदुओं पर काफी बहस हुई। मिथिलेश बाबू ने लोकतंत्र, संविधान, धर्म तथा आदर्श समाज का हवाला देते हुए ढ़ेर सारे तर्क प्रस्तुत किये; भेद–भाव को दूर किये जाने के लिये तमाम उदाहरणों, कहानियों व महापुरूषों के जीवन–वृतों का सहारा लेकर गाँव के लोगों को संवेदित किया। गाँव के लोगों पर मिथिलेश बाबू की गंभीर बातों का असर हुआ, उन्होंने वादा किया की सारी दुर्व्यवस्थाओं व भेदभावों को दूर किया जायेगा। मिथिलेश बाबू के प्रयासों व गाँव के सहयोग से विद्यालय की समस्याएँ धीरे–धीरे दूर हो गई।

विमर्श के बिंदु :

- उपर्युक्त दृष्टान्त का संदर्भ लेते हुए यह बताएँ कि समुदाय की सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताएँ विद्यालयीय गतिविधियों को किस प्रकार नियंत्रित करती हैं और साथ ही समाजीकरण की प्रक्रिया को भी किस प्रकार प्रभावित करती हैं?
- उपर्युक्त दृष्टान्त में प्रधानाचार्य द्वारा समुदाय की मान्यताओं को यथावत स्वीकार कर लेने के संदर्भ में आपके क्या विचार हैं? क्या प्रधानाचार्य के इस प्रवृत्ति को आप उचित मानते हैं। अपने मत के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करें।
- उपर्युक्त दृष्टान्त में शिक्षक मिथिलेश बाबू द्वारा अपनाई गयी रणनीति का संदर्भ लेते हुए यह बतायें कि यदि शिक्षक के रुप में विद्यालय में आपको ऐसी स्थिति का सामना करना पड़े तो आप किस प्रकार की रणनीति बनायेंगे?

क्रियाकलाप

- अपने आस–पास के समुदाय की उन सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताओं तथा आर्थिक कारणों की सूची तैयार करें जो आपकी समझ से विद्यालय की गतिविधियों व वहाँ पर चल रहे समाजीकरण की प्रक्रिया को किसी ना किसी रूप में प्रभावित करते हैं। संबंधित रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

दृष्टान्त –7

भोजपुर जिला में मोहनपुर नाम का एक गाँव था। गाँव के दक्षिण–पश्चिमी छोर पर मुख्यतः समाज के वंचित वर्गों का एक टोला था। वहाँ विद्यालय तो था लेकिन कोई भी शिक्षक वहाँ जाना नहीं चाहता था। जब भी कोई नया शिक्षक वहाँ नियुक्त होता था तो वो तरह–तरह के प्रयासों से अपना किसी दूसरे विद्यालय में या शिक्षा विभाग के कार्यालय में प्रतिनियोजन करा लेता था। टोला में निवास करने वाले लोग आर्थिक रूप से बहुत ही कमजोर थे। उनके पास ना तो अपनी जमीन थी, ना पशु और ना ही उनकी कोई सामाजिक व राजनैतिक पहुँच ही थी। उनकी दशा अत्यंत दयनीय थी। टोला के विद्यालय का न चलना उन्हें हमेशा सालता था। एक बार टोला के कुछ जागरूक लोगों ने प्रखंड जाकर नए प्रखंड शिक्षा पदाधिकारी से अपनी व्यथा सुनायी। पदाधिकारी ने उनकी समस्या का समाधान करने हेतु स्थल निरीक्षण का वादा किया। एक दिन सुबह आठ बजे पदाधिकारी श्रीमती नीरजा उनकी बस्ती में पहुँचीं। वहाँ के लोगों ने उन्हें देखते ही उग्र होकर विद्यालय की तमाम समस्याओं को गिनाना शुरू कर दिया। गाँव के कुछ वृद्ध लोगों ने मामले को शांत किया और अपनी समस्याओं को एक–एक करके सुनाया। वहाँ के निवासी मंगरू ने कहा कि मेरी मुनिया टोला के विद्यालय के बंद होने के बाद पास के उत्क्रमित मध्य विद्यालय में पढ़ती थी, लेकिन विद्यालय में उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। विद्यालय में सफाई का सारा काम मुनिया या हमारे समुदाय के अन्य बच्चों से ही करवाया जाता था।

विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने का बहाना बना कर इन्हें कक्षा के बाहर बैठा दिया जाता था। साथ ही साथ संपन्न कृषक परिवार के बच्चे भी इन्हें तंग किया करते थे। उब कर मुनिया तथा हमारे समुदाय के अन्य बच्चों ने विद्यालय जाना छोड़ दिया। हम इतने गरीब हैं कि अपने बच्चों को प्राइवेट विद्यालयों में नहीं भेज सकते, और ना ही हम इतने पढ़े–लिखे हैं कि उन्हें घर पर पढ़ा सकें। हमारी तो जिंदगी किसी तरह कट रही है, पर हमारे बच्चों की जिंदगी ठीक ढंग से कटे इसके लिये जरूरी है कि वे शिक्षा प्राप्त कर पाएँ जिससे वे समाज में मान–प्रतिष्ठा पा सकें। नीरजा जी ने विद्यालय पहुँच कर देखा कि किस तरह विद्यालय सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक सन्दर्भों से प्रभावित होता है। उन्होंने एक रणनीति बनायी और गाँव वालों की सहमति से विद्यालय को पुनर्जीवित करने हेतु दो निष्ठावान एवं कर्तव्यनिष्ठ शिक्षकों का प्रतिनियोजन उस विद्यालय में किया। सबसे बड़ी बात यह थी कि इन शिक्षकों पर गाँव वालों का विश्वास था। इन परिवर्तनों के बाद गाँव वालों ने अपने बच्चों को विद्यालय भेजना शुरू किया। नीरजा जी ने पड़ोस के विद्यालय में भी जाकर शिक्षकों को अभिमुख किया कि वे संवेदनशील होकर बच्चों के हित के लिये काम करें। साथ ही भेद–भाव करने वाले शिक्षकों पर कड़ाई से कारवाई करने की बात कही। 20–25 दिन के बाद नीरजा जी जब उस गाँव में पहुचीं तो उस गाँव का नजरिया बदला हुआ था। नीरजा जी हर 20–25 दिन में दौरा करती रहती थीं तथा अभिभावकों को प्रेरित करती थीं जिससे बच्चे स्कूल जाने लगे तथा गाँव और क्षेत्र के शैक्षिक माहौल में बदलाव आया।

विमर्श के बिंदु :

- उपर्युक्त दृष्टान्त में वंचित वर्ग के टोले के विद्यालय में शिक्षकों के योगदान न देने के कारणों की विवेचना करें।
- उपर्युक्त दृष्टान्त में मुनिया के साथ विद्यालय में हो रहे व्यवहारों के सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ को समझाते हुए मुनिया के समाजीकरण पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करें।
- उपर्युक्त दृष्टान्त में टोला के उन जागरूक लोगों जिनके प्रयासों से टोला का विद्यालय प्रारम्भ हो पाया की राजनीतिक चेतना का उस समुदाय के बच्चों के पुनः विद्यालय जाने के बाद नवीन परिस्थितियों में वहाँ होने वाले समाजीकरण पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों की विवेचना करें।

क्रियाकलाप

अपने आस पास के विद्यालयों में से उन विद्यालयों की पहचान करें तथा सूची बनाएँ जो आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग के बस्तियों में स्थापित है। उनमें से किसी एक विद्यालय में जाकर वहाँ की समस्याओं का अवलोकन कर रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

दृष्टान्त –8

गर्मी की छुट्टियाँ थीं। पटना से गया जाने वाली ट्रेन में रामचरण अपने बेटे पंकज के साथ बैठा था। रिश्तेदारी में होने वाली एक शादी में बाप–बेटे जा रहे थे। रामचरण एक किसान था और उसका लड़का पंकज गाँव के ही प्राथमिक विद्यालय में पाँचवीं का छात्र था। ट्रेन में काफी भीड़–भाड़ थी। रामचरण के बगल में झक सफ़ेद कुर्ता–पायजामा पहने एक गाँव के मुखिया रमादीन बैठे थे। उनके साथ एक अखबार के पत्रकार शौकत भी थे। सामने वाली सीट पर एक विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर नीलाम्बर तथा उनके बगल में किसी प्राथमिक विद्यालय में पंचायत शिक्षक के रूप में काम कर रहा एक युवक नवीन भी बैठा था। यात्रा की बोरियत दूर करने के लिये बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। रामादीन ने पंकज से पूछा–किस क्लास में पढ़ते हो? पंकज ने कहा पाँचवीं में। किस विद्यालय में? पंकज ने बताया कि गाँव के ही सरकारी प्राथमिक विद्यालय में पढ़ता हूँ। जवाब सुन कर रमादीन ने चेहरे पर तिरस्कार का भाव बनाते हुए कहा – अच्छा.....। नवीन से रहा नहीं गया। उसने मुखिया जी से पूछ दिया कि आप सरकारी विद्यालय का नाम सुन कर नाक–भौं क्यों सिकोड़ रहे हैं? मुखिया जी ने कहा कि सरकारी विद्यालयों में आज–कल पढ़ाई कहाँ हो रही है? मैं तो एक गाँव का मुखिया हूँ, मैं रोज देखता हूँ, सारे शिक्षक वेतन तो मजे से पाते हैं परन्तु पढ़ाने का नाम नहीं जानते। ऐसे में सरकारी विद्यालय में पढ़ने के लिये भेजना बच्चे का भविष्य खराब करना है। नवीन ने तपाक से पूछा–इसके लिये जिम्मेदार कौन है? सरकारी व्यवस्था के करीब तो आप ही लोग रहते हैं; आपने कभी सोचा है इस संदर्भ में? प्राथमिक शिक्षक तो जनगणना, पशु गणना, मकान गणना, पल्स–पोलियो, चुनाव आदि में लगातार व्यस्त रहता ही है जो समय बचता है वो मध्याह्न भोजन व तरह–तरह के रिपोर्टों को बनाने में ही बीत जाता है। प्रधानाध्यापक व दो शिक्षक तो सिर्फ हिसाब–किताब व रिपोर्टों को तैयार करने तथा उसे शिक्षा विभाग तक पहुँचाने में ही लगे रहते हैं। तो आप ही बताईये कि वो विद्यार्थियों के बारे में कब सोचें व उन्हें कब पढ़ाएँ? आपकी व्यवस्था ही ऐसी है कि पढ़ाई व बच्चों के निर्माण से ज्यादा महत्वपूर्ण तमाम रिपोर्ट तैयार करना है ताकि यह प्रदर्शन किया जा सके कि यहाँ की शिक्षा काफी अच्छी चल रही है। ऐसे में क्या आपको शिक्षकों से जो आज के दौर में सिर्फ सरकारी कर्मचारी बन कर रह गए हैं बड़ी उम्मीद करना वाजिब है ? बात को बीच में ही काटते हुए प्रोफ़ेसर नीलाम्बर ने कहा कि आज सरकारी विद्यालयों में वही बच्चे पढ़ने आते हैं जिनके घर की आर्थिक दशा काफी खराब है। और वो बच्चे भी पढ़ने के लिये कम और सरकारी योजनाओं का लाभ लेने के लिये ज्यादा आते हैं। जो देश आज भी भूख की समस्या से जूझ रहा हो वहाँ यदि बच्चों को विद्यालय के बहाने पोषक आहार मिल जा रहा है यह बहुत बड़ी बात है। पत्रकार शौकत ने नीलाम्बर को बीच में ही रोकते हुए कहा–आप बात तो ठीक कह रहे हैं, परन्तु हाल ही में मैंने पटना जिले के एक बड़े क्षेत्र का इसी मुद्दे को लेकर सर्वे स्टडी किया था जो अखबार में भी आया था। इस स्टडी से कई महत्वपूर्ण बातें सामने आयीं। एक जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात मुझे पता चली वो यह है कि विद्यालयों में बेहतर सुविधाओं व शिक्षण के माहौल के लिये समाज के अगड़े वर्ग का जो निरंतर दबाव था वो कम हुआ है। इसके पीछे कई

लोगों ने यह बताया कि मध्याह्न भोजन योजना का भी इसमें योगदान है। लोग बच्चे के मध्याह्न भोजन को अपने सम्मान से जोड़ कर देखते हैं। उन्हें विद्यालय में अपने बच्चे द्वारा मुफ्त का खाना खाना बुरा लगता है। और दूसरी बात तो आप जानते ही हैं कि कतिपय जगहों पर अभी भी जाति, धर्म व तमाम रूढ़ियों से लोग उबर नहीं पाये हैं; उन्हें अपने बच्चों का उनके हिसाब से अपने से छोटी जातियों के बच्चों के साथ बैठ कर भोजन करना नागवार गुजरता है। अतः धीरे–धीरे इस तथाकथित अगड़े वर्ग ने अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों से निकाल कर प्राइवेट विद्यालयों में डालना शुरू कर दिया। धीरे–धीरे सरकारी विद्यालय समाज के सिर्फ पिछड़े वर्ग का विद्यालय बन कर रह गया और यह वर्ग विद्यालयों पर प्रभावी दबाव नहीं बना पा रहा है। यद्यपि प्राइवेट विद्यालयों में भी सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिये सरकार ने 25 प्रतिशत गरीब विद्यार्थियों के प्रवेश की व्यवस्था की है; परन्तु इसकी हकीकत यह है कि उन गरीब बच्चों को उन प्राइवेट विद्यालयों में विद्यालय प्रशासन तो हिकारत की नजर से देखता ही है साथ ही उसके सहपाठी भी उनका मजाक उड़ाते हैं। कई विद्यालयों ने तो उनके लिये अलग कक्षाएँ तक बना ली है ताकि वो अन्य बच्चों के साथ घुल–मिल न पाएँ क्योंकि तथाकथित अगड़े वर्ग के अभिभावक ऐसा नहीं चाहते हैं। यह अत्यंत ही गंभीर विषय है; एक बेहतर विद्यालय व समाज का निर्माण तब तक नहीं हो पायेगा जब तक लोग इस दुर्भावना से नहीं उबरेंगे। उनका विद्यालय और हमारा विद्यालय के द्वंद्व से उबरना होगा। रामचरण जो इन सारे संवादों को गंभीरता से सुन रहा था ने कहा कि यदि समाज के महत्वपूर्ण लोग अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों में पढ़ाना प्रारम्भ कर दें तो समस्याएँ धीरे–धीरे सुलझ सकती हैं। उनका विद्यालय और हमारा विद्यालय की दूरियां मिट सकती है और सही मायने में सबका विद्यालय बन सकता है।

विमर्श के बिंदु :

- उपर्युक्त दृष्टान्त में सरकारी विद्यालयों के शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर उठाये गए प्रश्नों के प्रति आपके क्या विचार हैं? स्पष्ट करें।
- उपर्युक्त दृष्टान्त में एक पंचायत शिक्षक नवीन द्वारा शिक्षण के दौरान आने वाली बाधाओं की चर्चा की गयी है। आपके विचार से नवीन द्वारा उठाये गए प्रश्न कितने सही हैं ? अपने पक्ष में तर्क प्रस्तुत करें।
- उपर्युक्त दृष्टान्त के आलोक में तथाकथित समाज के अगड़े व पिछड़े वर्ग के दृष्टिकोणों में मध्याह्न भोजन के मायनों को स्पष्ट करें।
- उपर्युक्त दृष्टान्त के आलोक में 'उनका विद्यालय', 'अपना विद्यालय' व 'सबका विद्यालय' की अवधारणाओं को स्पष्ट करें।

क्रियाकलाप

आप अपने आस पास के किसी विद्यालय के विद्यालयीय दिनचर्या का अवलोकन करें। सुबह विद्यालय आने से लेकर विद्यालय से वापस घर जाने तक शिक्षक कौन–कौन से कार्य करते हैं इसकी सूची बनाइये व प्रत्येक कार्य में शिक्षक द्वारा दिये गए समय को

उसमें अंकित कीजिये। शिक्षक द्वारा शिक्षण हेतु दिये गए समय की पर्याप्तता के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार प्रस्तुत कीजिये।

विषय–वस्तु की समझ

आपने यह अनुभव किया होगा कि शिक्षा, शिक्षण व विद्यालय की व्यवस्था समाज ने अपनी आशाओं के अनुरूप किया है। चूँकि समाज जीवंत है अतः उसकी आशाएँ भी चिरस्थाई नहीं है अतः समाज की इकाई के रूप में व्यक्ति व समान सोच व समझ रखने वाला उनका समूह निरंतर सामाजिक आशाओं को संशोधित, निर्मित व पुनर्निर्मित करते रहता है। इस प्रकार शिक्षा, शिक्षण व विद्यालयीय व्यवस्था के आधार, संदर्भ, लक्ष्य, उददेश्य व दिशा निरंतर संशोधित, निर्मित व पुनर्निर्मित होते रहते हैं। हमारा सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन तथा चिंतन शिक्षा, शिक्षण व विद्यालयों की दिशा तय करते हैं। चूँकि हमारा समाज ग्रामीण, शहरी तथा नगरीय; पिछड़े, मध्यम वर्ग तथा अगड़े; आर्थिक सुविधासंपन्न, सामान्य व सुविधाहीन; राजनैतिक समझ व शक्ति संपन्न, समर्थक व हासिए पर जीने वाले; और विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों व भाषाओं वाला है; अतः राज्य द्वारा विकसित व पोषित शिक्षा, शिक्षण व विद्यालयों के स्वरूप व दशा में भी पर्याप्त भिन्नताएँ हैं। इस प्रकार इनके संदर्भ में किन्हीं निश्चित सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक आधारों की सर्वव्यापकता को स्थापित करना व सामान्यीकृत निर्णय लेना उचित नहीं होगा। परंपरा व रूढ़ियों द्वारा स्थापित वाद (Thesis) और स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व व न्याय की मान्यताओं वाले लोकतांत्रिक मूल्यों के रूप में प्रतिवाद (Anti-thesis) के द्वंद्व से उपजा संश्लेषणात्मक संवाद (Synthesis) ही शिक्षा, शिक्षण तथा विद्यालयों के लिये आधार प्रस्तुत करता है। चूँकि विद्यालय भिन्न–भिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिवेश में स्थापित हैं अतः उनके संश्लेषण का स्वरूप भी भिन्न–भिन्न है। इसलिए एक शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने विद्यालय को वहाँ के परिवेश के अनुरूप समझे व तदनुरूप वहाँ लोकतांत्रिक मूल्यों की समझ व व्यवहार को विकसित होने का वातावरण तैयार करे। अतः विद्यालय जहाँ स्थित है उस जगह के इतिहास, भूगोल, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, वहाँ घटने वाली प्रमुख घटनाओं, वहा के समुदाय की मान्यताओं व विश्वासों, वहाँ के लोगों की आशाओं, वहाँ के प्रभुत्व वर्ग के प्रभुता के कारणों व उस वर्ग का समुदाय के प्रति मतों व अभिवृत्तियों, वहाँ हासिए पर जीने वाले लोगों की पीड़ाओं व समस्याओं तथा प्रभुता संपन्न लोगों के प्रति उनके अभिवृत्तियों इत्यादि की समझ वहाँ के शिक्षक को आवश्यक रूप से विकसित करनी पड़ेगी ताकि वहाँ के बच्चों के विकास तथा विद्यालय व समाज के परस्पर जुड़ाव हेतु अपनाई जाने वाली रणनीतियों व व्यूह–रचनाओं के निर्माण में उपरोक्त समझ का सदुपयोग किया जा सके।

एक दूसरी बात जिसपर हमें चिंतन करना चाहिए वह एक संस्था के रूप में शिक्षा व शिक्षायी विषय–वस्तु है जो विद्यालयी व्यवस्था के केंद्र में है जिसके इर्द–गिर्द विद्यालय का समस्त आयोजन संचालित हो रहा है। समाज अपनी क्रमशः बदलती जरूरतों, मान्यताओं व विश्वासों के अनुरूप शिक्षा के इस 'क्या' को निर्मित करते रहता है और इस प्रकार शिक्षायी विषय–वस्तु में भी आवश्यक परिवर्तन होते रहता है। अतः शिक्षायी विषय–वस्तु स्वतंत्र न होकर समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था व राजनीति सापेक्ष है। समाज की आशाएँ व जरूरतें, संस्कृति की मान्यताएँ व विश्वास, अर्थव्यवस्था की आवश्यकताएँ तथा राजनीति की दृष्टि

आदि शिक्षायी विषय–वस्तु को तय करते हैं। अतः हमें शिक्षायी विषय–वस्तु को इस विस्तृत दृष्टिकोण से देखना होगा ताकि आवश्यकता व उपयोगिता के आधार पर निरंतर इसका आकलन व मूल्यांकन होता रहे और इस प्रकार अनुपयोगी विषय–वस्तु के पीछे छात्रों, विद्यालयों व शिक्षकों के लगने वाले समय व श्रम को बचाया जा सके।

यहाँ हमें शिक्षण के आधारों को भी समझने की जरूरत है। आप स्वयं अपने विद्यालय में शिक्षण के अभिकर्ता के रूप में हैं। चूँकि शिक्षण के अभिकर्ता के रूप में एक शिक्षक भी विभिन्न समाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिवेश से संबंधित होता है अतः इसकी संभावना बनती है कि उसके शिक्षण में भी उपर्युक्त की झलक दिखे। बहुधा हम लोगों ने अपने प्रारंभिक शिक्षाकाल में शिक्षकों के शिक्षण व्यवहार में बहुत भिन्नताएँ देखी हैं जो आज के विद्यालयी व्यवस्था में भी दिखती हैं। कई बार ऐसा देखा गया है कि कुछ शिक्षक पढ़ाते वक्त कक्षा के सिर्फ तेज विद्यार्थियों की ओर ही ध्यान देते हैं; संभवतः उसका मानना हो कि शिक्षा सिर्फ बौद्धिक रूप से उन्नत लोगों के लिये ही है। कई शिक्षक सिर्फ सम्भ्रांत व धनी परिवार के बच्चों को पढ़ाने में ही रूचि लेते हैं तो कई कक्षा के कमजोर विद्यार्थियों पर विशेष ध्यान देते हैं और कई शिक्षक आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग से आने वाले बच्चों को विशेष तरजीह देते हैं। सबके ऐसा करने के पीछे भिन्न–भिन्न आधार हैं। यह बात तो शिक्षण के दौरान ध्यान देने की हुयी। इससे इतर कुछ और ध्यान देने योग्य बातें हैं, मसलन शिक्षण के दौरान आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग से आने वाले बच्चों को हतोत्साहित किया जाना; विशेष रूप से सक्षम (Differently Abled) या शारीरिक व मानसिक रूप से भिन्न क्षमता वाले) बच्चे–बच्चियों को शिक्षण के दौरान तिरस्कृत किया जाना; वैसे बच्चे–बच्चियों को डांटना फटकारना जो शिक्षण के दौरान न समझ आने पर प्रश्न करते हैं इत्यादि। शिक्षकों की राजनीतिक विचारधारायें मसलन प्रभुत्ववादी, राष्ट्रवादी, साम्यवादी या जनतांत्रिक आदि भी शिक्षण के दौरान कक्षा वातावरण व सीखने के अवसरों को भिन्न प्रकार से सृजित करते हैं। इस प्रकार शिक्षक द्वारा आयोजित भिन्न प्रकार के शिक्षण भी छात्र–छात्राओं के समाजीकरण की प्रक्रिया को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं।

आपने यहाँ, दृष्टान्त 6 के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया कि किस प्रकार लोकतान्त्रिक मूल्यों की गहरी समझ वाले नव नियुक्त शिक्षक मिथिलेश मंडल जी का करीमपुर मध्य विद्यालय के आस पास के समुदाय के सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताओं व समझ के साथ संघर्ष चलता है और बाद में उस गाँव के लोग मिथिलेश बाबू की बात को देर से ही सही परन्तु मानने के लिये तैयार होते हैं। इसके माध्यम से आप वाद, प्रतिवाद तथा संश्लेषणात्मक संवाद को समझ सकते हैं। आप ने दृष्टान्त के माध्यम से समाज के अगड़े वर्ग में श्रम के प्रति सम्मान का अभाव देखा और यह भी देखा कि विद्यालय किस प्रकार उसका विकास कर रहा है। आपने यह भी अनुभव किया कि सामाजिक व सांस्कृतिक परम्पराएँ किस प्रकार विद्यालय में चलने वाली समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं यथा विशेष समुदाय के बच्चों के साथ बैठ कर भोजन करना। गाँव की अर्थव्यवस्था व जीवन पद्धति छात्रों के विद्यालय में उपस्थिति व अन्य विद्यालयी गतिविधियों को किस प्रकार प्रभावित कर रही है, यह भी आपने समझा। समग्र रूप में आपने यह भी समझा कि एक शिक्षक किस प्रकार इस स्थिति का सामना करे तथा उसमें आवश्यक परिवर्तन लाये।

दृष्टान्त 7 के माध्यम से आपने यह अनुभव किया कि विद्यालयों में किस प्रकार छुपे रूप में वंचित वर्गों के बालक–बालिकाओं के साथ भेद–भाव बरता जाता है। यह भेद–भाव मसलन सिर्फ उन्हीं बच्चों से साफ–सफाई कराया जाना, उन्हें तंग करना, उनका तिरस्कार करना आदि इतना प्रभावी होता है कि उन बच्चों को शिक्षा की प्रक्रिया से पलायित होने पर मजबूर कर देता है। आपने यह भी अनुभव किया कि किस प्रकार वंचित वर्गों के टोले में स्थित उस विद्यालय में शिक्षक के रूप में बहाल होने से लोग कैसे कतराते हैं। आपने यह भी समझा कि किस प्रकार वहाँ के समुदाय की जागरूकता तथा सरकारी अधिकारी के प्रयास से शैक्षिक माहौल में परिवर्तन लाया जाता है।

दृष्टान्त 8 में आपने मुखिया, किसान, पंचायत शिक्षक, प्रोफेसर व पत्रकार के बीच होने वाले संवादों के माध्यम से राजनीति, समाज व शिक्षकों के दृष्टिकोणों के मध्य फर्क व उनके संघर्ष को समझा। अतः शिक्षा, शिक्षण व विद्यालय के आधारों को समझने के लिये हमें उन समस्त दृष्टिकोणों को समझना होगा। सरकारी विद्यालयों को 'उनका विद्यालय' मानने की मानसिकता के पीछे के कारणों को भी आपने दृष्टान्त के माध्यम से समझा। मध्याह्न भोजन योजना के पिछड़े तथा तथाकथित अगड़े वर्ग के लिये अलग–अलग सामाजिक मायनों को भी आपने समझा। विद्यालय तथा समाज के बीच बढ़ती दूरियों व प्राइवेट विद्यालयों में सरकारी आदेश से आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के बच्चों के होने वाले प्रवेश और उन विद्यालयों में उनके साथ किये जाने वाले व्यवहारों की वास्तविकता को भी आपने समझा। दृष्टान्त के संवादों का निहितार्थ शिक्षा, शिक्षण व विद्यालयी व्यवस्था में व्याप्त समस्याओं के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनैतिक आधारों की व्यापक समझ विभिन्न पक्षों, मुद्दों व मतों के संदर्भ में विकसित करना है। अतः जब हम उपर्युक्त के संदर्भ में अपनी समझ बना रहे हों तो सभी प्रकार के विचारों व भावनाओं को महत्व देना होगा।

क्रियाकलाप

- क्या सभी विद्यालयों में एक ही प्रकार की सांस्कृतिक–राजनीतिक प्रक्रिया चलती है या अलग–अलग संदर्भों में उनमें काफी भिन्नताएं होती हैं। आपने आज तक जितने विद्यालयों को अनुभव किया है, उनके आधार पर विश्लेषण करें।
- अपने आस–पास के किन्हीं दो विद्यालयों के आर्थिक स्थिति से सम्बंधित कुछ आंकड़ों को जुटाएं और उनका विश्लेषण करें।
- सरकारी और प्राईवेट विद्यालयों में चलनेवाली सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया की तुलनात्मक विश्लेषण करें।

समेकन तथा सीखने–सिखाने में सहयोगी ई–संसाधन

इस इकाई के माध्यम से हमने समझा कि विद्यालय परवर्ती समाजीकरण का एक अहम संस्था है। विद्यालय तथा समाज के परस्पर सहयोग से ही समाजीकरण की प्रक्रिया बेहतर हो सकती है। विद्यालय में चलने वाली औपचारिक पाठ्यचर्या और साथ–साथ अनौपचारिक गतिविधियों व व्यवहारों के माध्यम से समाजीकरण की प्रक्रिया संचालित होती है। चूँकि विद्यालय भिन्न–भिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिवेश में स्थापित है अतः उनके संश्लेषण का स्वरूप भी भिन्न–भिन्न है। इसलिए एक शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने विद्यालय को वहाँ के परिवेश के अनुरूप समझे व तदनुरूप वहाँ लोकतांत्रिक मूल्यों की समझ व व्यवहार को विकसने का वातावरण तैयार करे।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें :

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी./ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।
- इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, इत्यादि।

मूल्यांकन

1. शिक्षा और विद्यालय के अंतर्सम्बंधों का विश्लेषण करें। इस संदर्भ में कुछ उदाहरणों को भी प्रस्तुत करें।
2. विद्यालय में समाजीकरण के विभिन्न कारकों की चर्चा करें। उन कारकों के प्रभावों का सोदाहरण उल्लेख करें।
3. विद्यालय की शैक्षिक प्रक्रिया के सांस्कृतिक आधारों का विश्लेषण करें।
4. विद्यालय की प्रक्रिया को राजनीतिक घटक किस प्रकार से प्रभावित करते हैं। उदाहरणों के माध्यम से विश्लेषित करें।
5. विद्यालय की गतिविधियों का उसकी आर्थिक स्थिति से क्या सम्बंध हो सकता है? इसका बच्चों की शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है? उदाहरणों के माध्यम से समझाएं।

इकाई 3

शिक्षा और ज्ञान : विविध परिप्रेक्ष्यों की समझ

परिचय

ज्ञान जीवन का आधार है जिसे प्राप्त करने की प्रक्रिया ही वास्तव में शिक्षा हैं। व्यक्ति एक ओर अपने शारीरिक पक्ष के देखभाल के लिए भोजन पर निर्भर करता है, वही दूसरी ओर वह अपनी तरह के दूसरे व्यक्तियों के साथ गतिशील संबंधों की एक प्रणाली विकसित करता है। यह उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के रूप में पहचानी जाती है। वास्तव में मानव का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास शिक्षा द्वारा संभव हो पाता है। शिक्षा के द्वारा ही नये विचार, ज्ञान, अनुभवों तथा जीवन के विभिन्न नये रूपों का अदान–प्रदान होता है। शिक्षा के द्वारा ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का विकास होता है फलस्वरूप व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन का पुनर्निर्माण होता है। इस तरह शिक्षा जीवन की मुख्य क्रिया है पर यह समाज, समुदाय, परिवेश, परिस्थिति अथवा व्यक्ति विशेष के संदर्भ में परिवर्तनशील भी है। यही कारण है कि जब शिक्षा के अर्थ, उद्देश्य या प्रकृति पर चर्चा होती है तब शिक्षा से संबंधित बहुत सारे विमर्श एक दूसरे के समानांतर खड़े हो जाते हैं। साथ ही विद्यालय में शिक्षायी प्रक्रियाओं को विभिन्न मान्यताओं एवं दृष्टिकोणों से निरंतर रूबरू होना होता है जिनके पीछे भी कई ज्ञानमीमांसीय आधार होते हैं। इसमें प्रश्नों एवं उनके उत्तर को उनके बुनियादी मान्यताओं व विचारों के संदर्भ में समझा जाता है। इस तरह क्या सीखा या क्या सिखाया जाए? आदि के बुनियाद में ज्ञान के मुद्दे अन्तर्निहित होते हैं और इन्हें ज्ञान मीमांसीय दृष्टिकोण से समझना अति महत्वपूर्ण है जो स्वयं में गतिशील हैं। दूसरे अर्थों में शिक्षा से संबंधित विमर्श या सरोकार बहुत हद तक इसके अर्थ एवं उद्देश्यों की वर्तमान जीवन में प्रासंगिकता तथा नये अर्थ की आवश्यकता से प्रभावित होते हैं। एक शिक्षक को उनके परिप्रेक्ष्य में अपनी शिक्षायी प्रक्रिया को विकसित करने हेतु शिक्षा के विभिन्न ज्ञान मीमांसीय एवं दार्शनिक पक्षों को अपने विद्यालयीय प्रक्रियाओं में यथोचित रूप से शामिल करना होता है।

उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप शिक्षा के विभिन्न दृष्टिकोणों एवं आधारों से परिचित होकर उनका विश्लेषण कर पायेंगे। साथ ही शिक्षा के उद्देश्यों, मूल्यों तथा प्रकृति के संबंध में विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों की मान्यताओं एवं तर्कों की शिक्षाशास्त्रीय विवेचना कर पाएंगे एवं उसके आलोक मे शिक्षायी रणनीति तैयार करने में सक्षम हो सकेंगे। पुनः ज्ञान की अवधारणा से सम्बंधित दार्शनिक पहलुओं का विश्लेषण करते हुए ज्ञान प्राप्ति करने के विभिन्न साधनों व माध्यमों की सामान्य समझ विकसित कर सकेंगे तथा विद्यालय में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के संदर्भ में उनका विश्लेषण भी कर पायेंगे।

शिक्षा की अवधारणात्मक समझ

हमारे दैनिक जीवन के हर कार्य को करने के लिए किसी न किसी प्रकार के शिक्षा और ज्ञान की आवश्यकता होती है। अतः हमारे जीवन में इनका इस्तेमाल हर रोज होता है। यह हो सकता है कि उनके स्वरूपों को हम नहीं पहचानते हो, क्योंकि उनका प्रयोग हम अलग–अलग नहीं करते हैं। इस इकाई को प्रभावी तौर से समझने के संदर्भ में आपके उन अनुभवों का विशेष महत्व है।

शिक्षा की अवधारणात्मक समझ

शिक्षा शब्द का बहुत ही सीधा–सादा और सरल अर्थ है–सीखना–सिखाना। परंतु अपने लक्ष्यों, सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं, कार्यों, अपेक्षाओं, प्रभावों और वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्य में यह एक बहुत ही व्यापक और साथ ही, जटिल प्रक्रिया है। इसे एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया माना जाता है, परन्तु इसके उद्देश्यों का स्वरूप इतना उलझा हुआ और अस्पष्ट रहता है कि अंततः यह एक उद्देश्यहीन प्रक्रिया बन कर रह जाती है। जहां इससे एक ओर इतिहास की धरोहर को संभाले रखने की अपेक्षा की जाती है, वहीं दूसरी ओर माना जाता है कि यह वर्तमान का पथ आलोकित करे। परन्तु इसकी दृष्टि किसी अज्ञात पथ की ओर हो, यानि इसका स्वरूप भविष्य द्रष्टा का हो। इसी प्रकार जहां एक ओर इसे व्यक्ति के विकास के सशक्त माध्यम के रूप में देखा जाता है, वहीं सामाजिक विकास का साधन भी माना जाता है। एक ओर इसे अपने आस–पास की भौगोलिक परिस्थितियों से जोड़ने का प्रयास किया जाता है, तो दूसरी ओर, अंतर्राष्ट्रीय समझ, सहयोग व शांति की जिम्मेवारी भी इसी के कंधे पर रहता है।

वस्तुतः शिक्षा के क्षेत्र की 'दिशाएं व धाराएं' इतनी व्यापक एवं बहुआयामी हैं कि इन्हें किसी एक दिशा व धारा में बांधना अथवा परिभाषित करना कठिन है। प्रत्येक समाज अपनी अपेक्षाओं, अपने लक्ष्यों अथवा जीवन–दर्शन के अनुसार इसे परिभाषित करता है। इस प्रकार

मानव की प्रकृति, क्षमताओं अथवा योग्यताओं के स्वरूप अथवा उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं के अनुकूल भी इसे परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है।

कोई शिक्षा को अत्यंत व्यापक दृष्टि से देखता है, तो कोई अत्यंत संकुचित दृष्टिकोण से। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति जीवन के उद्देश्यों को अपने दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है। उसका जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण अपने अनुभवों पर निर्भर करता है। शिक्षा जीवन के इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन माना जाता है। मनुष्य जन्म से अंत तक कुछ न कुछ सीखता ही नहीं, सिखाता भी रहता है। वह क्षण–प्रतिक्षण नए–नए अनुभव प्राप्त करता व करवाता रहता है जिससे उसका दिन–प्रतिदिन का व्यवहार भी प्रभावित होता रहता है। उसका यह सीखना व सिखाना विभिन्न समूहों, उत्सवों, पत्र–पत्रिकाओं, दूरदर्शन इत्यादि से अनौपचारिक रूप में होता है। इस प्रकार का सीखना–सिखाना अनौपचारिक सीखना–सिखाना कहलाता है, तथा यही शिक्षा का व्यापक अथवा विस्तृत अर्थ है। जब बच्चा औपचारिक कक्षाओं में निश्चित समय में निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर अनेक परीक्षाओं को उतीर्ण करके सीखता है, तब उसे औपचारिक शिक्षा कहते है। इसे शिक्षा का संकुचित अर्थ माना जाता है।

यहां यह भी स्पष्ट है कि शिक्षा, समाज में चलनेवाली, समाज के लिए व समाज के द्वारा ही निर्धारित होनेवाली प्रक्रिया है और, समाज परिवर्तनशील एवं गतिशील है। अतः शिक्षा भी एक गतिशील व परिवर्तनशील प्रक्रिया मानी जाती है। यही कारण है कि शिक्षा को किसी अंतिम रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। तथापि कुछ सामान्य प्रवृतियों के आधार पर इसे परिभाषित किया गया है। ये परिभाषाएं वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, इत्यादि दृष्टियों से भिन्न–भिन्न संदर्भों में की गई हैं। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सामान्य तौर पर शिक्षा की व्याख्या अथवा स्पष्टता अपने–अपने अनुभवों पर आधारित विभिन्न चिंतनधाराओं, विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य में की जाती रही है। एक ही समय में अलग–अलग विचारधाराओं के कारण शिक्षा के स्वरूप को निश्चितरूप से एक बंधे–बंधाए ढांचे में नहीं बांधा जा सकता। यही कारण है कि विभिन्न विचारकों के अनुसार शिक्षा को किसी एक निश्चित परिभाषा में नहीं ढाला जा सकता अपितु अलग–अलग प्रकार से, इसकी व्याख्या भी अलग–अलग परिप्रेक्ष्यों में अनेक प्रकार से की गई है। कहीं इसे शब्दार्थ की दृष्टि से, तो कहीं इसे लक्ष्यों, कार्यों, प्रक्रियाओं, अथवा सीमाओं की दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस सबके बावजूद भी इतना तो लगभग निश्चित है कि यह एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। यद्यपि इसका कोई अंतिम रूप निर्धारित नहीं किया जा सकता तथापि प्रत्येक समाज अपनी भावी पीढ़ी व समाज के विकास के परिप्रेक्ष्य में इसका रूप निर्धारित करते रहने का प्रयास निरन्तर करते रहता है।

क्रियाकलाप

शिक्षा की अवधारणा के बारे में निम्नलिखित कथनों को पढ़े और यह विश्लेषण करें कि उनका फोकस शिक्षा के किस परिप्रेक्ष्य पर है:

1. ''मनुष्य की भीतरी पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है''

   – विवेकानन्द
2. ''शिक्षा बच्चे के शरीर, मन एवं आत्मा में विद्यमान श्रेष्ठ तत्वों का पूर्ण विकास है''

   – महात्मा गांधी
3. ''शिक्षा नए समाज को बनाने की एक प्रक्रिया है''

   – संत विनोबा भावे
4. ''शिक्षा मनुष्य के मष्तिष्क के संपूर्ण विकास का नाम है''

   – डा. जाकिर हुसैन
5. ''शिक्षा व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति को खोलने की कुंजी है''

   – के.जी. सैयदीन
6. ''शिक्षा मनुष्य के नैतिक विकास का साधन है''

   – डॉ. राधाकृष्णन
7. ''शिक्षा व्यक्ति के समन्वित विकास की प्रक्रिया है''

   – जे. कृष्णमूर्ति
8. ''शिक्षा सत्य को खोजने का मार्ग है''

   – सुकरात
9. ''शिक्षा व्यक्ति की उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रखकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके''

   – जान डिवी
10. ''शिक्षा व्यक्ति को दूरदर्शी, साहसी, बुद्धिमान बनाने का साधन है''

    – विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49)
11. ''शिक्षा बच्चों को व्यावहारिक जीवन जीने की कला सीखने की प्रक्रिया है''

    – माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53)
12. ''शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है। शिक्षा राष्ट्रीय संपन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है''

    – राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66)

उपरोक्त चर्चाओं एवं क्रियाकलाप के आधार पर हम शिक्षा की अवधारणा के बारे में सार रूप से यह कह सकते हैं कि –

- शिक्षा एक प्रक्रिया है
- यह प्रक्रिया उद्देश्यपूर्ण है
- मूलरूप से ये उद्देश्य, परिवर्तन तथा विकास संबंधी हैं।
- यह परिवर्तन तथा विकास वैयक्तित अथवा समाज संबंधी हो सकता है।
- यह प्रक्रिया सुनियोजित अर्थात औपचारिक अथवा सहज अर्थात अनौपचारिक रूप से चलनेवाली हो सकती है।

क्रियाकलाप

अपने आस–पास के समुदाय के लोगों से चर्चा करें कि उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ क्या है? खासकर उपेक्षित समुदाय के लोगों से बातचीत करके यह जानने का प्रयास करें कि वे किस प्रकार की शिक्षा को बेहतर मानते हैं? अंत में यह विश्लेषित करें कि समाज में शिक्षा के बारे में क्या–क्या अवधारणाएं हैं।

शिक्षा के आधारों की समझ

शिक्षा की अवधारणा को समझने के साथ–साथ यह समझना भी जरूरी है कि वे कौन से तत्व हैं जो इसे आधार प्रदान करते हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है– वे कौन–कौन से विषय हैं जिनसे शिक्षा प्रक्रिया अपने विभिन्न अंगों जैसे शिक्षा के उद्देश्य, बुनियादी ज्ञान, शिक्षण विधियां, पाठ्यसहगामी, इत्यादि के लिए सहायता लेती हैं। अर्थात वे कौन–कौन से विषय हैं जिनके माध्यम से 'शिक्षा क्या है?', 'शिक्षा कैसी होनी चाहिए?', 'शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं? अथवा कैसे होने चाहिए? 'शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण कैसे किया जाता है?', इत्यादि प्रश्नों को सम्बोधित किया जाता है।

हालांकि, शिक्षा एक ऐसा ज्ञानानुशासन है जिससे कोई भी विषय अछूता नहीं है। लेकिन, यदि हम इसके आधारों की बात करें तो कुछ प्रमुख विषय अवश्य उभर कर आते हैं जिसके आधार पर 'शिक्षा' अपनी सैद्धांतिक जमीन तैयार करती है। इनमें चार प्रमुख विषय हैं–मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र और इतिहास। इनकी संक्षिप्त चर्चा आगे की जा रही है ताकि आप शिक्षा में इनकी भूमिका से परिचित हो सकें।

शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार

जरा विचार कीजिए कि अगर कोई शिक्षक पढ़ाते समय अपने विद्यार्थी की रूचियों, योग्यताओं, समस्याओं, मानसिक स्तर अथवा उसके अन्य पक्षों का ध्यान नहीं रखता या नहीं जानता तो क्या सीखने–सिखाने की क्रिया पूरी तरह सफल हो सकती है? शायद नहीं।

इसलिए शिक्षक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह अपने विद्यार्थी की रूचियों, योग्यताओं, मानसिक स्तर इत्यादि को भली–भांति समझे। जब तक वह बच्चे के विकास के अनेकोनेक पहलुओं को भली–भांति नहीं समझेगा, वह अपने पढ़ाने की प्रक्रिया में पूरी तरह से सफल नहीं हो सकेगा। बच्चे की ये रूचियां, क्षमताएं, मानसिक स्तर, इत्यादि बच्चे के मनोवैज्ञानिक पक्ष हैं। अतः कहा जाता है कि शिक्षा के उद्देश्य तय करते समय, शिक्षण विधियों को अपनाते/चुनते समय, और पाठ्यक्रम की सामग्री बनाते समय शिक्षक को बच्चे के मनोवैज्ञानिक पक्षों का ध्यान रखना पड़ता है। इस तरह शिक्षा और मनोविज्ञान में गहरा संबंध है। वास्तव में आज की शिक्षा को बालकेन्द्रित शिक्षा माना जाता है। इसका यही भाव है कि शिक्षा की प्रक्रिया लागू करते समय बच्चे के मनोवैज्ञानिक पक्षों को केन्द्र में रखना चाहिए अर्थात उनकी रूचियों, योग्यताओं, समस्याओं इत्यादि का ध्यान रखना चाहिए।

एक प्रसिद्ध कथन है–''एक संपूर्ण बच्चा विद्यालय आता है''। इसका समान्य अर्थ यही है कि जब बच्चे पढ़ने के लिए विद्यालय आते हैं तो वे अपने साथ–साथ अपनी रूचियों, क्षमताओं, समस्याओं, मानसिक स्तर को साथ लाते हैं। हर बच्चा अपने इन मनोवैज्ञानिक पक्षों में दूसरे से भिन्न होता है। हर बच्चे के अनुभव दूसरे बच्चों के अनुभवों से अलग होते हैं। अतः शिक्षा का सामान्य कार्य है, बच्चे का बहुमुखी विकास करना या उसकी मूल प्रवृतियों, आवश्यकताओं, आदि में संशोधन करना। यानि बच्चे में जो योग्यताएं हैं, उसकी जो रूचियां, आदि–आदि उन्हीं का विकास अथवा संशोधन करना। इस तरह शिक्षा बच्चे के मनोवैज्ञानिक पक्षों का ही विकास व संशोधन है। इसलिए शिक्षा में मनोविज्ञान ज्ञानानुशासन से वैसे सिद्धांतों एवं विषयवस्तुओं को अपनाया गया है जिनके आधार पर बच्चों के व्यक्तित्व एवं उनके सीखने–सिखाने की प्रक्रिया की सैद्धांतिक समझ बन सके। आप इस डिप्लोमा इन एलिमेंट्री एजुकेशन की पाठ्यचर्या का विश्लेषण करेंगे तो इसके विभिन्न विषय पत्रों में आपको मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की चर्चा मिलेगी।

क्रियाकलाप

अपने डी.एल.एल. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम तथा विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों के उन विषयवस्तुओं की पहचान करें जो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पहलू से जुड़े हुए हैं। उनकी सूची बनाएं और कक्षा–कक्ष में चर्चा करें।

शिक्षा का समाजशास्त्रीय आधार

इसमें दो राय नहीं है कि किसी भी समाज की संरचना, उसकी जरूरतें, उसमें उपलब्ध अलग–अलग तरह के स्रोत ही उस समाज की शिक्षा की नीति की आधारभूमि तय करते हैं। कहा भी जाता है, शिक्षा का रूप वैसा ही होता है जैसा हमारा समाज है और जैसा समाज हम बनाना चाहते हैं। असल में शिक्षा प्रक्रिया के तीनों ही प्रमुख अंग–विद्यार्थी, शिक्षक तथा पाठ्यक्रम सभी समाज के ही अंग हैं। शिक्षा के उद्देश्य समाज की जरूरतों के अनुसार तय किए जाते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया के विभिन्न अंग निरंतर ही समाज के स्वरूप से प्रभावित होते रहते हैं। शिक्षण की सामग्री का निर्माण तथा शिक्षण पद्धतियां समाज के स्वरूप पर ही निर्भर करती हैं। शिक्षा के स्वरूप में आनेवाले परिवर्तन भी समाज की बदलती जरूरतों पर निर्भर हैं। शिक्षा के स्वरूप में आनेवाले परिवर्तन भी समाज की बदलती जरूरतों पर निर्भर करते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया जहां एक ओर वर्तमान की स्थितियों से तथा भावी स्वरूप से प्रभावित होती हैं या बदलती हैं वहीं उस समाज की संस्कृति से नियंत्रित भी होती है। यही कारण है कि शिक्षा की प्रक्रिया को एक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है।

असल में सामाजिक परिस्थितियों को छोड़कर शिक्षा की कल्पना भी दूभर होती है क्योंकि शिक्षा प्रक्रिया में प्रयोग में लाई जानेवाली सारी सामग्री समाज से ही आती है। यदि थोड़ा और गहराई से सोंचा जाए तो स्पष्ट होगा कि शिक्षा एक प्रकार से समाज से ही निर्देशित होती है। हर समाज अपने रूप को बदलने अथवा इसी रूप में रखने के लिए शिक्षा की योजनाएं बनाता है व उसके लक्ष्यों को तय करता है। जैसे सन 1964–66 में भारत सरकार ने समाज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा को रूप देने के लिए समाज की

अनेक अवस्थाओं और आवश्यकताओं का बहुत बारीकियों के साथ परीक्षण करके उन्होंने उस समय भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित किया था। इसमें तीन प्रमुख बातें थीं– राष्ट्र की एकता, राष्ट्र के विकास के लिए अधिक से अधिक उत्पादन ताकि समाज की जरूरतें पूरी की जा सकें, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण ताकि लोगों में तर्कशक्ति पनप सके। इसी तरह राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की समीक्षा हेतु 1990 मे गठित आचार्य राममूर्ति समिति ने अपने प्रतिवेदन का नाम 'प्रबुद्ध और मानवीय समाज की ओर' रखा। इस नाम से भी इस बात की ओर इशारा मिलता है कि शिक्षा का लक्ष्य सूझबूझ वाले तथा इंसानियत को जानने व समझनेवाले लोगों को बनाना है।

शिक्षा और समाज के अंतर्सम्बधों को समझने में समाजशास्त्रीय सिद्धांतों और विषयवस्तुओं से खासी मदद मिलती है। समाज में बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया हो, या फिर असमानता, वंचना, सामाजिक न्याय, समावेशी समाज, इत्यादि, शिक्षा में इन सब की सैद्धांतिक समझ का आधार हमें समाजशास्त्र से मिलता है। यदि कहा जाए तो शिक्षा के सामाजिक–सांस्कृतिक आयामों को समझने में समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों की विशेष जरूरत होती है।

क्रियाकलाप

अपने डी.एल.एल. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम तथा विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों के उन विषयवस्तुओं की पहचान करें जो शिक्षा के समाजशास्त्रीय पहलू से जुड़े हुए हैं। उनकी सूची बनाएं और कक्षा–कक्ष में चर्चा करें।

शिक्षा का दार्शनिक आधार

दर्शनशास्त्र का प्रमुख कार्य शिक्षाशास्त्र को एक बौद्धिक आधार देना है। कोई भी शिक्षा व्यवस्था तब तक पूर्ण या प्रभावशाली नहीं हो सकती जब तक वह सुव्यवस्थित दार्शनिक चिंतन पर आधारित न हो। यह शिक्षा को एक 'तार्किक–चिंतन' का आधार प्रदान करता है। इस दृष्टि से शिक्षा सम्बंधी विभिन्न आयामों को एक सैद्धांतिक आधार प्रदान करना दर्शनशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य है। यह भी माना जाता है कि 'शिक्षा दर्शन' शिक्षा सम्बंधी 'आत्म चेतना' से प्रेरित 'आलोचनात्मक मीमांसा' है। इसके अंतर्गत शिक्षा सम्बंधी विभिन्न धारणाओं, अवधारणों, संकल्पनाओं अथवा चिंतनों के निहितार्थों की जांच–पड़ताल, विमर्श या खोज की जाती है। सामान्य अनुभवों अथवा विशेष रूप से अपनाई गई दार्शनिक तकनीकों से प्राप्त शिक्षा सम्बंधी सूचनाओं, जानकारियों या ज्ञान को अधिक स्पष्टता प्राप्त होने लगती है। कारण स्पष्ट ही है कि शिक्षा के उद्देश्यों का सम्बंध व्यक्ति के जीवन लक्ष्यों से गहरे रूप से जुड़ा रहता है। बुनियादी तौर पर 'जीवन लक्ष्य' जीवन दर्शन का ही रूप है।

शिक्षा के दार्शनिक तत्वों के बिना शिक्षा की प्रकृति को समझना मुश्किल है। यह भी माना जाता है कि इसका मूल उद्देश्य 'शिक्षा व्यवस्था' को एक ऐसा ठोस आधार देना है जिसके द्वारा मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं की पहचान करके उन समस्याओं को दूर किया जा सके। इस रूप में दर्शन शिक्षा संबंधी विभिन्न गतिविधियों के आधार के रूप में कार्य करता है। अतः इसके अंतर्गत विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं, विचारों अथवा सिद्धांतों के जो

शिक्षा–सम्बंधी निहितार्थ होते हैं, उनकी चर्चा रहती है। दर्शन शिक्षा के निम्न प्रकार के प्रश्नों के जवाबों को खोजने में सहायता करता है।

- शिक्षा की प्रकृति क्या है अथवा कैसी होनी चाहिए?
- शिक्षा की सामग्री क्या होनी चाहिए?
- ज्ञान क्या है? ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाता है?
- ज्ञान की प्रामाणिकता कैसे परखी जाए?
- मूल्य क्या होते हैं? उनकी शिक्षा कैसे दी जानी चाहिए?

ऐसे प्रश्नों के स्पष्टीकरण के लिए दर्शनशास्त्र शिक्षा को आधारभूत सामग्री देता है ताकि इन प्रकार के प्रश्नों का उतर पाया जा सके। अतः शिक्षा को दर्शनशास्त्र की विभिन्न विचारधाराओं के अंतर्गत उनके तत्व–मीमांसा, ज्ञान–मीमांसा तथा मूल्य–मीमांसा सम्बंधी मान्यताओं पर निर्भर रहना होता है। लेकिन, शिक्षा में दर्शन के प्रयोग का प्रश्न एक एकांगी प्रश्न नहीं है। यह अन्य अनेक सम्बद्ध विषयों के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा भी करता है। चूंकि शिक्षा एक सामाजिक विषय है, परिणामतः इसकी प्रकृति अन्तःशास्त्रीय है।

क्रियाकलाप

अपने डी.एल.एड. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम तथा विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों के उन विषयवस्तुओं की पहचान करें जो शिक्षा के दार्शनिक पहलू से जुड़े हुए हैं। उनकी सूची बनाएं और कक्षा–कक्ष में चर्चा करें।

शिक्षा के आधार के रूप में इतिहास

यह स्पष्ट है कि शिक्षा को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है, जिसकी जड़े इतिहास से सिंचित होती रहती हैं। इसलिए शिक्षा स्वयं में एक 'ऐतिहासिक' विषय है। इसके इतिहास के विश्लेषण से ही हम जान पाते हैं कि विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक–सांस्कृतिक परिघटनाओं के कारण शिक्षा का स्वरूप किस प्रकार निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। आज जिसे शिक्षा माना जाता है, उसमें कई सदियों के दौरान चल आ रही शैक्षिक चिंतन एवं गतिविधियों के प्रभावों का समावेश है। अतः वर्तमान में शिक्षा की स्थिति को समझने के लिए इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों को जानना जरूरी है। उदाहरण के तौर पर, यदि शैक्षिक नीतियों का ही विषय लें तो इनमें राजनैतिक–सामाजिक परिस्थितियों के कारण निरन्तर परिवर्तन आते रहे हैं, इसकी सैद्धांतिक समझ के लिए शिक्षा के इतिहास का आधार जरूरी है। लेकिन, इतना महत्वपूर्ण होते हुए भी, विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि शिक्षक–शिक्षा की पाठ्यचर्या में शिक्षा के ऐतिहासिक आधारों का समावेश बहुत ही सीमित दृष्टिकोण से होता रहा है।

इस डी.एल.एड. पाठ्यक्रम में यह प्रयास किया गया है कि शिक्षा के ऐतिहासिक आधार को व्यापक एवं जीवन्त रूप से सम्बोधित किया जाए।

क्रियाकलाप

अपने डी.एल.एड. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम के उन विषयवस्तुओं की पहचान करें जो शिक्षा के ऐतिहासिक पहलू से जुड़े हुए हैं। उनकी सूची बनाएं और कक्षा–कक्ष में चर्चा करें।

शिक्षा के उद्देश्यों एवं मूल्यों की समझ

जब हम किसी से यह पूछते हैं अथवा स्वयं विचार करने बैठते हैं कि 'शिक्षा का उद्देश्य क्या है' तब हमारे समक्ष कई प्रश्न उभर कर आते हैं, जैसे– समाज के किस कार्य को इससे अछूता छोड़ा जाय, क्या हम शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित कर सकते हैं, शिक्षा के उद्देश्य क्या समाज के उद्देश्यों से भिन्न है इत्यादि। शिक्षा के उद्देश्यों से संबंधित यही सब सवाल इसे एक विमर्श का विषय बनाते हैं। भारतीय संदर्भ में इन प्रश्नों पर विमर्श के लिए हम भारत के संविधान जैसे दस्तावेज का सहारा लेते हैं। साथ में हमें यह भी समझना होगा कि संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, समानता और न्याय के मूल्यों को लेकर भी लोगों की समझ अलग–अलग हो सकती है। अतः इस संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करना भी अति जटिल है।

शिक्षा के उद्देश्यों को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है– व्यक्तिपरक स्तर पर व समाज की संरचना के स्तर पर। अर्थात् लोगों की शिक्षा कही जाने वाली प्रक्रिया से अपेक्षा हो सकती है कि उससे एक खास प्रकार के व्यक्तित्व का निर्माण होगा। वहीं, यह उम्मीद भी हो सकती है कि एक प्रकार की शिक्षा व्यवस्था से एक खास तरह के समाज को बनाने में सहायता मिलेगी। यहां शिक्षा व्यवस्था से तात्पर्य सिर्फ विद्यालय मात्र नही है बल्कि समाज की सभी संस्थाएं हैं जो व्यक्ति के संपर्क में आती हैं। अक्सर हम स्कूली व्यवस्था को जरूरत से ज्यादा प्रभावशाली मान लेते हैं। अगर हम यह भी माने कि स्कूलों में सभी शिक्षक और पूरा माहौल एक विशेष दर्शन से पूरी तरह संचालित है, तो भी हमें याद रखना चाहिए कि व्यक्तित्व पर असर डालने वाले और भी कई महत्वपूर्ण कारक है। साथ ही हमें यह भी समझना होगा कि 'क्या स्कूल और शिक्षा पर्यायवाची हैं?' जब कोई यह कहता है कि आज स्कूलों में वैसा वातावरण नहीं है या शिक्षक–विद्यार्थी संबंध वैसे नहीं है जैसे पहले थे, तो वह एक स्तर पर यही आलोचना कर रहा है कि स्कूलों में जो हो रहा है उसे वह शिक्षा नहीं मानना चाहता। इसलिए हमारे पास 'कुशिक्षा' या 'खराब शिक्षा' जैसे शब्द भी हैं। शिक्षा जैसी प्रक्रिया के बारे में सिर्फ शिक्षा विचारक ही नहीं बल्कि आम इंसान भी एक राय रखता है। उसका प्रमुख कारण तो यही है कि वो भी उसमें भागीदार है और उससे प्रभावित भी है। शिक्षा कैसे सबकी चिंता का विषय है यह इससे स्पष्ट होता है कि अक्सर किसी प्रशिक्षित शिक्षक के पढ़ाने को लेकर उसके विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकों की राय अलग–अलग हो सकती है। हो सकता है कि एक शिक्षिका रोज अपनी कक्षा को बाहर खेलने ले जाती हो पर विद्यार्थियों के अभिभावकों की अपेक्षा के हिसाब से यह एक निरर्थक गतिविधि हो। अतः शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रति भी कोई एक आदर्श समझ नही हो सकती। इनको समझने के भी विभिन्न दार्शनिक आधार हो सकते हैं।

चिंतन के बिन्दु :

आप विचार करें कि क्या नीचे दिए बिन्दु शिक्षा के उद्देश्य हो सकते हैं। आप इनसे कहां तक सहमत है। आप इसमें और कौन–कौन से उद्देश्यों को जोड़ना चाहेंगे।

- शिक्षा का उद्देश्य प्रेरणा देना और सीखने के अवसरों में वृद्धि करना जिससे बच्चों में ज्ञानार्जन की कला का विकास हो सके।
- बच्चों में सतत नवीन ज्ञान हासिल करने की भावना को प्रश्रय देना जिससे वे परिस्थितियों से सामंजस्य बना सकें।
- बच्चों में ज्ञान के अतिरिक्त विभिन्न कुशलताओं एवं वांछित मूल्यों का विकास करना।
- बच्चों में स्व–चिन्तन तथा जिम्मेदारीपूर्ण आचरण का विकास।
- उनमें सौन्दर्यबोध विकसित करना, जिससे वे अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति सम्मान का भाव रख सकें।
- सत्यनिष्ठा, ईमानदारी तथा आत्मविश्वास का विकास
- सामाजिक मूल्यों का संवर्द्धन
- लोकतांत्रिक मूल्यों का समावेशन, जिससे एक समतामूलक समाज की स्थापना हो सके
- अपने और दूसरों के धर्म के प्रति समरसता के भाव का विकास
- अपने राज्य एवं देश के विविधता की समझ और उनके प्रति आदर का भाव
- परम्पराओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर आवश्यकतानुसार अपने जीवन शैली में स्थान देना
- समाज में व्याप्त समस्याओं का साहस और धैर्य के साथ सामना करना न कि उनसे हार मान लेना
- स्वयं एवं प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाना एवं पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाना जिससे उसके संरक्षण की व्यवस्था की जा सके
- समाज में सामंजस्य बनाना, जिससे एक शांतिपूर्ण एवं अहिंसात्मक समाज का निर्माण किया जा सके

एक लम्बे समय तक माना जाता रहा है कि शिक्षा छात्रों एवं शिक्षकों के बीच के अंतः क्रिया की दो ध्रुवीय प्रणाली है, जिसका एक ध्रुव सीखने वाला छात्र तथा दूसरा ध्रुव सिखाने वाला शिक्षक होता है। मानव जीवन के प्रारम्भिक काल में जब जीवन अपेक्षाकृत सरल था तो समान्यतः शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया ही रही होगी। आज भी हम गाँवों में सहज तथा सामान्य समूह में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया एवं बातचीत में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को सम्पन्न होते देख सकते है। परन्तु मानव जीवन के जटिलतर स्तर पर ज्ञान, मूल्य एवं अनुभवों से सीखने–सिखाने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत विशिष्ट हो जाती हैं। उसके लिए नये एवं औपचारिक संस्थाओं की आवश्यकता होती है जिसमें न केवल सीखने तथा सिखाने वाले के अधिकार या भूमिका पूर्व में ही तय होती है, बल्कि क्या सिखाया जाय कैसे सिखाया जाय तथा कहाँ सिखाया जाय यह भी पहले ही तय हो जाता है। कई बार नियम तथा विषयवस्तु तय करने वाले सीखने–सिखाने वालों से भिन्न होते है। इस तरह यह प्रक्रिया तीन–ध्रुवीय हो जाती है जिसके पहला ध्रुव छात्र, दूसरे ध्रुव्र पर शिक्षक तथा तीसरे पर समाज होता है। इन अर्थों को एक साथ रखकर शिक्षा के अर्थ को इस प्रकार

प्रस्तुत किया जा सकता है कि शिक्षा वह प्रक्रिया है जिससे बच्चों का अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी दोनों योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास होता है।

विमर्श के बिन्दु

- क्या शिक्षा महज एक सीखने–सिखाने की प्रक्रिया है?
- क्या शिक्षा को ध्रुवीय गतिविधि के रूप में मानना चाहिए अथवा इसके अंतः क्रियात्मक गतिविधि के रूप में बढ़ावा दिया जाना चाहिए?
- क्या शिक्षा के लिए किसी अन्य व्यक्ति का होना अति आवश्यक है?
- क्या शिक्षा सिर्फ विद्यालय तक ही सीमित है?

बहुत से शिक्षाशास्त्रीयों का मानना है कि शिक्षा केवल विद्यालय शिक्षण तथा प्रशिक्षण तक ही सीमित न होकर बच्चों में जीवन के सम्पूर्ण अनुभवों से संबंधित होती है। चाहे ये अनुभव विद्यालय के अन्दर हो या विद्यालय के बाहर। शिक्षा मात्र साक्षरता या केवल 3(R) Reading, Writing, & Recoding नहीं है बल्कि सम्पूर्ण क्रियाओं एवं गतिविधियों तथा समस्त स्थानिक–कालिक परिसर में गतिशील होती हैं अर्थात् विद्यालय के अतिरिक्त शिक्षा घर, समुदाय तथा समाज द्वारा प्रदत विकास के अवसरों तक भी पसरी होती है। एक प्रकार से शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया का ही एक दूसरा नाम है। यह कभी सामाजीकरण की एक विशिष्ट प्रक्रिया या कभी सामाजीकरण के समानांतर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में समझी जाती है।

क्रियाकलाप

उपरोक्त चर्चा को आधार मानते हुए विचार करें कि क्या नीचे दी गयी गतिविधियां शिक्षा हैं? इस संदर्भ में अपने आस पास के लोगों से चर्चा करें तथा उनके विचारों को सूचीबद्ध करें :

नदी में तैरना	मछली पकड़ना	खेत में कार्य करना
बड़े बुजुर्गो के अनुभव	केवल कहानी की किताबें पढ़ना	बागों में तितली को पकडना
वर्षा में बचाव का उपाय खोजना	हस्त कौशल के माध्यम से छोटी–छोटी वस्तुओं का निर्माण	मिट्टी के छोटे–छोटे खिलौनें का निर्माण

विद्यालय में शिक्षा की प्रकृति

विद्यालय सीखने–सिखाने की औपचारिक प्रक्रिया का स्थल है। समय के साथ–साथ औपचारिक संस्थाओं में भी विविधता आई है। औपचारिक संस्थाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता सीखने–सिखाने वाले की स्थानिक एवं कालिक निकटता है। ये दोनों एक निर्धारित स्थान एवं समय में एक दूसरे से अन्तः क्रिया करते हैं। इसमें छात्र एवं शिक्षक भौतिक एवं वास्तविक रूप में एक–दूसरे के आमने सामने होते है। ये प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे से अन्तः क्रिया करते हैं। परन्तु शिक्षा की बढ़ती मांग तथा संस्थाओं के स्थानिक सीमाओं को लांघ कर शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा ने औपचारिक शिक्षा के ताने बाने में परिवर्तन ला दिया। पत्राचार या खुले विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय की नई व्यवस्था उभर कर आई जिसमें छात्रों एवं शिक्षकों के बीच प्रत्यक्ष एवं नियमित अंतःक्रिया की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया। उदाहरण के लिए, केरल का एक विद्यार्थी बिना मेघालय गये वहाँ के विश्वविद्यालय से कोई भी कोर्स कर सकता है। जिसमें शिक्षक एवं छात्र अप्रत्यक्ष रूप से अध्ययन साम्रगी के माध्यम से अंतः क्रिया करते हैं। इस व्यवस्था को गैर औपचारिक शिक्षा कहते है। इसके अतिरिक्त जन संचार क्रांति ने भी गैर औपचारिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाया। काल्पनिक कक्षा (Virtual Classroom) तथा ई–लर्निंग या ई–एजुकेशन जैसे शब्द गैर औपचारिक शिक्षा के नए उभरते हुए अध्याय हैं।

क्रियाकलाप

नीचे शिक्षा के विभिन्न स्रोत दिए गए हैं। बतायें कि ये शिक्षा की किस प्रक्रिया से जुड़े हैं और पता करें कि उस प्रक्रिया की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं।

- आँगनबाड़ी केन्द्र
- परिवार एवं समाज
- ई–लर्निंग या ई–एजुकेशन
- संस्थागत विद्यालय

शिक्षा के उद्देश्यों में आए बदलाव ने शैक्षणिक प्रणाली में ज्ञान प्राप्ति के तरीकों एवं इसमें अध्यापक की भूमिका को नए सिरे से तराशने और समझने की जरूरतों पर बल दिया है। आज हम इस अवधारणा पर बल दे रहे हैं कि शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए। परन्तु आज भी शिक्षक पूरी शिक्षण प्रक्रिया पर हावी रहता है। ज्ञान की प्रक्रिया उन्ही से शुरू होती और वे ही उसको नियंत्रित करते हैं। कक्षागत शिक्षण प्रक्रिया में उसी का वर्चस्व है।

प्राचीन काल में यह वर्चस्व और शक्तिशाली था। वह चाहे तो कुछ लोगों को शिक्षा दे सकता था और चाहे तो कुछ लोगों को वंचित रख सकता था। परन्तु आधुनिक लोकतांत्रिक देशों में इस प्रक्रिया को प्रश्रय देना देश और राज्य के हित में समुचित नहीं समझा जाता।

आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में लगभग सभी शिक्षाविद् बालकेन्द्रित शिक्षा व्यवस्था की वकालत करते हैं जहां ज्ञान को प्राप्त करने में विद्यार्थी को पूरी स्वतंत्रता दी जाय तथा शिक्षक एक सहायक के तौर पर उनकी मदद करें। अगर मूल रूप से देखें तो रूसो का प्रकृतिवाद हो या पेस्टोलॉजी का अन्वेषणवाद, फ्रोबेल का किंडरगार्डन पद्धति हो या मारिया मान्टेसरी का मान्टेसरी पद्धति सबों ने बच्चों को केन्द्र मानते हुए आध्यापकों की सापेक्षिक भूमिका निर्धारित करने का प्रयास किया है। भारतीय संदर्भ की बात करें तो गीजूभाई बधेका, गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर, कृष्णमूर्ति जैसे अनेक शिक्षाशास्त्रीयों ने अपने अपने तरीकों से ऐसे ज्ञान के निर्माण पर बल दिया है जिसका सृजन बच्चे स्वयं करें। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इन समस्त प्रक्रियाओं का सूत्रधार अध्यापक हैं जो समय व परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। इस चर्चा से एक बात उभर कर सामने आती है कि शिक्षाशास्त्री चाहे प्रकृतिवादी हो या आदर्शवादी, यथार्थवादी हो या प्रयोगवादी या फिर निर्माणवादी दृष्टिकोण के पक्षधर हों, इस बात को स्वीकार करते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान अर्जन करना है। हाँ, यह सही है कि विधियाँ अलग–अलग हो सकती हैं जो, ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या कर सकती हैं या सम्पूर्ण रूप से एक बच्चे के विकास में सहायक हो सकती है।

शिक्षा की स्कूली प्रक्रिया को हम तीन हिस्सों में बांटकर देख सकते हैं। एक विषयगत ज्ञान–समझ (गणित, भौतिकी, इतिहास, भाषा आदि), दूसरा कला–काम का क्षेत्र (तमाम तरह के हुनर चाहे मुख्यतः उपयोगी हों या सुंदर) और तीसरा मूल्यों का। तीनों ही हिस्सों के प्रति हमारा व्यवहार क्या होगा यह हमारी नजर में शिक्षा के उद्देश्य से निर्धारित होगा। यहां यह बात रेखांकित करना आवश्यक है कि आपका दर्शन (सरल शब्दों में, अच्छे समाज व व्यक्ति के बारे में खयाल) ऐसा भी हो सकता है कि आप माने कि एक वर्ग के बच्चों के लिए तो कला की शिक्षा जरूरी है और दूसरे के लिए यह बेकार की चीज या एक तरह के बच्चों को साहसी होना चाहिए और दूसरी तरह के बच्चों को आज्ञाकारी। अपने मन और व्यवहार की पड़ताल करके हम जान सकते हैं कि जिन्हें हम शिक्षा के उद्देश्य कहते हैं क्या वो सबके लिए समान है या अलग–अलग पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए अलग–अलग हैं।

क्रियाकलाप

- आपके विद्यालय में विभिन्न वर्ग, समुदाय, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चे आते हैं। उनके अभिभावक से जानने का प्रयास करें कि उनकी नजरों में विद्यालय में किस प्रकार की शिक्षा होनी चाहिए। विद्यालय में शिक्षा की प्रक्रिया एक हैं फिर विद्यालय से जुडे भिन्न समुदायों की शिक्षा को लेकर आकांक्षा, अपेक्षा एवं व्याख्या अलग क्यों है? अपने अध्ययन केन्द्रों पर चर्चा करें एवं उभरे बिन्दुओं का अभिलेखीकरण करें।

ज्ञान की अवधारणा : दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

शिक्षा की दृष्टि से यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि 'ज्ञान' है क्या ?
क्योंकि इस बारे में सभी दार्शनिक एवं विद्वान एकमत है कि शिक्षा का प्रमुख और शाश्वत उद्देश्य ज्ञान प्रदान करना है। यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि सत्य की वास्तविकता को ज्ञान से अलग नहीं किया जा सकता। अगर सत्य का ज्ञान नहीं होता तो उस 'सत्य' का अस्तित्व ही कहाँ है? इसलिए तत्व मीमांसा के साथ ज्ञान मीमांसा अभिन्न रुप से जुड़ी है।
अंग्रेजी में ज्ञान मीमांसा को Epistemology कहते हैं। यह दो शब्दों के मेल से बना है। 'Episteme' इसका अर्थ ज्ञान है और 'Logy' से तात्पर्य है विज्ञान।

ज्ञान संबंधी छः प्रमुख समस्याएँ हैं:–

1.ज्ञान का स्वरूप क्या है?

2.ज्ञान के स्रोत क्या है?

3.क्या यथार्थ का ज्ञान सम्भव है?

4.कितने प्रकार का ज्ञान उपलब्ध है?

5.इस प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए कौन–से उपकरण प्रयोग में आते हैं?

6.सत्यता की परीक्षा संबंधी सिद्धांत क्या है?

यह छः समस्याएँ हमारे शिक्षण एवं सीखने की भी समस्याएँ हैं जैसे:–

- जब हम शिक्षण करते हैं तो ज्ञान प्रदान करते हैं। इस कारण एक शिक्षक को ज्ञान का स्वरूप जानना आवश्यक है।
- पाठ्यक्रम का चयन तथा शिक्षण विधि इस पर निर्भर है कि ज्ञान हमें किन स्रोतों से प्राप्त होता है?
- किस प्रकार यथार्थ ज्ञान प्रदान किया जाता है?
- कितने प्रकार के ज्ञान प्रदान किये जा सकते हैं?
- ज्ञान को प्राप्त करने के उपकरण विद्यार्थियों के सीखने की प्रक्रिया के संबंध में समझ प्रदान करते हैं।
- यह प्रत्येक शिक्षक की समस्या होती है कि जो ज्ञान वह प्रदान कर रहा है वह किस सीमा तक यथार्थ है?इसके लिए उसे दो बातों पर मुख्य रूप से ध्यान देना चाहिए–
  (1) क्या पूर्ण यथार्थता का ज्ञान सम्भव है?
  (2) हम यह कैसे जान सकते हैं कि जो ज्ञान प्रदान किया जाता है वह सत्यता की कसौटी पर खरा है?
  इस संबंध में दार्शनिकों ने कई सिद्धांत प्रतिपादित किया है जो शिक्षकों को जानना बेहद जरूरी हैं।

भारतीय दर्शन में 'ब्रह्म' (सत्य) और ज्ञान में कोई अन्तर नहीं माना गया है। जैमिनी मीमांसा दर्शन में कहा गया है कि सत्य स्वयं प्रकाशित है। इस दृष्टि से ज्ञान की उत्पत्ति अपने आप होती है। वह मनुष्य के मन में स्वयं उद्भाषित होता हैं क्योंकि सत्य और ज्ञान एक ही है। ऐसे ज्ञान को ईश्वरीय ज्ञान अर्थात सत्य द्वारा प्रदत्त माना जाता है।

बड़े–बड़े संतों और धर्म प्रवर्त्तकों के मन में पहले ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने दूसरों को शिक्षा दी। ज्ञान की यह अवधारणा 'शिक्षा' के मूल को नष्ट नहीं करती, तो कमजोर अवश्य बना देती है। शिक्षा ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रयास है और प्रयास से ज्ञान प्रदान नहीं किया जा सकता। यह बात कई बार अनुभव से प्रमाणित भी हो जाती है। सार रूप में कहा जा सकता है कि किसी वस्तु/चीज के बारे में वास्तविक स्थिति की जानकारी ही ज्ञान है, अर्थात वह वस्तु/चीज क्या और कैसी है?

प्रायः हम इस बात से परिचित हो चुके हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया, बुनियादी तौर पर ज्ञान के आदान–प्रदान पर आश्रित एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया है। यहां यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि दैनिक जीवन मे 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। परन्तु सामान्य तौर पर इसे 'जानने' की प्रक्रिया में अभिव्यक्त किया जाता है। यह 'जानना', सूचना अथवा परिचय आदि अन्य अर्थों का सूचक हो सकता है–

''मेरे विद्यालय की शिक्षिका रीना को प्रोजेक्टर चलाना आता है।'' इस वाक्य में ज्ञान का प्रयोग योग्यता के अर्थ में किया गया है।

''मैं अपनी कक्षा के सभी बच्चों को जानती हूं।'' इस वाक्य में जानने का अर्थ परिचय के संदर्भ में किया गया है।

''हम सब जानते हैं कि हमारे विद्यालय में कल खेलकूद प्रतियोगिता है।'' इस वाक्य में जानने का प्रयोग सूचना के अर्थ में किया गया है।

ज्ञान के इन रूपों को 'सामान्य ज्ञान' के रूप में स्वीकार किया गया है। तथापि इनमें से 'सूचनात्मक ज्ञान' को मानवीय ज्ञान के मूल के रूप में देखते हुए माना गया है कि ज्ञान मीमांसीय अध्ययन की दृष्टि से यही ज्ञान महत्वपूर्ण है। यद्यपि कुछ दार्शनिक इस प्रकार के सूचनात्मक ज्ञान की सत्ता को स्वीकार नहीं करते और न ही इसे 'व्यवहार व सिद्धांत' के लिए आवश्यक मानते हैं। तथापि विचारकों की स्पष्ट मान्यता है कि ज्ञान का सूचनात्मक अर्थ ही मानवीय ज्ञान का मूल है और सिद्धांतों की रचना और व्यावहारिक खोज–दोनो के लिए आवश्यक है।

सामाजिक समूहों के बीच आपस मे अंतःक्रिया, अनुभवों, विचार–विमर्शों द्वारा देखने, समझने, विचारने इत्यादि से प्राप्त यह 'ज्ञान' प्रमाणित–अप्रमाणित विश्वासों पर टिका रहता है। वस्तुतः भ्रम, संशय आदि की स्थितियों का भी इसके स्वरूप व विकास में बहुत योगदान होता है। जैसे बहुत कुछ अतीत से सहज रूप में प्राप्त, परम्परा रीति–रिवाजों का हिस्सा होता है तथा मुहावरों, लोकोक्तियों के रूप उपलब्ध रहता है। इसकी सत्यता का आधार केवल विश्वास रहता है। अतः माना जाता है कि परम्परा आदि से प्राप्त अथवा स्वयं के अपरीक्षित अनुभवों, विश्वासों आदि से सम्बद्ध ज्ञान को तब तक ज्ञान नहीं माना जा सकता

जब तक इसे निश्चित, यथार्थ तथा असंदिग्ध सिद्ध न कर दिया जाए। भारतीय परम्परा में इस प्रकार के ज्ञान को 'प्रमा' कहा जाता है जिसका अभिप्राय है– प्रमाणित ज्ञान। ज्ञान मीमांसीय दृष्टि से ज्ञान से अभिप्राय है–भ्रमरहित, निश्चित, प्रमाणित ज्ञान अर्थात प्रमा।

भारतीय परम्परा के अनुसार 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है :

1. जानने के 'साधन' के रूप में : जिससे जाना जाता है (ज्ञायते अनेन इति ज्ञान :) जाना जाता है इससे, इस प्रकार यह ज्ञान है।
2. जानने की क्रिया के 'फल' के रूप में : जो जाना जा चुका है, वह ज्ञान है (ज्ञातम् इति ज्ञानम् : जाना जा जुका है जो वह ज्ञान है)

पाश्चात्य दार्शनिक परंपरा में भी ज्ञान संबंधी समस्या दर्शनशास्त्र की एक प्रमुख समस्या ही नही अपितु एक बुनियादी समस्या है। ज्ञान मीमांसा को दर्शनशास्त्र की प्रमुख शाखा माना गया है तथा इस संदर्भ में ज्ञान संबंधी अनेक प्रश्न, विभिन्न समस्याएं व शंकाएं उठायी जाती रही हैं तथा इसके परिणामस्वरूप चिंतन की नई धाराओं का प्रस्फुटन होता रहा है। दो प्रमुख धाराओं – बुद्धिवादी व अनुभववादी की चर्चा करते हुए दयाकृष्ण कहते हैं –

> "पश्चिम में बुद्धिवादी परम्परा ग्रीक दार्शनिक प्लेटो और उससे पहले पाईथागोरस से शुरू होकर जर्मन दार्शनिक हेगल में अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है। इसके विपरीत इन्द्रिय ज्ञान बुद्धि से स्वतंत्र है और केवल बुद्धि द्वारा अग्राह्य है। .... इसकी परम्परा
>
> "पश्चिम में बुद्धिवादी परम्परा ग्रीक दार्शनिक प्लेटो और उससे पहले पाईथागोरस से शुरू होकर जर्मन दार्शनिक हेगल में अपनी चरम सीमा पर पहुंचती है। इसके विपरीत इन्द्रिय ज्ञान बुद्धि से स्वतंत्र है और केवल बुद्धि द्वारा अग्राह्य है। ...इसकी परम्परा सामान्यतः इंग्लैण्ड के दार्शनिक बेकन तथा लॉक से मानी जाती है। इसका चरम रूप लॉक के उस वाक्य में समझा जाता है जो सारे ज्ञान का उद्‌भव इंद्रियानुभव में मानता है। इसकी चरम अवस्था इस मत में पहुचती है कि शुद्ध बुद्धि द्वारा ग्राह्य ज्ञान जैसी कोई चीज़ नहीं है।"
>
> (ज्ञान–मीमांसा : दयाकृष्ण, 1973)

मूल समस्या 'ज्ञान' के सत्यापन अथवा प्रमाणीकरण की है कि आखिर कैसे निश्चित हुआ जाए कि 'प्राप्त किया गया ज्ञान' निश्चित, भ्रमरहित व यथार्थ है। साथ ही प्रमाणित करने वाले साधनों की प्रामाणिकता का प्रश्न भी महत्वपूर्ण प्रश्न है। पाश्चात्य परम्परा में अनुभववादी विचारधारा में इन्द्रियों के अनुभवों अर्थात प्रत्यक्ष पर आधारित ज्ञान को 'वैज्ञानिक ज्ञान'के रूप में माना गया है। अतः इसके सत्यापन का प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जो 'इन्द्रिय अनुभूति' पर ही आश्रित है। इस ज्ञान को सूचनात्मक ज्ञान के रूप में जाना गया है। पाश्चात्य चिंतनधारा में इस शाखा के प्रमुख प्रतिपादक 'जॉन लॉक' के अनुसार कोई भी 'काल्पनिक अथवा व्यावहारिक'सिद्धांत पहले से विद्यमान नही होता, अपितु उन्हे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। विभिन्न वस्तुओं के 'प्रत्यय' अथवा 'संकल्पनाएं' जन्मजात न होकर इन्द्रियों द्वारा अर्जित होती हैं। लॉक का मानना है कि मनुष्य का मन

एक कोरी स्लेट होती है। इसमें पहले से कोई विचार विद्यमान नहीं होता, बल्कि अनुभव ही सम्पूर्ण ज्ञान का आधार है। जॉन लॉक की ज्ञान–प्राप्ति की प्रक्रिया के दो मार्ग हैं–

1. संवेदना के द्वारा तथा
2. चिन्तन के द्वारा।

संवेदना प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया है जिसमें हमारी इन्द्रियां बाहरी वस्तुओं के सम्पर्क में आती हैं। भारतीय दर्शन में इसे 'इन्द्रियार्थ–सन्निकर्षः प्रत्यक्षम्' कहा गया है।

भौतिक पदार्थ शारीरिक इन्द्रियों को उद्दीप्त करते हैं। इससे उत्पन्न उत्तेजना मस्तिष्क में पहुंचकर संवेदना उत्पन्न करती है। यही संवेदनात्मक ज्ञान है। स्पष्ट ही है कि इसके अनुसार वस्तुओं की सत्ता मन से स्वतंत्र है। संवेदना से बाहरी वस्तुओं का ज्ञान होता है।

चिंतन द्वारा भीतरी परिस्थितियों का ज्ञान होता है। इसे एक प्रकार से 'अंतर्दर्शन'की प्रक्रिया माना गया है। इससे सुख, दुःख, संशय, निश्चय, विश्वास, विचार इत्यादि मानसिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है। लॉक के अनुसार 'संवेदना व चिन्तन' द्वारा प्राप्त ये प्रत्यय 'सरल व बिखरे' हुए होते हैं, असंबद्ध होते हैं, जिन्हें पुनः संगठित करने की अर्थात संबद्ध करने की आवश्यकता होती है। परंतु इन सरल प्रत्ययों को मन पुनः संगठित अथवा सम्बद्ध करता है।

पुनर्संगठन का कार्य मन तुलना, पुनरावृत्ति आदि के आधार पर करता है। मन की यह सक्रिय अवस्था है। इसके द्वारा संगठित प्रत्यय 'जटिल प्रत्यय' कहलाते हैं। इसप्रकार इंद्रियों के अनुभव के बिना ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती, अतः लॉक के अनुसार ज्ञान 'असीमित' न होकर 'सीमित' है।

शैक्षिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है, लॉक के अनुसार, कि बच्चों में चिन्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पहले उनकी इन्द्रियों को सूचना प्राप्त करने के रूप में अधिक से अधिक अनुभव लेने का अभ्यास कराया जाना चाहिए। शिक्षण की प्रक्रिया में बच्चों के अनुभवों को महत्व देना आवश्यक है। स्पष्ट ही है कि बच्चों की अवस्था आदि को भी ध्यान में रखना अनिवार्य होगा। वस्तुतः यह प्रक्रिया 'स्थूल से सूक्ष्म'के प्रति जाने की प्रक्रिया हैं। दूसरे शब्दों में, जब तक बच्चे वस्तुओं के यथार्थ, वास्तविक, अवलोकनीय, मूर्त स्वरूप से परिचित न होंगे तब तक वे अमूर्त विचारों की कल्पना न कर पाएंगे।

अनुभवों पर आश्रित होने के कारण यह सम्भव है कि, अपने–अपने अनुभवों में भिन्नता के कारण, प्रत्येक अनुभवकर्ता के ज्ञान के स्वरूप भी पृथक हो। परिणामतः शिक्षा की प्रक्रिया को भी एक वैयक्तिक रूप से प्रस्तुत करने के प्रति संकेत है। पाश्चात्य चिंतन परम्परा में, अपनी अपनी दार्शनिक विभिन्नताओं को मानते हुए भी जार्ज बर्कले, डेविड ह्यूम जैसे प्रमुख चिन्तक भी 'ज्ञान' को अनुभवों का ही प्रतिरूप मानते हैं।

ज्ञान की दूसरी परम्परा बुद्धिवादी परम्परा है। इस परम्परा के अनुसार 'बुद्धि' यानि प्रमुखतः चिंतन ही ज्ञान का आधार है। ज्ञान के दो रूप– 'सत् एवं असत्' मानते हुए बुद्धि को ही इसके निर्णय के आधार के रूप में देखा गया है। इस दृष्टि से ज्ञान 'सत्य'का पर्याय है तथा सत्य के अन्वेषण के लिए मन को विभिन्न पूर्व मान्यताओं से मुक्त रखा जाय तथा बिना प्रमाण के किसी भी तथ्य को स्वीकार न किया जाए। इस परम्परा में 'मन' अत्यंत सक्रिय है तथा 'सत्य' प्रत्यय जन्मजात है। बुद्धि की सीमा ही ज्ञान की सीमा है। इस दृष्टि

से 'ज्ञान' को सार्वभौम रूप में भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कहा जा सकता है कि 'सामान्यीकरण' ज्ञान की एक विशिष्टता है। इस धारा की मान्यता है कि समस्त ज्ञान मन से पहले ही विद्यमान रहता है। अनुभवों आदि के द्वारा इसकी अभिव्यक्ति आदि ही होती है। 'अंतदृष्टि' को इसमें विशेष स्थान दिया गया है। पाश्चात्य दर्शन धारा में रेने देकार्ते, बेनेडिक्ट स्पिनोज़ा तथा डब्ल्यू लाइबनित्ज़ का इस सिद्धांत को रूप देने में विशिष्ट स्थान है।

- एक बच्चा इन्द्रिय संवेदनाओं तथा संज्ञानात्मक योग्यता की संभावना से युक्त होता है।
- एक बच्चा स्वभाव से संवेदनशील, जिज्ञासु तथा क्रियाशील होता है।
- ज्ञान को निष्क्रिय रूप से खोजा नही जाता बल्कि निर्माण एवं पुनर्निर्माण किया जाता है।
- बच्चे अपेक्षाकृत अनौपचारिक एवं नैसर्गिक संदर्भ में ज्ञान–अनुभव को निर्माण/पुनः निर्माण करते है।

बतौर शिक्षक विद्यालय में एक ऐसे महौल का सृजन करना आवश्यक है जहाँ बच्चे कही या लिखी बात को आँखें मूंदकर स्वीकार करने की बजाय उसे आलोचनात्मक दृष्टि से परखे और उस पर प्रासंगिक सवाल उठाएँ तथा अपने तार्किक कौशल को विकसित कर दो बातों के बीच के अंतरसंबध को समझ सके तथा अपने द्वारा कही या लिखी गई बात की तर्क से पुष्टि कर सके।

(बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008)

ज्ञान प्राप्त करने के विभिन्न साधनों में संवाद का अपना विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्य अथवा शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से एक गतिशील प्रक्रिया के रूप मे 'संवाद' एक सक्रिय कक्षा की आधारभूत ऐसी मौखिक गतिविधि है जिसमें किसी चिंतनशील विषय पर आपसी विचार–विमर्श तब तक निरंतर बना रहता है जब तक संवाद में भाग लेनेवाले सभी प्रतिभागी सामूहिक रूप से कुछ सामान्य निष्कर्षों तक नहीं पहुंच जाते। 'संवाद' का संबंध मूल रूप से दर्शनशास्त्र की 'ज्ञानमीमांसा' शाखा की 'बुद्धिवादी' अथवा 'संज्ञानवादी' परम्परा से है। इसके अंतर्गत यह मानकर चला जाता है कि मनुष्य केवल एक कोरी स्लेट न होकर एक पूर्वनियोजित बुद्धिवाला, चिंतनशील व चेतन प्राणी है जो अपने अनुभवों आदि के आधार पर 'भाषा' का प्रयोग करते हुए अपना पक्ष रख सकता हैं। बुनियादी तौर पर मौखिक प्रक्रिया होने के कारण संवाद में 'भाषा' के रचनात्मक प्रयोग का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। यहां यह भी स्पष्ट हाना चाहिए कि 'संवाद' दर्शनशास्त्र की एक प्रमुख एवं आधारभूत विद्या है जिसके द्वारा किसी दार्शनिक समस्या पर विचार विमर्श किया जाता है। जिज्ञासा जगाए रखना अथवा जगाते रहना इसका मूल आधार है।

क्रियाकलाप

- ज्ञान के संदर्भ में विभिन्न संस्कृतियों में क्या मान्यताएं हैं, इसका पता लगाएं और अपने कक्षा–कक्ष में चर्चा करें।

- क्या ज्ञान की कोई एक अवधारणा हो सकती है? इसपर अपने कक्षा–कक्ष में एक परिचर्चा का आयोजन करें।

ज्ञान के विविध स्वरूप एवं अर्जन के तरीके

वर्त्तमान संदर्भ में शिक्षकों के पास एक सबसे बड़ी चुनौती है कि ज्ञान के विभिन्न रूपों को कैसे समझा जाय। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 ने इस संदर्भ में पांच कठिनाइयों की पहचान की है जो किसी विषय में ज्ञान को निर्धारित करने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

1. ज्ञान के वैसे स्वरूप की उपेक्षा जो किसी विषय या पाठ्यपुस्तक के दायरे में नहीं आते।
2. विषयों को अलग–अलग बाँटने से ज्ञान धुंधला और सीमित हो जाता है।
3. पहले से मौजूद ज्ञान पर अत्यधिक बल देने से ज्ञान के सृजन की संभावना क्षीण हो जाती।
4. नई चिंताओं और नई समस्याओं को शामिल करने में समस्या।
5. विद्यालय की पाठ्यचर्या में किस ज्ञान को किस आधार पर शामिल किया जाय इसकी दुविधा।

इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि एक शिक्षक को शिक्षण रणनीति तैयार करते समय यह निर्णय लेना होगा कि ज्ञान के विभिन्न रूपों का प्रयोग कितना और किस रूप में करें। क्योंकि ज्ञान का आधार यदि सूचना, अवधारणा और संदर्भित अनुभव है तो उसे सही रूप में प्रयोग करना उसकी कुशलता है और बच्चों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो को प्रस्फुटित करने की एक संतुलित प्रक्रिया हो सकती है। सीखनें–सिखाने की प्रक्रिया मे बतौर शिक्षक यह जानना आवश्यक है कि ज्ञान क्या है? तथा इसके प्राप्ति के साधन क्या है? एक बच्चा अपने आस पास की वस्तुओं, व्यक्ति एवं पर्यावरण से अंतःक्रिया करते हुए उसके बारे में, उस व्यक्ति या वस्तु विशेष के प्रति अपनी धारणा बनाता है। इस तरह से ज्ञान एक प्रक्रिया तथा उसका परिणाम दोनों है। जो विचार, अनुभव तथा कौशल सीखा जाना है वह ज्ञान तब कहलाता है जब वह सीखने वाले के संदर्भ मे देखा जाता है।

सीखने वाले की इच्छा या आशय किसी वस्तु या स्थिति को ज्ञान बनाता है। बच्चा जैसे ही अपने इन्द्रिय द्वारा वस्तु के रूप, रंग या स्वाद को पकड़ने की इच्छा से आकर्षित होता है, उसे उस वस्तु का अनुभव होता है। इस तरह बच्चा जब अपने संज्ञानात्मक विशेषताओं के साथ वस्तुओं से अंतःक्रिया करता है उस वस्तु के बारे में अपनी धारणा बनाता है जो ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। ज्ञान अन्तःक्रिया करने वाले के संज्ञानात्मक एवं इन्द्रियजन्य विशेषताओं पर निर्भर करता है जिससे ज्ञान का रूप तय होता है।

क्रियाकलाप

- आप किसी विषय का चुनाव कर लें जिसमें आपकी रूची थी/है। उनमें कौन–कौन से ऐसे सैद्धांतिक पक्ष थे/है जो आपके जीवन से आज भी जुड़े है। किन्ही पांच बिन्दुओं को लिखें।
- उन पांच विषय–वस्तुओं को इकठा करें जो आज के दौर में बिल्कुल अप्रासंगिक लगते हों। उभरे हुए बिन्दु को लेकर कक्षा–कक्ष में बड़े समूह के विचार जानें।

आपने महसूस किया होगा कि विभिन्न पक्षों का हमने जिस रूप में अध्ययन किया है वे उसी रूप में शायद हमारी जीवन की प्रक्रियाओं से मेल नहीं खाते। हम इतिहास में विभिन्न संग्रामों की चर्चा करते है क्या आपने कभी सोचा है कि हम इस विषय को क्यों पढाते हैं? उसका उपयोग क्या है? उसका प्रयोग क्या है? क्या आप सोचतें हैं कि ये ज्ञान को बढावा देते है या नहीं? नहीं न, तो आइयें ज्ञान एवं उसके कुछ रूप और उनके अन्तर्सबंधों की पड़ताल करते हैं।

सूचना : सूचना ज्ञान संवर्धन का प्राचीनत्तम रूप है। इसका मुख्य आधार पाठ्य पुस्तक, आपसी चर्चा, शिक्षकों की बातें या आधुनिक युग में सूचना एवं संचार प्राद्यौगिकी के विभिन्न तरह की सूचना से बच्चों के मानसिक स्तर में वृद्धि करना हैं। सीखने सिखाने की प्रक्रिया में सूचना अत्यावश्यक है जिससे जानकारी की सीमायें बढ़ सके, परन्तु महज किताबों में लिखें या प्रत्यारोपित ज्ञान उन्हें एक निष्क्रिय शिक्षार्थी बना देता है, जो उनके ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को महज सवालों के जबाब देने तक सीमित कर देता है। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सूचना ज्ञान का एक स्वरूप है यदि इसका आधार बच्चों के मानसिकता को ध्यान में रख कर किया जाय।

अवधारणा : अवधारणा व्यक्ति के चेतन और अवचेतन मन के द्वंद का परिणाम है। शिक्षा की प्रक्रिया में जब कोई बच्चा विद्यालय में प्रवेश करता है तो उसके बात व्यवहार, आचरण एवं वेशभूषा के आधार पर कहीं ना कहीं हमारे मन में एक विचार जन्म लेती है। उस विचार का प्रभाव जाने अनजाने हमारी शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावित करती है। आमतौर पर ऐसे विचारों को नकारा नहीं जा सकता परन्तु एक लोकतांत्रिक शिक्षक इन अवधारणाओं को आधार बना कर अपनी शिक्षा की रणनीति तैयार करते हैं, जो जमीनी सच्चाई से जुड़ा हो। यह प्रक्रिया बच्चों के साथ भी होती है, वे किसी खास विषय या सूचना के प्रति अपने विचार कायम कर लेते है जिससे ये विषय उनके लिए बोझ हो जाता है। जिससे दिए गए विषय ज्ञान के प्रति उनकी अवधरणा स्पष्ट नहीं हो पाती। यह एक निर्विवाद सत्य है कि बच्चा केवल एक संज्ञानात्मक इकाई नहीं है। वह एक जिज्ञासु प्राणी है। विचार बच्चों के संज्ञान में निहित होतें है, अतः जब वह किसी भौतिक वस्तुओं या अपने परिवेश से प्रतिक्रिया करता है तो एक अस्थाई धारणा बना लेता है जो उस वस्तु या व्यक्ति विशेष के प्रति उसके अवधारणा को आधार देता है एव ज्ञान सृजन में सहायता करता है।

अनुभव : आज के लगभग तमाम शिक्षाशास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि वच्चें जब विद्यालय आते हैं तो उनके साथ उनके अनुभव का एक भंडार रहता है जो वे स्वयं से,

घर परिवार से, आस–पड़ोस से एवं हम उम्र बच्चों से प्राप्त करते हैं। इस अनुभव के आधार पर वे कई अनसुलझे शिक्षार्थी गतिविधियों की पड़ताल करते हैं एवं ज्ञान का सृजन करते है। एक शिक्षक की रणनीति में उनके अनुभवों का समावेशन उन्हें ज्ञान सृजन के नए–नए अवसर प्रदान कर सकता है। उत्तर बिहार के बाढ़ग्रस्त इलाके के बच्चों को यदि वर्षा ऋतु के सौन्दर्य किताब में दिए गए उदाहरणों से ही बताया जाय तो शायद उनका मन पढ़ते या लिखते समय एक मौन विरोध करेगा और समग्र शिक्षा की प्रक्रिया उसके लिए झूठ ही प्रतीत होगी। अतः एक कुशल शिक्षक के रूप में हमें उनके अनुभवों से अपने पाठ को जोड़ना होगा जिससे एक स्वस्थ्य शैक्षणिक माहौल बन सके और बच्चें ज्ञान का निर्माण कर सकें। जब हम अनुभव की बात करतें हैं तो अनुभव केवल शिक्षकों तक हीं सीमित नहीं रहता, वरण बच्चों के अनुभव अपेक्षाकृत ज्यादा मायनें रखतें है। बच्चें विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा भौतिक वस्तु एवं स्थिति से संवेदना प्राप्त करते है यह संवेदनाये अपने इन्द्रिय द्वारा उसने रूप, रंग या स्वाद को पकड़ने की इच्छा से प्रभावित होतें है जिससे उन्हें उस वस्तु विशेष का अनुभव होता है। इस तरह अनुभव ज्ञान का आधार है विभिन्न इन्द्रियों को भिन्न–भिन्न तरीकों से संयोजित करके एक ही वस्तु स्थिति के अनेक अनुभवों को भाषा तथा सांकेतिक तथ्यो द्वारा संज्ञानात्मक रूप दिया जाता है जो अनुभवों का ही सामान्यीकरण है। अनुभव रूपी ज्ञान ही बुनियादी ज्ञान है। जो विभिन्न इन्द्रिय जनित संवेगों का समेकित रूप है। जो आज की शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है।

कौशल : किताबी ज्ञान चाहे किसी भी क्रिया प्रक्रिया के माध्यम से दी गई हो वह बच्चों को ज्ञानी तो बना सकती है, लेकिन जबतक उनमें कार्य करने की कुशलता विकसित नहीं होगी तब तक ज्ञान का आधार उस तोंते की तरह हो जायेगी जिसे यह तो ज्ञान था कि "शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा, दाना डालेगा, लोभ से उसमें फंसना नहीं" फिर भी जाल में फंस जाते हैं। अतः शिक्षकों को शिक्षायी रणनीति में सीखे गए बातों के प्रयोग करने की क्षमता अवश्य शामिल करनी चाहिए, जिससे बच्चे आनेवाली चुनौतियों का सामना कर सकें।

शिक्षण प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वालें ज्ञान के विभिन्न स्वरूप

ज्ञान के चारों रूप देखने में तो अलग–अलग लगते हैं। एक लम्बे समय मे अलग–अलग तरीकों से देखे भी जाते है परन्तु आज के शिक्षा के संदर्भ में यह वांछित है कि शिक्षक अपने शिक्षा की रणनीति को किसी विषय के संदर्भ में इस तरह विकसित करें कि बच्चों के सृजनात्मक एवं रचनात्मक क्रियाओं को विकसित होने का अनुकूल माहौल मिले और निर्मित ज्ञान की मूलता को व्यवहारिक जीवन के परिपेक्ष्य में देख सकें।

दृष्टांत –1

गर्मी का मौसम था। बच्चें आमतौर पर उल्टी और दस्त से ग्रस्त हो जाया करते थे। विद्यालय में शिक्षिका ने बताया कि यदि ऐसा हो तो तुरन्त नमक, चीनी और पानी का घोल पिलाना चाहिए। मुन्नी जब घर पहुँची तो उसने देखा कि उसका भाई बिस्तर पर पड़ा हुआ है। जैसे हीं उसे कारण की जानकारी हुई, जल्दी से उसनें नमक, चीनी और पानी का घोल तैयार कर अपने भाई मुन्ने को दिया। थोड़ी देर बाद आराम होने पर वे उसे पास के स्वास्थ्य केन्द्र पर ले गयी।

चिंतन के बिन्दु

- मुन्नी के क्रियाकलापों का ज्ञान के विभिन्न रूपों के संदर्भ में विवेचना करें।
- अपने विचारों को क्रमवद्ध रूप में एकत्र कर कक्षा–कक्ष में उपस्थापित करें और अपने सहयोगियों की राय जाने।

ज्ञान अर्जन के विभिन्न तरीके

इससे पहले की चर्चा में आपने शिक्षा एवं ज्ञान के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण पर विचार किया है। साथ ही साथ प्रक्रिया एवं परिणाम के रूप में ज्ञान के अर्थ को विद्यालय के संदर्भ में भी विचारित किया है। इसके अतिरिक्त ज्ञान के विभिन्न रूपों तथा इनके अर्न्तगत संबंधों के माध्यम से विद्यालय मे सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को दृश्यावलोकित भी किया होगा। इस भाग में बच्चों द्वारा ज्ञान प्राप्ति एवं सीखने के विभिन्न क्रियाओं प्रक्रियाओं पर चर्चा की जाएगी। जिसके आलोक में शिक्षको में परिप्रेक्ष्य एवं रणनीति के विकास के लिए प्रयास किया जाएगा।

ज्ञान के स्वरूप को आवश्कतानुसार प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि एक शिक्षक में ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न तरीकों की एक समीक्षाई समझ विकसित हो। विद्यालय में ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया के विभिन्न रूप देखा जाता है जो बच्चों की सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से प्रचलित होती है। भिन्न भिन्न क्रियायें जैसे अवलोकन, तर्क करना, समीक्षा करना, बातचीत या संवाद, चिन्तन, प्रयोग करना एवं परिवेश में भाग लेना, अभिव्यक्ति का गढ़ना, अनुभव करना इत्यादि ज्ञान प्राप्ति एवं सीखने–सिखाने की रणनीतियाँ हैं।

बच्चा सक्रिय रूप् से केवल पूर्व प्रचलित अनुभव या विचारों के आधार पर हीं अपने ज्ञान का निर्माण नहीं करता बल्कि नई परिस्थितियों, भौतिक, वैचारिक, भाषिक एवं सांकेतिक रूप से संवेगात्मक तथा बौद्धिक क्रिया करते हुए नये विचार, अनुभव तथा कौशल को भी निर्मित करता है। इस विचार, अनुभव एवं कौशल का निर्माण एवं पुनर्निर्माण बच्चों के विकास का अंतरंग पहलू है। परन्तु विद्यालय से पूर्व तथा विद्यालयीय जीवन प्रारम्भ करने के बाद बच्चों के ज्ञान प्राप्ति एवं सीखने की प्रक्रिया में अंतर होता है। विद्यालय से पूर्व बच्चों के सीखने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत अनौपचारिक होती है तथा सीखने का संदर्भ भी अनौपचारिक होता है, सीखने की विषय–वस्तु भी अपेक्षाकृत मूर्त एवं सामान्य होती है। जबकि विद्यालय में सीखने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत औपचारिक परिवेश में तथ औपचारिक रूप से संचालित होती है। यहाँ सीखने की विषय वस्तु भी अपेक्षाकृत अमूर्त, विशेष एवं जटिल होती है। विद्यालय पूर्व तथा विद्यालय में सीखने के बीच अंतर का एक मुख्य लक्ष्य सीखने की प्रकिृति भी है। विद्यालय पूर्व परिवेश, माता–पिता, बड़े बुजर्ग, मित्र–मण्डली या समुदाय एवं समय की मध्यस्तता बच्चों के सीखने के अनौपचारिक तरीकों से नैसर्गिक रूप् से अनुकूलित होती है। समय की अधिक मात्रा में उपलब्धता के कारण बच्वें सीखने के क्रम में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र एवं सक्रिय होते है। जिसके फलस्वरूप सीखने की प्रक्रिया नैसर्गिक रूप से चलती रहती है। परन्तु विद्यालय में शिक्षक, विषय वस्तु तथा स्थान एवं समय की मध्यस्थता अपेक्षाकृत लघु तथा बच्चों के औपचारिक परिवेश से भिन्न होती है। विद्यालय में शिक्षकों की मध्यस्थता, बच्चों तथा वयस्को के बीच एक नैसर्गिक संबंध न होकर सीखने के विषय वस्तु तथा विद्यालय के संगठनिक–स ंस्कृति तथा स्थानिक–कालिक संसाधनों से प्रभावित

होती है। कई रूप में विद्यालय का परिवेश बच्चों के सीखने के स्वभाविक प्रक्रिया को नकारात्मक रूप से प्रभावित भी करता है।

ज्ञान अर्जन के साधन

परम्परा एवं रुढियाँ –

वह ज्ञान जो हम बिना तर्क के सिर्फ इस लिए स्वीकार करते हैं कि वह लोक परम्परा से चली आ रही है। यह माना हुआ ज्ञान है।

प्राधिकार ज्ञान या आप्त ज्ञान –

वह ज्ञान जो किसी आप्त पुरुष/व्यक्ति/संस्था/ग्रन्थ द्वारा सिद्ध एवं प्रदत्त है जिसपर हम सामान्यतया प्रश्न खड़ा नहीं करते क्योंकि वह भी हमारी आस्था व विश्वास से जुड़ा हुआ है।

अंतर्दृष्टि या अंतर्सुझ –

यह ज्ञान पूरी तरह से आतंरिक अनुभवों पर आधारित होता है।

इन्द्रियानुभव –

इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान।

बुद्धि या तर्क पूर्ण ज्ञान –

वह ज्ञान जो तर्क द्वारा सिद्ध होता हो परन्तु यह जरुरी नहीं है कि वह इन्द्रियों द्वारा भी अनुभूत हो।

वैज्ञानिक ज्ञान –

वह ज्ञान जो इन्द्रियानुभव तथा तर्क दोनों द्वारा सिद्ध होता हो यही ज्ञान सही ज्ञान है।

क्रियाकलाप

निम्न साधनों की पहचान करें कि क्या ये ज्ञान के सृजन में सहायक है?

क्या ये कार्य ज्ञान के साधन है या नहीं?

1. आपके बच्चें जब शिक्षायी भ्रमण पर जाते हैं।
2. संकुल स्तर पर भाषण प्रतियोगिता का आयोजन
3. अन्तर विद्यालय वाद–विवाद प्रतियोगिता
4. राज्य स्तरीय विज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन
5. विद्यालय के पोषक क्षेत्र का सर्वेक्षण
6. गणित मेला का आयोजन
7. विद्यालय में होने वाली खेल कूद प्रतियोगिता
8. विद्यालय में सास्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन
9. कला के माध्यम से वस्तुओं का निर्माण

10. क्वीज, परियोजना कार्य में समावेशन

- अपने उत्तरों को चार्ट पेपर पर लिख कर बडे समूह में चर्चा करें एवं उभरे हुए विन्दुओं का समेकन कर उसका अभिलेखीकरण करें।
- उपर के चयनित साधनों को आधार मानते हुए बताएँ कि क्या आप अपने शिक्षण प्रक्रिया में इन बातों का ध्यान रखेंगे?
- दिए गए विभिन्न कार्यो में से किन्हीं दो का सर्वेक्षण कर अपना प्रतिवेदन आई.सी.टी. की मदद से तैयार करें. आप सीडी बना सकते हैं।
- अपने आसपास के विद्यालय में इन गतिविधियों के आयोजन हेतु एक कार्य योजना तैयार कर उसका आयोजन करें एवं समुदाय/बच्चों/अभिभावकों से प्राप्त विचारों को संकलित कर अपने सहयोगियों के विचार जानें।

समेकन तथा सीखने–सिखाने में सहयोगी ई–संसाधन

इस इकाई के माध्यम से हमने शिक्षा और ज्ञान के विविध आयामों के बारे में जाना–समझा। हमने यह समझा की शिक्षा एक परिवर्तनीय अवधारणा है। अब, बदलते हुए शिक्षायी परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है कि शिक्षक एक ऐसे स्वतंत्र माहौल का निर्माण करें जहाँ बच्चे ज्ञान का सृजन स्वयं कर सकें, अपने अनुभवों को एक नई दिशा दे सकें एवं जीवन की चुनौतियों से जुझने के लिए अपने आप को तैयार कर सकें। साथ ही, यह आवश्यक है कि शिक्षक भी शिक्षा और ज्ञान की संकल्पनाओं को व्यापक रूप से समझे और उनके पीछे जो सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक या ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य है, उनका विश्लेषण करें।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें :

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी./ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।
- इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, इत्यादि।

मूल्यांकन

1. अपने अनुभवों के आधार पर यह विश्लेषण करें कि क्या शिक्षा के उद्देश्य बदलते रहते हैं? आपके अनुसार, वर्तमान शिक्षा की व्यवस्था में क्या–क्या बदलाव आने चाहिए।
2. शिक्षा के क्षेत्र में आ़ने वाला बदलाव सामाजिक परिवर्तन का प्रतिबिम्ब हैं, कैसे?
3. शिक्षा और दर्शन के आपसी सम्बंधों का विश्लेषण करें?
4. क्या शिक्षा के अतीत में जो विकास हुए हैं, वर्तमान शिक्षा में उनकी क्या छवि समाहित है, इसका विश्लेषण करें।
5. शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या में शिक्षा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों को शामिल करना क्यों आवश्यक है?
6. उपेक्षित समुदाय से आनेवाले बच्चों के संदर्भ में शिक्षा और ज्ञान की क्या अवधारणा होनी चाहिए, विश्लेषण करें।
7. आप जब सीखने की योजना बनाएंगे उसमें किस–किस प्रकार के ज्ञान को आपने सम्बोधित किया है, इसकी समीक्षा करें।
8. ऐसी कहानी या घटनाओं को खोजे जिसमें ज्ञान के विभिन्न रूपों का उपयोग किया गया हो और उसे अपने सहयोगियों से बाँटे।
9. शिक्षा की अवधारणा, उद्देश्य एवं प्रकृति को स्पष्ट करें।
10. शिक्षा के विभिन्न आधारों पर प्रकाश डालें।
11. ज्ञान की अवधारणा एवं प्रकृति को स्पष्ट करें।
12. ज्ञान को प्राप्त करने की क्या–क्या विधियाँ होती है?

इकाई 4

भारतीय चिंतकों के मौलिक लेखन की शिक्षाशास्त्रीय समझ

परिचय

शिक्षा एक विकासशील प्रक्रिया है, जिसका समाज के विभिन्न आयामों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। साथ ही समाज भी कई प्रकार से शिक्षा के स्वरूप व प्रकृति को निरन्तर प्रभावित करता रहता है। एक प्रकार से समाज अपनी परिस्थिति, संदर्भ एवं विचारधारा के अनुसार शिक्षा की संरचना को निर्धारित करता है। इसी संदर्भ में विभिन्न समयों में कई शिक्षाविचारकों ने अपने समाज की आवश्यकता व परिस्थिति के आधार पर निर्मित विचारधारा के अनुसार शिक्षा के स्वरूप को गढ़ने का प्रयास किया, जिसने न सिर्फ समाज में शिक्षा के प्रति नजरिए को प्रभावित किया बल्कि शिक्षा को समझने के नए दृष्टिकोणों का विकास भी किया। इन नए दृष्टिकोणों ने समाज के शिक्षा संबंधी प्रक्रिया को संवर्द्धित किया जिसका प्रभाव विद्यालय, पाठ्यचर्या, शिक्षक एवं विद्यार्थी की तैयारी पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से पड़ता आ रहा है। इन सब की बुनियादी समझ शिक्षक को उसकी अकादमिक एवं व्यावसायिक (पेशागत) परिस्थितियों एवं सन्दर्भो को समझने में मदद पहुँचाती है और उसका उत्साह बढ़ाती हैं। इस इकाई का विशेष प्रयोजन भारतीय शिक्षा की विरासत से कुछ महत्वपूर्ण चिंतकों एवं शिक्षायी क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों के मौलिक रचनाओं से प्रशिक्षुओं का परिचय करवाना है ताकि शिक्षा के प्रति उनके विभिन्न दृष्टिकोणों की समझ प्रशिक्षु स्वयं ही बना पाएं।

इस इकाई की मूल सामग्री निम्नलिखित पुस्तकें एवं लेख हैं। अतः इस इकाई की शुरूआत करने के लिए यह अनिवार्य है कि सभी प्रशिक्षुओं और सम्बंधित साधनसेवी के पास निम्नलिखित पुस्तकें एवं लेख अवश्य हों।

1. **हिन्द–स्वराज** : महात्मा गांधी द्वारा रचित
2. **दिवास्वप्न** : गिजू भाई बधेका द्वारा रचित
3. **ग्रहणशील मन** : मारिया मांटेसरी द्वारा रचित
5. **शिक्षा** : रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित
5. **शिक्षा और लोकतंत्र** : जॉन डिवी द्वारा रचित
6. **डॉ0 जाकिर हुसैन**, **ज्योतिबा फुले** एवं **जे0 कृष्णमूर्ति** के चयनित लेख

आगे इस इकाई में जो विवरण दिया जा रहा है वह केवल उपरोक्त रचनाओं को कैसे समझा एवं विश्लेषित किया जाए, के दिशाबोध मात्र के लिए है।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप उल्लेखित शिक्षा विचारकों व उनकी रचनाओं की पृष्ठिभूमि से अवगत होने के साथ–साथ रचनाओं में शामिल दृष्टिकोण और संदर्भ में विमर्श के बिन्दुओं की समझ विकसित कर सकेंगे। साथ ही रचनाओं में वर्णित विभिन्न मुद्दों के संदर्भ में लेखकों के दृष्टिकोण एवं उनके माध्यम से उभरे शैक्षिक विचारों को समकालीन शिक्षा के संदर्भ में उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे।

पूर्व अनुभव

अपने कई साहित्य रचनाओं जैसे पुस्तक, नॉवेल, अखबार के आलेख, बाल सहित्य, आदि को पढ़ा होगा, जिसके आधार पर किसी पुस्तक को पढ़ने–समझने का एक नज़रिया आपके पास अवश्य होगा। इस इकाई के माध्यम से उस नज़रिए को और पैनी एवं शैक्षिक दृष्टिकोण से समृद्ध करने की कोशिश की जाएगी।

हिन्द स्वराज (महात्मा गाँधी): सामाजिक दर्शन और शिक्षा के संबंध में

इकाई का यह भाग महात्मा गांधी द्वारा रचित पुस्तक हिन्द स्वराज पर केन्द्रित है। पुस्तक के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से थोड़ा अवगत हो जाया जाए। लेखक के विचारों से विशेष परिचय मूल कृति के पठन के दौरान प्रशिक्षुओं को स्वतः ही हो जाएगा। आगे के उपखण्डों में लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से परिचय के उपरांत पुस्तक को समझने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित करने हेतु विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं पर सोदाहरण चर्चा की गयी है। आगामी दो उपखण्डों के स्वाध्याय के साथ–साथ आपको मूल रचना (हिन्द स्वराज) अनिवार्यतः पढ़नी है।

लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से परिचय

गाँधी जी के विचारों में शिक्षा ही नहीं बल्कि जीवन का समग्र दर्शन तलाशा जा सकता है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से शिक्षा गाँधी के प्रमुख सरोकारों में हमेशा शामिल रही तथा उनके राजनीतिक कार्ययोजना का अभिन्न अंग भी रही है। इस इकाई में उनके सामाजिक–दर्शन और शिक्षा–सम्बन्धी विचार, जो उन्होने 'हिन्द–स्वराज' नामक पुस्तक में व्यक्त किये हैं, पर जोर दिया गया है।

'हिन्द–स्वराज' गाँधी जी द्वारा 1909 में लिखी गई एक रचना है। यह पुस्तक उन्होंने इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका लौटते समय लिखी थी। इंग्लैंड से वापस लौटते समय उन्होंने उस समय के विभिन्न घटनाओं व परिस्थितियों पर गहन चिंतन करते हुए अपने विचारों को एक पुस्तक 'हिन्द–स्वराज' के नाम से लिखा।

पुस्तक की समीक्षात्मक समझ हेतु विमर्श के बिन्दुओं को निर्मित करना

हिन्द स्वराज पुस्तक को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले पुस्तक के प्रति लेखक के दृष्टिकोण को समझा जाय। इसके लिए आप नीचे दिए उद्धरण को पढ़े जिसमें महात्मा गांधी ने इस पुस्तक के अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। पुस्तक में लेखक द्वारा लिखे गए आमुख को भी आप अवश्य पढ़े।

'हिंद स्वराज' के बारे में

मेरी इस छोटी सी किताब की ओर विशाल जनसंख्या का ध्यान खिंच रहा है, यह सचमुच ही मेरा सौभाग्य है। यह मूल तो गुजराती में लिखी गई है। इसका जीवन–क्रम अजीब है। यह पहले–पहल दक्षिण अफ्रीका में छपनेवाले साप्ताहिक 'इंडियन ओपीनियन' में प्रकट हुई थी। 1909 में लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए जहाज पर हिंदुस्तानियों के हिंसावादी पंथ को और उसी विचारधारावाले दक्षिण अफ्रीका के एक वर्ग को दिए गए जवाब के रूप में यह लिखी गई थी। लंदन में रहनेवाले हर एक नामी अराजकतावादी हिंदुस्तानी के संपर्क में मैं आया था। उसकी शूरवीरता का असर मेरे मन पर पड़ा था, लेकिन मुझे लगा कि उनके जोश ने उल्टी राह पकड़ ली है। मुझे लगा कि हिंसा हिंदुस्तान के दुःखों का इलाज नहीं है और उसकी संस्कृति को देखते हुए उसे आत्मरक्षा के लिए कोई अलग और ऊँचे प्रकार का शस्त्र काम में लाना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह उस वक्त मुश्किल से दो साल का बच्चा था। लेकिन उसका विकास इतना हो चुका था कि उसके बारे में कुछ हद तक आत्मविश्वास से लिखने की मैंने हिम्मत की थी। मेरी यह लेखमाला पाठक–वर्ग को इतनी पसंद आई कि वह किताब के रूप में प्रकाशित की गई। हिंदुस्तान में उसकी ओर लोगों के कुछ ध्यान गया। बंबई सरकार ने उसके प्रचार की मनाही कर दी। उसका जवाब मैंने किताब का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करके दिया। मुझे लगा कि अपने अंग्रेज मित्रों को इस किताब के विचारों से वाकिफ करना उनके प्रति मेरा फर्ज है।

मेरी राय में यह किताब ऐसी है कि यह बालक के हाथ में भी दी जा सकती है। यह द्वेष–धर्म की जगह प्रेम–धर्म सिखाती है; हिंसा की जगह आत्म–बलिदान को रखती है; पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है। इसकी अनेक आवृत्तियाँ हो चुकी है; और जिन्हें इसे पढ़ने की परवाह है, उनसे इसे पढ़ने की मैं जरूर सिफारिश करूँगा। इसमें से मैंने सिर्फ एक ही शब्द और वह एक महिला मित्र की इच्छा को मानकर रद्द किया है; इसके सिवा और कोई फेरबदल मैंने इसमें नहीं किया है।

इस किताब में 'आधुनिक सभ्यता' की सख्त टीका की गई है। यह 1909 में लिखी गई थी। इसमें मेरी जो मान्यता प्रकट की गई है, वह आज पहले से ज्यादा मजबूत बनी है। मुझे लगा है कि अगर हिंदुस्तान 'आधुनिक सभ्यता' का त्याग करेगा, तो उससे उसे लाभ ही होगा।

लेकिन मैं पाठकों को एक चेतावनी देना चाहता हूँ। वे ऐसा न मान लें कि इस किताब में जिस स्वराज की तस्वीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज कायम करने के लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जानता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। ऐसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है इसमें जिस स्वराज्य की तस्वीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज पाने की मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आज मेरी सामूहिक प्रवृत्ति का ध्येय तो हिंदुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेंटरी ढंग का स्वराज पाना है। रेलों या अस्पतालों का नाश करने का ध्येय मेरे मन में नहीं है, अगर उनका कुदरती नाश हो तो मैं जरूर उसका स्वागत करूँगा। रेल या अस्पताल दोनों में से एक भी ऊँची और

बिलकुल शुद्ध संस्कृति की सूचक (चिह्न) नहीं है। ज्यादा–से–ज्यादा इतना ही कह सकते हैं कि यह एक ऐसी बुराई है, जो टाली नहीं जा सकती। दोनों में से एक भी हमारे राष्ट्र की नैतिक ऊँचाई में एक इंच की भी बढ़ोतरी नहीं करती। उसी तरह मैं अदालतों के स्थायी नाश का ध्येय मन में नहीं रखता, हालाँकि ऐसा नतीजा आए तो मुझे अवश्य बहुत अच्छा लगेगा। यंत्रों और मिलों के नाश के लिए तो मैं उससे भी कम कोशिश करता हूँ। उसके लिए लोगों की आज जो तैयारी है, उससे कहीं ज्यादा सादगी और त्याग की जरूरत रहती है।

इस पुस्तक में बताए हुए कार्यक्रम के एक ही हिस्से का आज अमल हो रहा है–वह है अहिंसा। लेकिन मैं अफसोस के साथ कबूल करूँगा कि उसका अमल भी इस पुस्तक में दिखाई हुई भावना से नहीं हो रहा है। अगर हो तो हिंदुस्तान एक ही रोज में स्वराज पा जाए। हिंदुस्तान अगर प्रेम के सिद्धांत को अपने धर्म के एक सक्रिय अंश के रूप में स्वीकार करे और उसे अपनी राजनीति में शामिल करे, तो स्वराज स्वर्ग से हिंदुस्तान की धरती पर उतरेगा। लेकिन मुझे दुःख के साथ इस बात का भान है कि ऐसा होना बहुत दूर की बात है।

ये वाक्य मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि आज के आंदोलन को बदनाम करने के लिए इस पुस्तक में से बहुत सी बातों का हवाला दिया जाता, मैंने देखा है। मैंने इस मतलब के लेख भी देखे हैं कि मैं कोई गहरी चाल चल रहा हूँ, आज की उथल–पुथल से लाभ उठाकर अपने अजीब खयाल भारत के सिर लादने की कोशिश कर रहा हूँ और हिंदुस्तान को नुकसान पहुँचाकर अपने धार्मिक प्रयोग कर रहा हूँ। इसका मेरे पास यही जवाब है कि सत्याग्रह ऐसी कोई कच्ची खोखली चीज नहीं है। उसमें कुछ भी दुराव–छिपाव नहीं है, उसमें कुछ भी गुप्तता नहीं है। 'हिंद स्वराज' में बताए हुए संपूर्ण जीवन सिद्धांत के एक भाग को आचरण में लाने की कोशिश हो रही है, इसमें कोई शक नहीं। ऐसा नहीं कि उस समूचे सिद्धांत का अमल करने में जोखिम है; लेकिन आज देश के सामने जो प्रश्न हैं, उसके साथ जिन हिस्सों का कोई संबंध नहीं है, ऐसे हिस्से में लेखों में से देकर लोगों को भड़काने में न्याय हरगिज नहीं है।

–मोहनदास करमचंद गांधी (जनवरी, 1921, 'यंग इंडिया' के गुजराती अनुवाद से)

आप उपरोक्त उद्धरण एवं पुस्तक में दिए गए आमुख के आधार पर उसके विषयवस्तु का अनुमान लगा सकते हैं। अब आप पुस्तक के विषयसूची में दिए गए विभिन्न अध्यायों के शीर्षकों को देखें तथा उन अध्यायों के पठन के दौरान यह विश्लेषित करें कि उनके माध्यम से किन–किन मुद्दों को उठाया गया है तथा उनका शिक्षा से क्या जुड़ाव है। उदारहण के तौर पर इस पुस्तक के कुछ अंश आगे दिये जा रहे हैं तथा उसमें प्रमुखता से उठाए गए विमर्श के बिन्दुओं को आगे दिया जा रहा है ताकि इस माध्यम से आप यह समझ सकें कि पुस्तक के विषयवस्तुओं पर आप किन–किन दृष्टिकोणों से समीक्षात्मक चिंतन कर सकते हैं।

'हिन्द स्वराज' पुस्तक का एक अंश (अठारवां अध्यायः 'शिक्षा' से) –

पाठक : अगर ऐसा ही है, तो मैं आपसे एक सवाल करूंगा। आप ये जो सारी बातें कह रहे हैं, वह किसकी बदौलत कह रहे हैं? अगर आपने अक्षर–ज्ञान और ऊँची शिक्षा नहीं पाई होती, तो ये सब बातें आप मुझे कैसे समझा पाते?

संपादक : आपने अच्छी सुनाई। लेकिन आपके सवाल का मेरा जवाब भी सीधा ही है। अगर मैंने ऊँची शिक्षा नहीं पाई होती, तो मैं नहीं मानता कि मैं निकम्मा आदमी हो जाता। अब ये बातें कहकर मैं उपयोगी बनने की इच्छा रखता हूँ। ऐसा करते हुए जो कुछ मैंने पढ़ा उसे मैं काम में लाता हूँ और उसका उपयोग अगर हो तो, मैं अपने करोड़ों भाईयों के लिए, नहीं कर सकता, सिर्फ आप जैसे पढ़े–लिखों के लिए ही कर सकता हूँ। इससे भी मेरी ही बात का समर्थन होता है। मैं और आप दोनों गलत शिक्षा के पंजे में फँस गए थे। उसमें से मैं अपने को मुक्त हुआ मानता हूँ। अब वह अनुभव मैं आपको देता हूँ और उसे देते समय ली हुई शिक्षा का उपयोग करके उसमें रही सड़न मैं आपको दिखाता हूँ। इसके सिवा, आपने जो बात मुझे सुनाई उसमें आप गलती खा गये क्योकि मैंने अक्षर–ज्ञान को (हर हालत में) बुरा नहीं कहा है। मैंने तो इतना ही कहा है कि उस ज्ञान की हमें मूर्ति की तरह पूजा नहीं करनी चाहिए। वह हमारी कामधेनु नहीं है। वह अपनी जगह पर शोभा दे सकता है। और वह जगह यह है। जब मैंने और आपने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया हो, जब हमने नीति की नींव मजबूत बना ली हो, तब अगर हमें अक्षर–ज्ञान पाने की इच्छा हो, तो उसे पाकर हम उसका अच्छा उपयोग कर सकते हैं। यह शिक्षा आभूषण के रूप में अच्छी लग सकती है। लेकिन अक्षर ज्ञान का अगर आभूषण के तौर पर ही उपयोग हो, तो ऐसी शिक्षा को लाजमी करने की हमें जरूरत नहीं। हमारे पुराने स्कूल ही काफी है वहाँ नीति को पहला स्थान दिया जाता है। वह सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। उस पर हम जो इमारत खड़ी करेंगे वह टिक सकेगी।

विमर्श के बिन्दुः

हिन्द स्वराज के इस अंश में विमर्श के कई महत्वपूर्ण बिन्दुओं हो सकते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख बिन्दु इस प्रकार से हैं :

- शिक्षा की वास्तविक संकल्पना क्या होनी चाहिए, क्या यह अक्षर ज्ञान अथवा उच्च औपचारिक शिक्षा तक ही सीमित होनी चाहिए?
- क्या औपचारिक शिक्षा के बिना व्यक्ति को शिक्षित नहीं माना जा सकता?
- क्या वैसे ज्ञान का प्रसार जिसकी कोई उपयोगिता न हो, को शिक्षा माना जा सकता है?
- उपरोक्त प्रसंगों पर लेखक ने अपने पुस्तक में चर्चा क्यों की है। क्या उस समय इसका विशेष महत्व था?
- वर्तमान शिक्षायी संदर्भ में हिन्द स्वराज पुस्तक की क्या प्रासंगिकता है?

इस प्रकार जब आप 'हिन्द स्वराज' पुस्तक को पढ़े तो उसमें दी गई चर्चाओं में से विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं को निकाले और उनपर स्वयं विचार करें। आप यह पाएंगे कि विमर्श के बिन्दुओं को चिह्नित करने के दौरान ही आप स्वयं ही कई प्रकार के विश्लेषण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। साथ ही आप उनके आधार पर समीक्षात्मक चिंतन के प्रक्रिया से भी गुजर रहे हैं।

क्रियाकलाप

- पुस्तक हिन्द स्वराज के विभिन्न अध्यायों में संवाद के माध्यम से उठाए गए विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं की सूची बनाए। फिर यह विश्लेषित करें कि क्या वे विमर्श के बिन्दु आपस में भी जुड़े हुए हैं। उनमें से वैसे बिन्दुओं को चिह्नित करें जो शिक्षा से सीधे सरोकार रखती हों।
- यदि हिन्द स्वराज को आज पुनः लिखा जाए तो आप इस पुस्तक में संवाद के माध्यम से और किन–किन मुद्दों को जोड़ना चाहेंगे, सूची बनाएं तथा कुछ मुद्दों को लेते हुए संवाद को भी लिखें।

दिवास्वप्न (गिजू भाई बधेका) : शिक्षा प्रयोग के विचार को रेखांकित करते हुए

इकाई का यह भाग गिजुभाई बधेका द्वारा रचित पुस्तक 'दिवास्वप्न' पर केन्द्रित है। पुस्तक के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से थोड़ा अवगत हो जाया जाय। लेखक के विचारों से विशेष परिचय मूल कृति के पठन के दौरान प्रशिक्षुओं को स्वतः ही हो जाएगा। आगे के उपखण्डों में लेखक एवं पुस्तक के पृष्ठभूमि से परिचय के उपरांत पुस्तक को समझने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित करने हेतु विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं पर सोदाहरण चर्चा की गयी है। आगामी उपखण्ड के स्वाध्याय के साथ साथ आप मूल रचना को पढ़े।

लेखक एवं पुस्तक के पृष्ठभूमि से परिचय

आइए अब हम दिवास्वप्न के लेखक एवम् शिक्षक गिजुभाई बधेका से परिचित होते हैं। गिजुभाई बधेका का जन्म 15 नवम्बर, 1885 को गुजरात में हुआ था। यह मुलतः उच्च न्यायालय में वकालत करते थे। गिजुभाई की बच्चों से संबंधित साहित्य एवम् गंभीर लेखन को पढ़ने में विशेष रूचि होने कारण उन्होने 'मांटेसरी मदर' नामक पुस्तक पढा जिसका उन पर विशेष प्रभाव पड़ा।

दिवास्वप्न पुस्तक सबसे पहले 1932 में गुजराती में प्रकाशित हुई। दिवास्वप्न एक ऐसे शिक्षक की काल्पनिक कथा है जो शिक्षा की दकियानूसी संस्कृति को नहीं स्वीकारता और परंपरा व पाठ्यपुस्तकों की सचेत अवेहलना करके बच्चों के प्रति सरस और प्रयोगशील बना रहता है।

पुस्तक के समीक्षायी समझ हेतु विमर्श के बिन्दुओं को निर्मित करना

इस पुस्तक को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले पुस्तक के प्रति लेखक के दृष्टिकोण को समझा जाय। इसके लिए आप पुस्तक में लेखक द्वारा लिखे गए आमुख को भी अवश्य पढ़े।

अब आप पुस्तक के विभिन्न अध्यायों के पठन के दौरान यह विश्लेषित करें कि उनके माध्यम से किन–किन मुद्दों को उठाया गया है तथा उनका शिक्षा से क्या जुड़ाव है।

उदारहण के तौर पर इस पुस्तक के कुछ अंश आगे दिये जा रहे हैं तथा उसमें प्रमुखता से उठाए गए विमर्श के बिन्दुओं को आगे दिया जा रहा है ताकि इसके माध्यम से आप यह समझ सकें कि पुस्तक के विषयवस्तुओं पर आप किन किन दृष्टिकोणों से समीक्षात्मक चिंतन कर सकते हैं।

'दिवास्वप्न' पुस्तक का अंश

मैंने देखा कि इन लड़कों को मुझे पढ़ाना था! इन मसखरे, ऊधमी, ऐंठबाज और विचित्र लड़कों को! मन थोड़ा डर सा गया, छाती भी धड़क गई, लेकिन फिर सोचा–परवाह नहीं, धीरे–धीरे देख लूँगा।

मैं रात नोट की हुई बातें जेब से निकाल कर देखने लगा। लिखा था– पहले शान्ति का खेल, फिर कक्षा की सफाई की जाँच, फिर सहगान, फिर वार्तालाप इत्यादि।

मैंने लड़कों से कहा– 'आओ, हम शान्ति का खेल खेलें। देखो, मै जब 'ओम् शान्तिः' कहूँ, तुम सब चुपचाप बैठ जाना। बराबर पालथी मारकर बैठना। देखना, कोई हिलना–डुलना तक नहीं। फिर मैं खिड़कियाँ बंद करूंगा तो हर तरफ अंधेरा होगा। तुम सब शान्त रहना। तुम्हें आसपास का कोलाहल सुनाई देगा। उसको सुनने में बड़ा मज़ा आएगा। मक्खियों की भिनभिनाहट सुनाई पड़ेगी। अपने सांसों की आवाज भी सुनाई पड़ेगी। फिर मै गाऊंगा और तुम सब चुपचाप सुनना।'

इतना कह चुकने के बाद मैंने शान्ति का खेल शुरू किया। मैं 'ओम् शान्तिः' बोला, लेकिन लड़के तो धक्का–मुक्की और बातों में लगे थे। दो–चार बार बोला, लेकिन मानो मेरी आवाज किसी को सुनायी ही न दी हो जैसे! मैं मन ही मन सकपकाया। यह कैसे कहता कि 'चुप रहो! गड़बड़ मत करो!' तमाचा मारकर डराता भी कैसे? खैर, मैं आगे बढ़ा और खिड़कियाँ बन्द कर दीं। अंधेरा हुआ और ध्यान (?) चला। लड़कों में से कोई 'ऊँ–ऊँ' करने लगा, कोई 'हाऊ–हाऊ' करने लगा, तो कोई 'धम–धम' पैर पटकने लगा। इतने में एक ने ताली बजाई और सब ताली बजाने लगे। फिर कोई हँसा और हँसी उड़ने लगी। मैं खिसिया गया। मुँह फीका पड़ गया। मैंने खिडकियाँ खोल दीं और थोड़ी देर कमरे से बाहर जाकर वापस आया। सारी कक्षा ऊधम मचाने में लगी थी। लड़के एक–दूसरे से 'ओम् शान्तिः' कह रहे थे। कुछ खड़े होकर ही खिड़कियाँ बन्द कर रहे थे।

मैंने सोचा–मेरे ये नोट्स बेकार हैं। घर में बैठे–बैठे अटकलें लगाना और कल्पना में पढ़ा लेना सहज था, लेकिन यह तो लोहे के चने चबाने जैसा है। जो अब तक कोलाहल और ऊधम में ही पले हैं, उनके सामने शान्ति का खेल अभी तो भैंस के सामने बीन बजाने के समान है। लेकिन चिन्ता नहीं। अच्छा ही हुआ कि पहले ही कौर में मक्खी आ गयी। कल से अब नया काम आरम्भ करूँगा।

विमर्श के बिन्दुः

- सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को पहले से किस हद तक योजनाबद्ध किया जा सकता है?
- क्या सीखने की प्रक्रिया को पूर्णरूप से शिक्षक के द्वारा संचालित किया जाना चाहिए?

- क्या सीखना सिर्फ शांत होकर हो सकता है अथवा शोर में भी सीखने की कई संभावनाए हैं?
- उपरोक्त मुद्दे आज के शिक्षण की चुनौतियों से किस प्रकार से जुड़े हए हैं?

क्रियाकलाप

दिवास्वप्न के विभिन्न प्रयोगों को ध्यान में रखते हुए आप कुछ सीखने की योजनाओं को तैयार करें जिसमें उन प्रयोगों को फिर से परखने और उपयोग करने का अवसर हों।

इस प्रकार जब आप 'दिवास्वप्न' पुस्तक को पढ़े तो उसमें दी गई चर्चाओं में से विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं को निकाले और उनपर स्वयं विचार करें। उन विमर्श के बिन्दुओं को समकालीन समाज के संदर्भ में विश्लेषित करें। शिक्षणशास्त्र के दृष्टिकोण से इस पुस्तक के प्रयोगों की समीक्षा भी करें।

पुस्तक 'दिवास्वप्न' को पढ़ने के पश्चात कक्षा की निम्नलिखित स्थितियों पर विचार करें

कक्षा स्थिति–1	कक्षा स्थिति–2
मोहनलाल अपने गांव के प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक है। इनका मानना है कि अच्छी पढ़ाई का मतलब बच्चों का अच्छे अंकों के साथ उतीर्ण होना है। इनकी कक्षा के बच्चे इनसे बहुत डरते है। इनका मानना है कि पाठ्य–पुस्तक आधारित शिक्षण विधि श्रेष्ठ होती हैं। मोहनलाल के अनुसार बच्चों में शिक्षक के प्रति आदर एवम् डर का होना बहुत जरूरी है। बच्चों के विकास के लिये शारीरिक एवं मानसिक दंड आवश्यक है। खेल, संगीत, और मनोरंजन को वह समय की बरबादी मानते हुए मात्र औपचारिकतायें पुरी करते हैं। मोहनलाल बच्चों के फेल होने का जिम्मेवार खुद उन्हें और उनके अभिभावक को मानते हुये अपने शिक्षण शैली के मूल्यांकन से पीछा छुड़ा लेते हैं।	मोहसिना एक प्राथमिक शिक्षिका है। वह बच्चों की रूचि व उनकी पसंद के हिसाब से पाठ योजना बनाती है। वह बच्चों के खुद से सिखने में विश्वास रखती है। वह किताबी ज्ञान से ज्यादा सामाजिक एवं व्यवहारिक ज्ञान को आवश्यक मानती हैं। वह बच्चों को कहानियों, खेलों, व मनोरंजक गतिविधियों द्वारा सिखाती हैं, सो बच्चे उसे आदर के साथ–साथ पसंद भी करते हैं। वह परीक्षा को एक शिक्षण गतिविधि के रूप में इस्तेमाल करती हैं जिससे बच्चे बिना डरे मजे से परीक्षा देने को तैयार रहते हैं। बच्चों के ना सिखने को वह अपनी समस्या मानकर अपनी शिक्षण शैली का मुल्याकंन करती है। वास्तव में वह खुद यह सीखने का प्रयास करती है कि बच्चे कैसे और कितनी आसानी से बेहतर सीख सकते हैं। वह अभिभावकों के बात कर सहयोग के लिये प्रेरित व जागृत करती हैं।

उपरोक्त दो भिन्न तालिकाओं में दी गई स्थितियों को ध्यान से पढ़ें तथा निम्न प्रश्नों पर विचार करें

- मोहसिना की कक्षा में अध्ययन अध्यापन की क्या विशेषताएं हो सकती हैं, इसको चिन्हित करें। अपनी कक्षा के शिक्षणशास्त्र को भी उसी तर्ज पर निर्मित करें तथा कक्षा में विद्यार्थियों के गतिविधियों का अवलोकन करें।
- उपरोक्त दोनो प्रकार के परिस्थितियों में बच्चों के सीखने–सिखाने पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है, इसका विश्लेषण करें। किस परिस्थिति को आप शिक्षण अधिगम के लिए बेहतर मानते हैं।

रविंद्रनाथ टैगोर (शिक्षा): सीखने में स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता की भूमिका को रेखांकित करते हुए

इकाई का यह भाग रविंद्रनाथ टैगोर द्वारा रचित पुस्तक 'शिक्षा' पर केन्द्रित है। पुस्तक के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से थोड़ा अवगत हो जाया जाय। बाकि, लेखक के विचारों से विशेष परिचय मूल कृति के पठन के दौरान प्रशिक्षुओं को स्वतः ही हो जाएगा। आगे के उपखण्डों में लेखक एवं पुस्तक के पृष्ठभूमि से परिचय के उपरांत पुस्तक को समझने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित करने हेतु विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं पर सोदाहरण चर्चा की गयी है। आगामी उपखण्ड के स्वाध्याय के साथ साथ आप मूल रचना को पढ़े।

लेखक एवं पुस्तक के पृष्ठभूमि से परिचय

हम सभी रविंद्रनाथ टैगोर को एक कवि, दार्शनिक, कलाकार, ब्रह्म समाज के नेता और नोबेल पुरस्कार विजेता के तौर पर जानते हैं। बचपन से हमने उनके द्वारा लिखी बहुत सारी कहानियाँ और उपन्यास पढ़ा है। इनकी अनेक लिखित रचनाओं की तरह "शान्ति निकेतन" इनकी कल्पनाओं का मूर्त रूप है जहाँ उन्होंने अपने सपनों को साकार किया था। इस संस्थान को देख कर आप इनके सारे सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप से समझ सकते हैं जैसे स्वयं करके सीखना, प्रकृति की गोद में रह कर अपने अनुभवों से सीखना, विद्यालयी गतिविधियों में प्रार्थना, साधना, संगीत, नृत्य इत्यादि के माध्यम से सीखना।

पुस्तक "शिक्षा" में इनके द्वारा रचित चार लेख संकलित हैं। पहले लेख **'शिक्षा में हेर–फेर'** में वे शिक्षा में पाई जाने वाली विसंगतियों की चर्चा करते हैं। दूसरे लेख **'शिक्षा का मिलन'** जो रविन्द्र नाथ टैगोर ने असहयोग आन्दोलन के दिनों में गाँधी जी की शिक्षा सम्बन्धी धारणाओं पर लिखा था। इसमें वे पूर्व तथा पश्चिम की ज्ञान पद्धतियों के मिलन की चर्चा करते हैं। टैगोर का मानना है कि विज्ञान का अध्ययन किये बिना हमारी सामाजिक समस्याओं का समाधान नहीं मिल सकता। इस लेख में टैगोर शिक्षा में अन्धविश्वास की बातों के इस्तेमाल से उत्पन्न खतरों को बताते हैं। तीसरे लेख **'शिक्षा के विस्तार'** में शिक्षा को जन– जन तक पहुचाने के तरीकों की चर्चा की गयी है एवं चौथे लेख **'विश्वविद्यालयों का रूप'** में विश्वविद्यालयों के उद्देश्यों की चर्चा की गई है।

पुस्तक की समीक्षात्मक समझ हेतु विमर्श के बिन्दुओं को निर्मित करना

इस पुस्तक को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले पुस्तक के प्रति लेखक के दृष्टिकोण को समझा जाय। इसके लिए आप पुस्तक में लेखक द्वारा लिखे गए आमुख को भी आप अवश्य पढ़े। अब आप पुस्तक के दिए गए अध्यायों के पठन के दौरान यह विश्लेषित करें कि उनके माध्यम से किन–किन मुद्दों को उठाया गया है तथा उनका शिक्षा से क्या जुड़ाव है। उदारहण के तौर पर इस पुस्तक के कुछ अंश आगे दिये जा रहे हैं तथा उसमें प्रमुखता से उठाए गए विमर्श के बिन्दुओं को आगे दिया जा रहा है ताकि इस माध्यम से आप यह समझ सकें कि पुस्तक के विषयवस्तुओं पर आप किन किन दृष्टिकोणों से समीक्षात्मक चिंतन कर सकते हैं।

'शिक्षा' पुस्तक का अंश (अध्याय 'शिक्षा में हेर–फेर' से)

....बच्चों के हाथ में यदि कोई मनोरंजन की पुस्तक दिखाई पड़ी तो वह फौरन छीन ली जाती है। इसका कारण यही है कि हमारी शिक्षा में बाल्य–काल से ही आनन्द के लिए स्थान नहीं होता है, जो नितान्त आवश्यक है उसी को हम कण्ठस्थ करते है। इससे काम तो किसी तरह चल जाता है लेकिन हमारा विकास नहीं होता। हवा से पेट नही भरता, पेट तो भोजन से ही भरता है। लेकिन भोजन को ठीक से हजम करने के लिए हवा आवश्यक है। वैसे ही शिक्षा पुस्तक को अच्छी तरह पचाने के लिए बहुत सी पाठ्यपुस्तकों की सहायता जरूरी है। आनन्द के साथ पढ़ते रहने से पठन–शक्ति भी अलक्षित रूप् से वृद्विगत हो जाती है सहज स्वाभाविक नियम से ग्रहणशक्ति, धारणशक्ति और चिन्तनशक्ति भी सबल होती है। ....हमारी शिक्षा में पढ़ने की क्रिया के साथ–साथ सोचने की क्रिया नहीं होती। हम ढेर का ढेर जमा करते है कुछ निर्माण नहीं करते। ऐसा बिलकुल भी नहीं है कि यदि संग्रह करना सीख लिया जाए तो निर्माण करना भी सीख लिया जाता है। ....सग्रहणीय वस्तु हाथ आते ही उसका उपयोग जानना, उनका प्रदत परिचय प्राप्त करना, और जीवन के साथ–ही–साथ जीवन का आश्रय स्थल बनाते जाना–यही है रीतिमय शिक्षा।

विमर्श के बिन्दु :

पुस्तक 'शिक्षा' के इस अंश में विमर्श के कई बिन्दु हो सकते हैं, उनमें से कुछ प्रमुख विमर्श के बिन्दुओं को उदाहरण के तौर पर आगे दिया जा रहा है।

- क्या मनोरंजन को शिक्षा का भाग होना चाहिए?
- वास्तव में पढ़ना क्या है, बिना चिंतन के पठन–पाठन की क्या कोई उपयोगिता हो सकती है?
- रीतिमय शिक्षा की क्या संकल्पना होनी चाहिए?
- उपरोक्त प्रसंगों पर लेखक ने अपने पुस्तक में चर्चा क्यों की है। क्या उस समय इसका विशेष महत्व था?

इस प्रकार जब आप 'शिक्षा' पुस्तक को पढ़े तो उसमें दी गई चर्चाओं में से विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं को निकाले और उनपर स्वयं विचार करें। उन विमर्श के बिन्दुओं को समकालीन समाज के संदर्भ में विश्लेषित करें, पर साथ ही उस समय को भी ध्यान में रखें जिस कालखण्ड में इस पुस्तक की रचना की गयी थी।

क्रियाकलाप

- पुस्तक 'शिक्षा' के विभिन्न अध्यायों में उठाए गए विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं की सूची बनाए। फिर उन विमर्श के बिन्दुओं के अंतर्सम्बंधों का विश्लेषण करें। उन विमर्श के बिन्दुओं में से वैसे बिन्दुओं को चिन्हित करें जो आप आज के परिदृश्य में विशेष महत्व का मानते हैं।
- इस पुस्तक के उन भागों को चिन्हित करें जिनमें उन मुद्दों पर चर्चा की गयी है, जिसपर हिंद स्वराज में भी चर्चा की गयी है। उन मुद्दों पर गांधी एवं टैगोर के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण करें।

मारिया मांटेसरी (ग्रहणशील मन पुस्तक के 'विकास के क्रम' अध्याय का अंश)

इकाई के इस भाग में मारिया मांटेसरी द्वारा रचित ग्रहणशील मन के तीसरे अध्याय ''विकास के क्रम'' के एक अंश को प्रस्तुत किया गया है। इसके अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से थोड़ा अवगत हो जाया जाय। आगे के उपखण्डों में लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से परिचय के उपरांत पुस्तक को समझने के विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित करने हेतु विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं पर सोदाहरण चर्चा की गयी है। आगामी उपखण्ड के स्वाध्याय के साथ–साथ आप मूल रचना को पढ़े।

लेखक एवं लेखों के पृष्ठभूमि से परिचय

डॉ. मारिया मांटेसरी (1870–1952) अपनी प्रयोगधर्मी शिक्षण पद्धति के लिए जानी जाती हैं। शिक्षण की विधियों और सामग्रियों को लेकर मांटेसरी ने अपनी खोज मूलतः दिव्यांग बच्चों के संदर्भ में की थी। इन बच्चों के साथ अपने कामों में चौंकाने वाली सफलता पाकर मांटेसरी ने सामान्य बच्चों के शिक्षण को नए ढंग से परिभाषित किया।

उनका नया ढंग जिसे गिजुभाई ने भारत की परिस्थितियों में ढालकर आजमाया और लोकप्रिय भी बनाया, दो बातों पर बल देता है, एक बच्चों को समझना और दूसरी वातावरण निर्माण। मांटेसरी की बहुचर्चित पुस्तक **ग्रहणशील मन** इन्हीं दो बिन्दुओं के इर्द–गिर्द घूमते हुए शिक्षक की मानसिक और भौतिक तैयारी का विवेचन करती है। यह पुस्तक डॉ0 मारिया मांटेसरी के उन व्याख्यानों पर आधारित है, जो उन्होंने अहमदाबाद में अपने प्रथम प्रशिक्षण केन्द्र में दिया था। वे द्वितीय महायुद्ध के अंत तक भारत में नजरबंद रहीं और इस नजरबंदी के बाद यह उनका प्रथम प्रशिक्षण केन्द्र था। पुस्तक में लेखिका छोटे बच्चों की उन असाधारण मानसिक क्षमताओं के बारे में बताती हैं , जिनके कारण वह मानव व्यक्तित्व

की सभी विशेषताओं की रचना करता है तथा उन्हें दृढ़ता से स्थापित करता है। यह निर्माण वह अध्यापकों तथा अन्य शिक्षण सामग्रियों की सहायता के बिना करता है।

पुस्तक की समीक्षात्मक समझ हेतु विमर्श के बिन्दुओं को निर्मित करना

इस पुस्तक को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले पुस्तक के प्रति लेखक के दृष्टिकोण को समझा जाय। इसके लिए आप पुस्तक में दिए गये अध्यायों के अध्ययन के दौरान यह चिंतन करें कि उनके माध्यम से किन–किन मुद्दों को उठाया गया है तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से उनका क्या जुड़ाव है। उदारहण के तौर पर इस पुस्तक के कुछ अंश आगे दिये जा रहे हैं तथा उसमें प्रमुखता से उठाए गए विमर्श के बिन्दुओं को आगे दिया जा रहा है ताकि इस माध्यम से आप यह समझ सकें कि पुस्तक के विषयवस्तुओं पर आप किन–किन दृष्टिकोणों से समीक्षात्मक चिंतन कर सकते हैं।

ग्रहणशील मन पुस्तक का अंश (अध्याय– 3 ''विकास के क्रम'' से)

... यह खोज कि बच्चे के दिमाग में स्वयं ग्रहण करने की योग्यता होती है, शिक्षा में एक क्रांति उत्पन्न करती है। अब हमें यह बात समझ में आ जाएगी कि मनुष्य के विकास की प्रथम अवस्था, जिसमें चरित्र का निर्माण होता है, सबसे महत्वपूर्ण क्यों है। बच्चे को, और किसी आयु में इतनी सहायता की आवश्यकता नहीं होती। उसके रचनात्मक कार्य में कोई भी रूकावट उसके द्वारा पूर्णता प्राप्त करने की संभावना को कम करती है। अतः हमें बच्चे की सहायता करनी चाहिए इसलिए नहीं कि वह छोटा असहाय जीव है; वरन इसलिए कि उसके पास विशाल रचनात्मक शक्तियाँ हैं जो इतनी सुकोमल होती हैं कि उन्हें स्नेह तथा सविवेक सुरक्षा की जरूरत होती है। हमें इन्हीं शक्तियों की सहायता करनी है– बच्चों की नहीं, और न ही उसके कमजोरियों की। जब हमारी समझ में यह आ जाएगा कि ये शक्तियाँ उसके अचेतन मस्तिष्क की हैं, जो कार्य द्वारा और संसार के अनुभवों द्वारा चेतन बनेगीं, तभी हमें यह समझ में आएगा कि शिशु का मस्तिष्क हमारे मस्तिष्क से भिन्न है। हमें यह भी समझ में आएगा कि हमारे मौखिक आदेशों का उसपर कोई असर नहीं पड़ता है, और न हम उसके अचेतन से चेतन बनने की प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः हस्तक्षेप कर सकते हैं– यही प्रक्रिया मानवीय क्षमता का निर्माण करती है। तब शिक्षा की समस्त अवधारणा में परिवर्तन आ जाएगा। तब शिक्षा का उद्देश्य बच्चे के जीवन की, तथा मनुष्य के मनोवैज्ञानिक विकास की सहायता करना होगा। तब शिक्षा का अर्थ यह नहीं होगा कि हम अपनी बातें और विचार जबरदस्ती बच्चे पर थोपें।

शिक्षा का यही नया मार्ग है– मस्तिष्क के विकास में उसकी सहायता करना और उसकी शक्तियों तथा क्षमताओं को सुदृढ़ बनाना।

विमर्श के बिन्दु :

- बच्चों के रचनात्मक कार्य में रूकावट के क्या परिणाम हो सकते हैं ?
- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस पुस्तक को आप किस हद तक प्रासंगिक मानते हैं ?
- प्रस्तुत अंश के अन्त में लेखिका द्वारा सुझाये गए शिक्षा के दो नए मार्गों के संदर्भ में साथी शिक्षकों से विमर्श करें।

इस प्रकार जब आप इस पुस्तक को पढ़े तो उसमें दी गई चर्चाओं में से विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं को निकालें और उनपर स्वयं विचार करें। उन विमर्श के बिन्दुओं को बच्चों के सीखने की विशेष पद्धति के संदर्भ में विश्लेषित करें।

क्रियाकलाप

- अपने विद्यालय के शिक्षक–शिक्षिकाओं से पुस्तक में दिए गए विचारों की चर्चा करें तथा इस संदर्भ में उनके मतों को समझें।
- आप अपने द्वारा अपनायी जा रही शिक्षण पद्धति को मांटेसरी पद्धति के कितना करीब मानते हैं? प्रतिवेदन प्रस्तुत करें।
- आपके द्वारा अपनायी जा रही शिक्षण पद्धति एवं मांटेसरी पद्धति में आप क्या–क्या अंतर पाते हैं? तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करें।

जॉन डिवी

(शिक्षा और लोकतंत्र पुस्तक के 'जीवन की आवश्यकता के रूप में 'शिक्षा' अध्याय से)

इकाई के इस भाग में जॉन डिवी द्वारा रचित शिक्षा और लोकतंत्र के पहले अध्याय 'जीवन की आवश्यकता के रूप में शिक्षा' को प्रस्तुत किया गया है। इसके अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से थोड़ा अवगत हो जाया जाय। आगे के उपखण्डों में लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से परिचय के उपरांत पुस्तक को समझने के विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित करने हेतु विमर्श के विभिन्न बिन्दुओं पर सोदाहरण चर्चा की गयी है। आगामी उपखण्ड के स्वाध्याय के साथ–साथ आप मूल रचना को पढ़े।

लेखक एवं लेखों के पृष्ठभूमि से परिचय

महान शिक्षाशास्त्री जॉन डिवी अपने द्वारा प्रतिपादित ''अनुभव के सिद्धान्त'' के लिए विशेष तौर पर जाने जाते हैं। इन्होंने वातावरण तथा बच्चे के बीच होने वाली अंतः क्रिया को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। डिवी ज्ञान, ज्ञान के लिए होता है के विचार पर भरोसा नहीं करते। वे इस विचार को अपने द्वारा प्रतिपादित 'अनुभव के सिद्धान्त ' में वर्णित ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के माध्यम से खारिज करते हैं। वे ज्ञान को काम में आने पर ही सार्थक मानते हैं। डिवी के अनुसार ज्ञान तभी वैध ज्ञान है जब वह व्यवहारिक गतिविधियों में कारगर हो।

कोलंबिया विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान डिवी ने शिक्षा के दार्शनिक आधारों की विशद व्याख्या की और इसके फलस्वरूप उनका शिक्षादर्शन संबंधी ग्रंथ '**डेमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन** में प्रकाशित हुआ। शिक्षा और लोकतंत्र इसी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक के माध्यम से डिवी के प्रगतिशील विचारों का प्रचार हुआ।

पुस्तक की समीक्षात्मक समझ हेतु विमर्श के बिन्दुओं को निर्मित करना

इस पुस्तक को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले पुस्तक के प्रति लेखक के दृष्टिकोण को समझा जाय। इसके लिए आप पुस्तक में दिए गये अध्यायों के अध्ययन के दौरान यह चिंतन करें कि उनके माध्यम से किन–किन मुद्दों को उठाया गया है तथा शिक्षा से उनका क्या जुड़ाव है। उदारहण के तौर पर इस पुस्तक के कुछ अंश आगे दिये जा रहे हैं तथा उसमें प्रमुखता से उठाए गए विमर्श के बिन्दुओं को आगे दिया जा रहा है ताकि इस माध्यम से आप यह समझ सकें कि पुस्तक के विषयवस्तुओं पर आप किन–किन दृष्टिकोणों से समीक्षात्मक चिंतन कर सकते हैं।

शिक्षा और लोकतंत्र का अंश (अध्याय–1 ''जीवन की आवश्यकता के रूप में शिक्षा'' से)

....शिक्षा के दर्शन में एक बड़ी समस्या यह आती है कि शिक्षा के औपचारिक और अनौपचारिक तथा प्रासंगिक और आशय युक्त तरीकों के बीच समुचित संतुलन कैसे कायम किया जाय। जब सूचना और तकनीकी बौद्धिक कौशल के अर्जन से सामाजिक स्वभाव का निर्माण न हो तो सामान्य जीवंत अनुभव निरर्थक हो जाता है और स्कूलों में से , ऐसी शिक्षा के द्वारा, ज्ञान के 'वंचक' अर्थात आत्मश्लाघी विशेषज्ञ ही निर्मित होते हैं। विशेष प्रकार की शिक्षा के विकास में यह कार्य दुष्कर हो जाता है कि दो प्रकार के ज्ञान के बीच दूरी पैदा होने से कैसे रोकी जाय। पहले प्रकार की शिक्षा वह है जिसमें लोगों को यह जानकारी होती है कि उन्होने ज्ञान प्राप्त किया है। क्योंकि ज्ञानार्जन की विशिष्ट क्रिया के द्वारा उन्होने वह प्राप्त किया है; दूसरे प्रकार की शिक्षा वह है जिसमें, दूसरों के साथ आदान प्रदान के द्वारा, अनजाने में व्यक्तियों को ज्ञान प्राप्त होता है और वह ज्ञान उनके स्वभाव में शामिल हो जाता है।

....अपने अस्तित्व को कायम रखने का प्रयत्न करना जीवन का स्वभाव होता है। क्योंकि निरंतर नवीकरण के द्वारा ही अस्तित्व को कायम रखा जा सकता है, अतः जीवन एक आत्मनवीकरण की प्रक्रिया होती है। सामाजिक जीवन के लिए शिक्षा का वही महत्व है जो दैहिक जीवन के लिए पोषण और प्रजनन का। यह शिक्षा मुख्यतः संप्रेषण के माध्यम से संचरण द्वारा दी जाती है। संप्रेषण अनुभव को बांटने की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनुभव पर सबका समान स्वामित्व कायम होता है। अनुभव के जरिए उसमें भाग लेने वाले दोनों पक्षों का स्वभाव परिवर्तित होता है। प्रत्येक प्रकार के मानवीय साहचर्य का प्रछन्न महत्व यह होता है कि उसके अनुभव की गुणवत्ता को सुधारने में अपना ही अंशदान होता है। अपरिपक्व लोगों के व्यवहार में यह तथ्य आसानी से दिखाई देता है। दूसरे शब्दों में, जहां प्रत्येक सामाजिक विन्यास का प्रभाव शिक्षाप्रद होता है वहां, युवाओं और उनसे बड़ी आयु के लोगों के बीच साहचर्य के संबंध में यह शिक्षाप्रद प्रभाव, सर्वप्रथम साहचर्य के प्रयोजन का महत्वपूर्ण भाग बन जाता है। जैसे–जैसे समाज के ढांचे और संसाधनों में अधिक जटिलता आती जाती है, औपचारिक और आशययुक्त शिक्षा की आवश्यकता बढ़ती जाती है। औपचारिक शिक्षण और प्रशिक्षण में विस्तार होने के साथ–साथ प्रत्यक्ष साहचर्य के द्वारा प्राप्त अनुभव और स्कूलों में प्राप्त ज्ञान के बीच अवांछित खाई पैदा होने का खतरा रहता है। पिछली सदियों में ज्ञान के भंडार में और कौशल प्राप्त करने के तरीकों में तेजी से हुई वृद्धि के कारण आज यह खतरा इतना अधिक है जितना पहले कभी नहीं था।

विमर्श के बिन्दु :

- औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के बीच दूरी पैदा न हो, इसके लिए विद्यालयों में कौन–कौन से कदम उठाए जा सकते हैं?
- जीवन की आवश्यकता के रूप में शिक्षा को आप कितना महत्वपूर्ण मानते हैं?

जाकिर हुसैन (दो शैक्षिक लेख) –

शिक्षा जगत की चुनौतियां व उसके सामाजिक–आर्थिक संदर्भ को समझाते हुए–

अध्याय का यह भाग डॉक्टर जाकिर हुसैन द्वारा संबोधित दो लेखों पर केंद्रित है। लेखों के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि लेखक व पुस्तक की पृष्ठभूमि से अवगत हो जाया जाए। आगे के उप खंडों में लेखक व पुस्तक की पृष्ठभूमि से परिचय के उपरांत मूल लेखों को समझने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित करने हेतु विमर्श के विभिन्न बिंदुओं पर सोदाहरण चर्चा की गई है। आगामी दो खंडों के स्वाध्याय के साथ–साथ आपको मूल लेखों को अनिवार्य रूप से पढ़ना है।

लेखक व पुस्तक की पृष्ठभूमि से परिचय

भारत के तीसरे राष्ट्रपति डॉ जाकिर हुसैन का जन्म 8 मई 1897 में तथा मृत्यु 3 मई 1969 को हुई। 1957 से 1962 तक बिहार के राज्यपाल के पद पर व 1962 से 1967 तक भारत के उपराष्ट्रपति पद पर आसीन रहें। सन 1963 में भारत रत्न से नवाजे गए जाकिर हुसैन की विचारधाराओं पर जर्मन विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव उनके लेखों व विचारों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। डॉ जाकिर हुसैन ने भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु अथक प्रयास किए। उन्होंने गांधी के द्वारा प्रस्तावित बुनियादी शिक्षा के विचार को समर्थन प्रदान किया व इनके विचारों को क्रियान्वित करने हेतु योजना तैयार की। इकाई के इस भाग में जाकिर हुसैन द्वारा 10 मार्च 1936 और 31 मई 1942 को ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली से प्रसारित संबोधनों को लेख के रूप में शामिल किया गया है। इन लेखों में जाकिर हुसैन द्वारा शिक्षा संबंधी कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं जैसे जानवरों की तुलना में इंसान के बच्चे को विकसित होने में अधिक समय क्यों लगता है ?बच्चे के विकास के संदर्भ में कौन सा विचार अपनाया जाए? बाल विकास में अनुशासन व पाठ्यचर्या आदि संबंधी चर्चा को शामिल किया गया है।

अपने पहले प्रश्न आखिर मनुष्य के बच्चे को विकसित होने में जानवरों से अधिक समय क्यों लगता है? का जवाब देते हुए जाकिर हुसैन कहते हैं, 'जेम्स ब्रिटेन ने अपनी पुस्तक 'भाषा और अधिगम' में कहा है कि इंसान के बच्चे को प्रकृति से भिन्न जीवन जीने के लिए तैयार होना होता है। ऐसा जीवन जो सरल ना होकर जटिल होता है। नंगा रहना सरल जीवन है लेकिन कपड़े पहनना जटिल जीवन है। क्योंकि कपड़े बनाने के लिए हुनर व समझ की आवश्यकता होती है। वह इंसान के पास प्राकृतिक तौर पर उपलब्ध नहीं होती। यदि ऐसा होता तो हर व्यक्ति को कपड़े बनाने आते या प्राकृतिक तौर पर उसके पास कपड़े बुनने का हुनर होता। जैसे कि मकड़ी के पास जाल बुनने का हुनर होता है। कपड़े पहनना सामाजिक व जटिल जीवन का लक्षण है। ऐसा जीवन विशेष तैयारी की मांग करता है ...प्रकृति हाथ तो देती है पर मूर्ति बनाने का हुनर नहीं देती। प्रकृति द्वारा दिए गए हाथों से क्या–क्या काम लेना है यह ऐतिहासिक –सामाजिक –आर्थिक अनुभवों के आधार पर

तय होता है....।'इस आधार पर हुसैन मानव जीवन से जुड़े सामाजिक –सांस्कृतिक पहलुओं पर बल देते हैं।

'हिंसा के सहारे सुधरने का काम करने वाले लोग बच्चों से उनकी उमंग उत्साह साहस तथा आत्मविश्वास छीन लेते हैं। ऐसे माहौल में पले बढे बच्चे डरे–सहमे हर चीज से भयभीत, हर चीज पर संदेह, ना किसी से लगाव, ना किसी पर भरोसा, ना काम का शौक, ना दिल बहलाव का सलीका जानते हैं। ....ऐसे बच्चे कुछ करते भी हैं तो गुलामों की तरह सजा के डर से या इनाम की लालच से। ऐसे बच्चों के भीतर प्रेरणा का स्रोत सूख जाता है उनके लिए प्रेरणा बाहर से दंड या पुरस्कार के रुप में आती है। यह बच्चे अपने चारों ओर देखकर समझ कर अपने लिए उद्देश्य नहीं बना पाते बल्कि गुलामों की तरह किसी और के उद्देश्यों का भार वहां करते हैं। यह एक भयानक दुर्दशा है इस दुर्दशा को और बड़ा बाधक बनने से छोटों के जीवन को दुखमय और निस्सार होते देखकर कुछ भले आदमी तो यहां तक कहने लगते हैं कि बच्चों की शिक्षा के लिए कुछ करना ही नहीं चाहिए उन्हें अपने हाल पर छोड़ दो तो कुछ ना कुछ हो ही जाएंगे। .... हां तो इस तरह अगर बच्चों को बिल्कुल स्वतंत्र छोड़कर कोई साहब उनको सही शिक्षा देना चाहें तो उन बच्चों को बीस हजार वर्ष तक जीवित रखने का उपाय भी कर लें। क्योंकि भाषा जैसी सामाजिक चीज पैदा करते करते हजारों साल तो लग ही जाएंगे'।

'हुसैन बच्चों के मानसिक जीवन की दो चीजों पर विशेष रूप से ध्यान देते हैं। एक, उसके उस अनुभव पर कि वह औरों से कम है और दूसरा, इस कमी को दूर करने के लिए उसकी कोशिशों पर। वयस्कों की तुलना में छोटा होने के कारण अपनी प्राकृतिक व सामाजिक जरूरतों के लिए वयस्कों पर निर्भर रहता है। वयस्क उसकी निर्भरता के प्रति कैसा नजरिया अपनाते हैं इससे बच्चे के व्यक्तित्व के बहुत सारे गुणों का विकास संभव है। अगर वयस्क उसे दया का पात्र समझते हैं तो वह स्वयं को वयस्कों के एहसान तले दबा हुआ महसूस करेगा। अगर वयस्क यह समझते हैं कि बचपन वयस्क होने की प्रक्रिया के तहत विकसित होता है तब वयस्कों को अपने प्रारंभिक जीवन का इतिहास भी याद रहेगा और वह बच्चे के प्रति स्नेह व समझदारी का रास्ता अपनाएंगे'।

बालक की उसकी स्वयं की सीखने की क्षमता वह स्वतंत्रता पर चर्चा करते हुए हुसैन कहते हैं 'जब बच्चा बोलना सीखता है वह एक खास तरह की आजादी का एहसास करता है, भाषा का अपने ही तरीके से इस्तेमाल करता है ......बच्चों में भाषा विकास के बारे में यह धारणा है कि बच्चे वही सीखते हैं जो वह सुनते हैं। लेकिन यह एक तथ्य है कि बच्चे अपने चारों ओर ऐसी अनेक ध्वनियां सुनते हैं जिनका वे उपयोग नहीं करते। इससे स्पष्ट है कि बच्चे यह तय करते हैं कि उन्हें सुनी गई ध्वनियों में से किन का उपयोग करना है। इसलिए माता–पिता की यह जिम्मेदारी है कि वह स्वयं को सब कुछ सिखाने वाला ना माने'।

हुसैन लेख में एक ऐसी सामाजिक समस्या की पहचान करते हैं जिसका अस्तित्व आज अधिक विस्तार पा चुका है। माता–पिता द्वारा बच्चों पर अधिक अंक लाने का दबाव बनाना। इस दबाव से छूटने के लिए बच्चा अंक लाने के ऐसे तरीकों का उपयोग कर सकता है जो व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में मुश्किलें खड़ी कर सकती है। इस सामाजिक प्रकृति का एक शिक्षण शास्त्रीय पहलू भी है। ज्यादा से ज्यादा अंक लाने के फेर में बच्चा केवल

किताबों को याद करने में जुटा रहता है व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं से वह दूर हो जाता है। अच्छे अंक लाने की स्थिति में बच्चे को इतना अपमान व निराशा झेलनी पड़ती है कि उसकी सारी जिंदगी दुखी रह सकती हैं.....'।

विमर्श के बिन्दु

- 'दवाब की शिक्षा बच्चे के नैसर्गिक गुणों को किस प्रकार प्रभावित करती हैं ?
- 'उन्मुक्त रूप से सीखना व भय से सीखना की प्रकृति में किस प्रकार का अंतर है? हमें क्या मात्र सीखने पर ही बल देना चाहिए या सीखने के रूपों पर भी ध्यान देना चाहिए?
- 'बालक को पूर्ण स्वतंत्र छोड़ दिया जाए या पूरी तरह से अपने नियंत्रण में रखा जाए इन दोनों परिस्थितियों में बालक पर पड़ने वाले प्रभाव को आप किस प्रकार देखते हैं?
- 'बालक व बचपन को आप किन किन संदर्भों से जुड़ा हुआ व प्रभावित हुआ पाते हैं?
- 'आज के प्रतियोगी समय में उच्च अंक लाने के लिए दबाव को आप किस तरीके से समझते हैं यह किस प्रकार से बालक पर मानसिक दबाव को बनाता है?

क्रियाकलाप

- जाकिर हुसैन के शिक्षा संबंधी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन गाँधी, टैगोर व गिजुभाई के शिक्षा दर्शन के साथ करें। इन विचारकों के विचारों के साथ जाकिर हुसैन के विचारों में कहाँ समानता व असमानता पाते हैं, इसपर एक तुलनात्मक सूची निर्मित किजीए।
- जाकिर हुसैन द्वारा सुझाए गए बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम को पाठ योजना के दौरान (सीखने की योजना) एक कक्षा में प्रयोग के रूप में पढ़ाइए और देखिए कि क्या बच्चों की अधिगम प्रक्रिया में भागीदारी बढ़ी है अथवा नहीं?

ज्योतिबा फुले (दो शैक्षिक लेख/वक्तव्य) – शिक्षा में जाति वर्ण लिंग आधारित चुनौतियों व समाधानों पर प्रकाश डालते हुए

ज्योतिबा फुले रचित पुस्तक (गुलामगिरी) व हंटर आयोग के सम्मुख संबोधित किया भाषण इस अध्याय का केंद्र बिंदु है। मूल रचनाओं के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि लेखक व पुस्तक की पृष्ठभूमि से अवगत हो जाया जाए। आगे के उपखंडों में लेखक व पुस्तक की पृष्ठभूमि से परिचय के उपरांत पुस्तक को समझने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित करने हेतु विमर्श के विभिन्न बिंदुओं पर सोदाहरण चर्चा की गई हैं। आगामी दो खंडों के स्वाध्याय के साथ–साथ आपको मूल रचनाओं को अनिवार्य रूप से पढ़ना है।

लेखक व पुस्तक की पृष्ठभूमि से परिचय

उन्नीसवीं सदी के क्रांतिकारी चिंतक और वर्ण व्यवस्था को गंभीर चुनौती देने वाले ज्योति राव फुले का जन्म 11 अप्रैल 1823 को पुणे में हुआ फुले ने सन 1848 में शूद्र जाति की (दलित) लड़कियों के लिए एक स्कूल की स्थापना कर दी थी। 1848 में दलित लड़कियों के लिए स्कूल खोलना अपने आप में एक क्रांतिकारी कदम है। 1848 में यह स्कूल खोलकर महात्मा फुले ने उस वक्त के समाज के ठेकेदारों को नाराज कर दिया था। दलित लड़कियों के स्कूल खोलने के मुद्दे पर बहुत झगड़ा हुआ लेकिन ज्योति राव फुले ने किसी की न सुनी। नतीजतन उन्हें 1849 में घर से निकाल दिया गया। सामाजिक बहिष्कार का जवाब महात्मा फुले ने 1851 में दो और स्कूल खोल कर दिया। जब 1868 में उनके पिताजी की मृत्यु हो गई तो उन्होंने अपने परिवार के पीने के पानी वाले तालाब को अछूतों के लिए खोल दिया। 1873 में महात्मा फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना की और इसी साल उनकी पुस्तक गुलामगिरी का भी प्रकाशन हुआ।

महात्मा फुले के चिंतन के केंद्र में मुख्य रूप से धर्म और जाति की अवधारणा है। वे कभी भी हिंदू धर्म शब्द का प्रयोग नहीं करते। वे उसे ब्राह्मणवाद के नाम से ही संबोधित करते हैं। उनका विश्वास था कि अपने एकाधिकार को स्थापित किए रहने के उद्देश्य से ही ब्राह्मणों ने श्रुति और स्मृति का आविष्कार किया था। इन्हीं ग्रंथों के जरिए ब्राह्मणों ने वर्ण व्यवस्था को दैवी रूप देने की कोशिश की उनका कहना था कि ब्राह्मणवाद के इतिहास पर गौर करें तो समझ में आ जाएगा कि यह शोषण करने के उद्देश्य से हजारों वर्षों में विकसित की गई व्यवस्था है। इसमें कुछ भी पवित्र या दैवी नहीं है न्याय शास्त्र में सत्य की जानकारी के लिए जिन 16 तरकीबों का वर्णन किया गया है, वितंडा उसमें से एक है। महात्मा फुले ने इसी वितंडा का सहारा लेकर ब्राह्मणवादी वर्चस्व को समाप्त करने की लड़ाई लड़ी।

स्त्रियों के बारे में महात्मा फुले के विचार क्रांतिकारी थे। मनु की व्यवस्था में सभी वर्णों की औरतें शुद्र वाली श्रेणी में गिनी गई थी। लेकिन फूले ने स्त्री पुरुष को बराबर समझा। फुले ने विवाह प्रथा में बड़े सुधार की बात की। प्रचलित विवाह प्रथा के कर्मकांड में स्त्री को पुरुष के अधीन माना जाता था लेकिन महात्मा फुले का दर्शन हर स्तर पर गैर बराबरी का विरोध करता था। इसलिए उन्होंने पंडिता रमाबाई के समर्थन में लोगों को लामबंद किया जब उन्होंने धर्म परिवर्तन किया और ईसाई बन गई। वे धर्म परिवर्तन के समर्थक नहीं थे लेकिन महिला द्वारा अपने फैसले खुद लेने के सैद्धांतिक पक्ष का उन्होंने समर्थन किया।

गुलामगिरी के कुछ अंश

गुलामगिरी पुस्तक के अंतर्गत फुले हिंदू धर्म के अंतर्गत स्थापित ब्राह्मण वर्चस्व को चुनौती देते हुए हिंदू ग्रंथों को उस वर्चस्व को कायम रखने वाले साधन के रूप में देखते हैं। पुस्तक के आरंभ में ज्योतिबा फुले कहते हैं 'सैकड़ों साल से आज तक शूद्र जाति (अछूत) समाज ,जब से इस देश में ब्राह्मणों की सत्ता कायम हुई तब से लगातार जुल्म और शोषण के शिकार हैं। ये लोग हर तरह की यात्राओं और कठिनाइयों में अपनी दिन गुजार रहे हैं इसलिए इन लोगों को इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए और गंभीरता से सोचना चाहिए। ये लोग अपने आपको ब्राह्मणों–पंडा–पुरोहितों के जुल्म ज्यादतियों से कैसे मुक्त कर

सकते हैं, यही आज हमारे लिए महत्वपूर्ण सवाल है....ब्राह्मणों पुरोहितों ने इन पर अपना वर्चस्व कायम करने के लिए, इन्हें हमेशा हमेशा के लिए अपना गुलाम बनाकर रखने के लिए, केवल अपने निजी हितों को ही मद्देनजर रखकर एक से अधिक ग्रंथों की रचना करके कामयाबी हासिल की ....उस समय के शूद्र जातियों में मानसिक गुलामी के बीज बोए गए.....'।

'इस बात पर हमारी कुछ ब्राह्मण भाई इस तरह के प्रश्न उठा सकते हैं कि यदि तमाम ग्रंथ झूठ–मुठ के हैं, तो उन ग्रंथों पर शूद्रा जातियों के पूर्वजों ने क्यों आस्था रखी थी? और आज इनमें से बहुत सारे लोग क्यों आस्था रखे हुए हैं? इसका जवाब यह है कि आज के इस प्रगति काल में कोई किसी पर जुल्म नहीं कर सकता। मतलब अपनी बात को लाद नहीं सकता कोई धूर्त आदमी किसी बड़े व्यक्ति के नाम से झूठा पत्र लिखकर लाएं तो कुछ समय के लिए उस पर भरोसा करना ही पड़ता है। बाद में समय के अनुसार वह झूठ उजागर हो ही जाता है इसी तरह शुद्रादी–अतिशूद्रों का किसी समय ब्राह्मण–पंडा–पुरोहितों के जुल्म और ज्यादती के शिकार की वजह से अनपढ़ गवार बनाकर रखने की वजह से पतन हुआ है। ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिए समर्थ (रामदास) के नाम पर झूठे पाखंडी ग्रंथों की रचना करके शादी थी शुद्रों को गुमराह किया और आज भी ऐसे कई लोगों को ब्राह्मण पुरोहित लोग गुमराह कर रहे हैं'।

फुले अपने दर्शन में स्वतंत्रता को केंद्र में रखते हैं सभी प्रकार के बंधनों से मुक्ति पर बल देते हैं। वे कहते हैं – 'मनुष्य को आजाद होना चाहिए यही उसकी बुनियादी जरूरत है। जब व्यक्ति आजाद होता है तब उसे अपने मन के भावों और विचारों को स्पष्ट रूप से दूसरों के सामने प्रकट करने का मौका मिलता है। लेकिन जब से आजादी नहीं होती तब वह वही महत्वपूर्ण विचार जनहित में होने के बावजूद दूसरों के सामने प्रकट नहीं कर पाता और समय गुजर जाने के बाद वे सभी लुप्त हो जाते हैं। आजाद होने से मनुष्य अपने सभी मानवीय अधिकार प्राप्त कर लेता है और असीम आनंद का अनुभव करता है। सभी मनुष्यों को मनुष्य होने के जो सामान्य अधिकार इस सृष्टि के नियंत्रक और सर्व साक्षी परमेश्वर द्वारा दिए गए हैं उन तमाम मानवीय अधिकारों को ब्राह्मण–पंडा–पुरोहित वर्ग ने दबोच कर रखा है। ऐसे लोगों से अपने मानवीय अधिकार छीन कर लेने में कोई कसर बाकी नहीं रखनी चाहिए। उनके हक उन्हें मिल जाने से उन अंग्रेजों को खुशी होती है। सभी को आजादी देकर उन्हें जुल्मी लोगों के जूल्म से मुक्त करके सुखी बनाना यही उनका इस तरह से खतरा मोल लेने का उद्देश्य है। वाह! वाह! कितना बड़ा जनहित का कार्य है! उनका इतना अच्छा उद्देश्य होने की वजह से ही ईश्वर उन्हें हुए, जहां गए वहां ज्यादा से ज्यादा कामयाबी देता रहा है और अब आगे भी उन्हें इस तरह के अच्छे कामों में उनके प्रयास सफल होते रहे उन्हें कामयाबी मिलती रहे यही हम भगवान से प्रार्थना करते हैं'।

'दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका जैसे पृथ्वी के इन दो बड़े हिस्सों में सैकड़ों साल से अन्य देशों से लोगों को पकड़–पकड़ कर यहां उन्हें गुलाम बनाया जाता था। यह दासों को खरीदने बेचने की प्रथा यूरोप और तमाम प्रगतिशील कहलाने वाले राष्ट्रों के लिए बड़ी लज्जा की बात थी। उस कलंक को दूर करने के लिए अंग्रेज, अमेरिकी आदि उदार लोगों ने बड़ी बड़ी लड़ाइयां लड़ कर अपने नुकसान की बात तो दरकिनार उन्होंने अपनी जान की परवाह नहीं की और गुलामों की मुक्ति के लिए लड़ते रहे। यह गुलामी प्रथा कई सालों

से चली आ रही थी। इस अमानवीय गुलामी प्रथा को समूल नष्ट कर देने के लिए असंख्य गुलामों को उनके परम प्रिय माता–पिता से भाई–बहनों से बीवी–बच्चों से दोस्त मित्रों से जुदा कर देने की वजह से जो यातनाएं सहनी पड़ी उससे उन्हें मुक्त करने के लिए उन्होंने संघर्ष किया। उन्होंने जो गुलाम एक दूसरे से जुदा कर दिए थे उन्हें एक दूसरे के साथ मिला दिया वह अमेरिका आदि सदाचारी लोगों ने कितना अच्छा काम किया है। यदि आज उन्हें इन गरीब अनाथ गुलामों की बदतर स्थिति देखकर दया ना आई होती तो यह गरीब बेचारे अपने प्रिय जनों से मिलने की इच्छा मन ही मन में रखकर मर गए होते'।

शिक्षा के संदर्भ में अंग्रेजों के हस्तक्षेप को हुए शुद्र वर्ग के हित में देखते हैं। अंग्रेजी शासन का भारत में अपना नियंत्रण करना व भारतीय संस्कृति व प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में बदलाव लाए जाने की भी प्रशंसा करते हैं। इस संदर्भ में एक स्थान पर वे कहते हैं, 'ऐसे समय को बड़ी खुश किस्मत कहिए कि ईश्वर को उन पर दया आई, इस देश में अंग्रेजों की सत्ता कायम हुई और उनके द्वारा यह लोग ब्राह्मण शाही की शारीरिक गुलामी से मुक्त हुए इसलिए ये लोग अंग्रेजी राजसत्ता का शुक्रिया अदा करते हैं। ये लोग अंग्रेजों के उपकारों को कभी भूलेंगे नहीं'।

अब हम महात्मा ज्योतिबा फुले के दूसरे शैक्षिक लेख के कुछ महत्वपूर्ण अंश को पढ़ेंगे। यह लेख दरअसल महात्मा फुले द्वारा सन 1882 में ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त हंटर कमीशन के समक्ष शिक्षा व्यवस्था पर दिए गए व्याख्यान का संकलन है। यह लेख हमें तत्कालीन समाज के अन्य सांस्कृतिक पहलुओं के साथ–साथ शिक्षा के स्तर व उसके कुछ विशेष वर्गों तक केंद्रित हो जाने के प्रमाण भी देता है। नीचे उपरोक्त व्याख्यान के कुछ अंश दिए गए हैं जिन्हें पढ़कर हम आगे की गतिविधि की ओर बढ़ेंगे–

'यहां किसी को शायद ही संदेह हो कि इस रियासत में प्राथमिक शिक्षा बहुत ही उपेक्षित हालत में है। हालांकि प्राइमरी स्कूलों की संख्या पूर्व की तुलना में कुछ बढी है फिर भी वह समाज की मांग की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। सरकार शैक्षिक उद्देश्यों के लिए एक खास टैक्स भी लेती है फिर भी यह आरोप लगते हैं कि उस निधि को भी नहीं खर्च किया जाता है। ज्यादातर प्राथमिक शिक्षक जिन्हें बहुत ही कम वेतन मिलता है वह ब्राह्मण जाति से ताल्लुक रखते हैं। मेरा विचार है कि एक शिक्षक को प्रशिक्षित होना ही चाहिए जो कि अपने धार्मिक कर्मकांड से अलग रहकर पढ़ा सके और सरकार को उनका वेतन एक सम्मानजनक स्तर पर रखना चाहिए। ....उच्च शिक्षा जोकि मुख्यतः ब्राह्मणों तक ही सीमित रही है, यदि उच्च शिक्षा से सरकार ने अनुदान देना बंद कर दिया तो इसका प्रसार समाज के वंचित तबके तक कदापि नहीं हो पाएगा और फिर सरकार की सबको शिक्षा देने की मंशा समाप्त हो जाएगी'।

उपरोक्त अंश को पढ़ने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा फुले आज से करीब 130 साल पहले ही भेदभाव रहित पाठ्यक्रम शिक्षा के वंचित तबके तक प्रसार और शिक्षा में राज्य सरकार की सार्थक भूमिका पर बहुत सटीक व तार्किक चिंतन कर रहे थे जो कि बार–बार उनके लेखों और व्याख्यान में परिलक्षित भी होता है।

विमर्श के बिन्दु

- 'भारतीय समाज में जाति व लिंग किस हद तक सर्व शिक्षा के अभियान में एक बाधाकारी तत्व है।
- 'क्या आप महात्मा फुले की भांति इस विचार से सहमत हैं कि भारतीय समाज में शिक्षा को एक विशिष्ट वस्तु (कमोडिटी) के रूप में वर्ग विशेष तक सीमित रख कर उसे एक भेदभाव के कारक के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है।
- 'समाज में जातिगत भेद व लिंग आधारित भेदभाव समाप्त करने हेतु आप शिक्षा को किस हद तक कारगर साधन के रूप में देखते हैं? क्या आप मानते हैं कि शिक्षा समाज में परिवर्तन का एक यंत्र है?
- 'यथार्थ परिस्थितियों में क्या आप यह मानते हैं कि आज भी शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया (नीति निर्माण, पाठ्यक्रम निर्माण, कक्षा संचालन, मूल्यांकन विधियां इत्यादि) में अभी भी पदसोपनिकता को बनाए रखा जा रहा है? अपने तर्क में उत्तर दें।

क्रियाकलाप

हंटर कमीशन के सामने ज्योतिबा फूले के द्वारा शिक्षा नीति को लेकर दिए गए सुझावों की वर्तमान शिक्षा नीति के बिन्दुओं से तुलना कीजिए और एक सामान्य समझ के आधार पर यह जानने का प्रयास कीजिए कि समावेशी शिक्षा को लेकर दिए गए फूले के सुझाव करीब 150 वर्षों के बाद भी लागू किए जा सके हैं अथवा नहीं?

जिद्दू कृष्णमूर्ति : शिक्षा संवादः छात्रों और शिक्षकों से

इकाई का यह भाग जिद्दू कृष्णमूर्ति के शिक्षा संवाद : छात्रों और शिक्षकों पर केंद्रित है। पुस्तक के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि लेखक एवं पुस्तक की पृष्ठभूमि से थोड़ा अवगत हो जाया जाए। लेखक से विशेष परिचय मूल कृति के पठन के दौरान प्रशिक्षुओं को स्वतः ही हो जाएगा। आगे के उपखंडों में लेखक एवं पुस्तक के पृष्ठभूमि से परिचय के उपरांत पुस्तक के समझने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित करने हेतु विमर्श के विभिन्न बिंदुओं पर चर्चा की गई है। दिए गए उपखंडों के स्वाध्याय के साथ—साथ आप मूल रचना भी पढ़ें।

लेखक एवं पुस्तक के पृष्ठभूमि से परिचय

जिद्दू कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई 1895 को आंध्र प्रदेश के मदनापल्ली में हुआ था। कृष्णमूर्ति दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विषयों के लेखक एवं प्रवचनकार थे। वे मानसिक क्रांति, मस्तिष्क की प्रकृति, ध्यान, मानवीय संबंध, समाज में सकारात्मक परिवर्तन कैसे लाएं आदि विषयों के विशेषज्ञ थे। वे सदा इस बात पर जोर देते थे कि प्रत्येक मानव को मानसिक क्रांति की

जरूरत है। कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का एक बड़ा कार्य एक ऐसे समग्र व्यक्ति का विकास है जो जीवन की समग्रता को पहचान सके। आदर्शवादी और विशेषज्ञ दोनों ही समग्र से नहीं खंड से जुड़े हुए होते हैं। जब तक हम किसी एक ही प्रकार की कार्यप्रणाली का आग्रह नहीं छोड़ते तब तक समग्रता का बोध संभव नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक कृष्णमूर्ति फाऊंडेशन इंडिया द्वारा प्रकाशित है। जो आंध्र प्रदेश के ऋषि वैली स्कूल तथा वाराणसी के राजघाट स्कूल में विद्यार्थियों से जे कृष्णमूर्ति की वार्ताओं तथा विचार–विमर्शों का परिणाम है। इस पुस्तक में दो खंड है। खंड 1 विद्यार्थियों से वार्ता का है तथा खंड 2 शिक्षकों से वार्ता का है। खंड 1 में 9 सरोकारों पर चर्चा संकलित है जबकि खंड 2 में 11 चर्चा संकलित है।

विमर्श के बिंदु

- इस पुस्तक को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले पुस्तक की प्रति हो।
- लेखक के दृष्टिकोण को समझा जाए। इसके लिए आप पुस्तक में लेखक द्वारा लिखे गए आमुख को भी अवश्य पढ़ें।

आप पुस्तक के अध्ययन के दौरान यह विश्लेषित करें कि उनके माध्यम से किन किन मुद्दों को उठाया गया है तथा उनका शिक्षा से क्या जुड़ाव है। इस पुस्तक के कुछ अंश आगे दिए गए हैं तथा उसमें प्रमुखता से उठाए गए विमर्श के बिंदुओं को आगे दिया जा रहा है ताकि इसके माध्यम से आप यह समझ सके कि पुस्तक के विषय वस्तुओं पर आप किन–किन दृष्टकोणों से समीक्षात्मक चिंतन कर सकते हैं।

शिक्षा का अर्थ

जे. कृष्णमूर्ति ऐसे चिंतक हैं जिनका मानना है कि शिक्षा का कार्य किन्ही मांगों को आधार बनाकर नहीं किया जा सकता। पहले से चली आ रही परिपाटी एवं परंपरा को आत्मसात करके अपने जीवन को नियंत्रण उन परंपराओं के हाथों में सौंप देना जीवन को नष्ट करना है। इसलिए यदि शिक्षा पूर्व निर्धारित मान्यताओं को बनाए रखने का काम करती है तो ऐसी शिक्षा विनाशकारी है क्योंकि यह जीवन की गति में बाधक है। कृष्णमूर्ति का विचार इसी बात को समझा जाता है कि अनुरूपता हासिल करवाना शिक्षा का कार्य नहीं है। यदि कहीं ऐसा हो रहा है तो उसकी शिक्षा सही नहीं हुई है। ऐसे विद्यार्थी की शिक्षा में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

'शिक्षा का कार्य व्यक्ति को इसके लिए प्रोत्साहित करना नहीं है कि वह समाज के अनुरूप बने और ना तो समाज में नकारात्मक सामंजस्यता ही लाना है। वास्तविक जीवन मूल्यों की खोज में व्यक्ति की सहायता करना ही शिक्षक का कार्य और ये मूल्य पूर्वाग्रह अन्वेषण तथा आत्म–अवधान से ही आते हैं। जब आत्मबोध नहीं होता तो आत्म–अभिव्यक्ति अहंकार हो जाती है और उसके साथ उसके तमाम आक्रामक एवं महत्वाकांक्षी द्वंद उत्पन्न हो जाते हैं। शिक्षा का कार्य आत्म– अवधान की क्षमता को जागृत करना है, न कि तुष्टीकरण वाली आत्म–अभिव्यक्ति की वासना को अवसर देना'। (कृष्णमूर्ति, 1993.6)

शिक्षा का कार्य यह नहीं है कि विद्यार्थी समाज के अनुरूप बने। इस बात का क्या अर्थ है? इस बात का अर्थ समाज की समीक्षा करने से खुलता है। यदि समाज जाति के आधार पर चलता है और उसमें विभिन्न जातियों के भिन्न अधिकार और कर्तव्य पूर्व निर्धारित हैं तो क्या शिक्षा विद्यार्थी को ऐसे समाज का अनुसरण करने वाला बनने में मदद करें? यदि समाज में काम और संसाधनों का बंटवारा लिंग पर आधारित है। यानी पुरुषों के पास अधिक संसाधन तथा कम जिम्मेदारियां जाती हैं और स्त्रियों के पास कम संसाधन और अधिक जिम्मेदारियां जाती हैं तो क्या विद्यार्थी को ऐसे समाज के अनुरूप बनना चाहिए? कृष्णमूर्ति समाज की बुनियादी बनावट को समझते हुए यह प्रस्तावित करते हैं कि शिक्षा का काम विद्यार्थी को समाज के अनुरूप बनाना नहीं है। वे विद्यार्थी को तमाम तरह के सामाजिक बंधनों से मुक्त करने में विश्वास करते हैं। बंधनों का अर्थ है भय।भय यानी सीखने में बाधा। कोई भी परंपरा, नियम, विचार जो बाहर से ऐसा दबाब बनाते हैं कि किसी व्यक्ति को वैसा ही जीवन जीना चाहिए जैसा वे सुझा रहे हैं तो यह अनुकरण या आत्मसमर्पण तो हो सकता है लेकिन शिक्षा नहीं हो सकती ।

कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा परंपराओं या व्यक्तियों के तुष्टीकरण का साधन नहीं है बल्कि व्यक्ति में अन्वेषण, खोज की क्षमता को जागृत करने का साधन है। शिक्षा माता—पिता, मित्र, धर्म, देश, नेता की भावनाओं को पुष्ट करने का जरिया नहीं है और न ही स्वयं के पूर्वाग्रहों को पुष्ट करने का जरिया है।यह सतत अन्वेषण की प्रक्रिया है। जब हम अन्वेषण कर रहे होते हैं तो पक्के तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे हाथ क्या लगेगा। हम अन्वेषण इसलिए करते हैं कि जो कुछ वर्तमान में है हमें उस पर संदेह है। वर्तमान तथ्यों और वर्तमान विचारों के मध्य अंतर विरोधों से संदेहों को बल मिलता है।

'उचित प्रकार की शिक्षा को किसी विचार —सिद्धांत से लगाव नहीं होता ,वह विचार सिद्धांत चाहे जितना भी भविष्य के यूटोपिया की आशा दिलाता हो उचित शिक्षा किसी व्यवस्था पर आधारित नहीं है, चाहे कितनी भी वह व्यवस्था सावधानी से बनाई गई हो। इसी प्रकार उचित शिक्षा व्यक्ति को किसी विशेष प्रकार से प्रतिबंध करने का साधन भी नहीं है। शिक्षा का सही अर्थ व्यक्ति को परिपक्व तथा मुक्त होने में प्रेम तथा अच्छाई में अधिकाधिक पुष्पित होने में, सहायता करना है ।उसी में हमारी रुचि होनी चाहिए न कि बालक को किसी आदर्शवादी नमूनों के सांचे में ढालने में'।

जब हम किसी देश, धर्म, विचार, व्यक्ति, व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं तो हमारी चेतना हमारा साथ छोड़ देती हैं। हम एक अत्यंत सीमित दायरे में सोचने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं। हम, उस समय मुक्त इंसान नहीं होते बल्कि प्रतिबद्ध होते हैं। जैसे मशीन का एक पूर्जा मशीन के बांकी पूर्जों के अनुसार कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध होता है। ऐसी प्रतिबद्धता उस पुर्जे के जीवन के दायरे को सीमित करती हैं। यदि शिक्षा विद्यार्थी को समाज का पूर्जा बनाती है तो ऐसी शिक्षा नकारात्मक है। शिक्षा मुक्तकारी होती है।

'शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य एक ऐसे संबंधित व्यक्ति को उत्पन्न करना है जो जीवन को समग्रता में साक्षात करें। एक विशेषज्ञ की भांति ही आदर्शवादी व्यक्ति को भी समग्रता से लगाव नहीं होता, उसका संबंध केवल अंश से ही होता है। जब तक व्यक्ति कर्म के किसी आदर्श प्रारूप का अनुशीलन कर रहा है तब तक उसके लिए समन्वित होना संभव नहीं है और अधिकांश अध्यापक जो आदर्शवादी होते हैं, प्रेम को उठाकर एक और रख देते हैं उनका मन नीरज तथा हृदय कठोर होता है यदि हमें किसी बालक का अध्ययन करना

हो तो यह आवश्यक है कि हम सजग सावधान और आत्म सचेत हो और इसके लिए अपार बुद्धि और प्रेम की आवश्यकता है ना कि उसे किसी आदर्श का अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहित करने की।

एक सचेत व्यक्ति बनना तभी संभव है जब व्यक्ति बंधनों से मुक्त हो उस मुक्ति की अवस्था में उसे जीवन की समग्रता को समझना सिखाया जाए। वह ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाए जिसमें उसका मन मस्तिष्क निरंतर समीक्षक का काम करता रहता है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि : 'अब हम इसका पता लगाएं कि शिक्षा का वास्तविक अर्थ और अभिप्राय क्या है? क्या आपके मन को जिसे समाज द्वारा प्रतिबंध किया गया है तथा उस संस्कृति को जिस में आप रहते हैं, शिक्षा के द्वारा इस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है कि आप किसी भी दशा में समाज की इस दशा में न प्रवेश करें? क्या आपको दूसरे प्रकार से शिक्षित करना संभव है? 'शिक्षित करना' शब्द के वास्तविक अर्थ में; केवल इस अर्थ में नहीं कि अध्यापकों द्वारा छात्रों को गणित, इतिहास अथवा भूगोल के विषय में कुछ सूचनाएं संप्रेषित कर दी जाएं, वरन इन्हीं विषयों की शिक्षण प्रक्रिया में आपके मन में एक परिवर्तन लाया जाए। जिसका अर्थ है कि आप को असाधारण रूप से समीक्षक होना पड़ेगा। आपको उस वस्तु को कभी भी स्वीकार न करना सीखना होगा जिसको आपने स्पष्ट रूप से स्वयं नहीं देखा है। इसी प्रकार जो दूसरों ने कहा है उसे कभी न दोहराना यह भी आपको सीखना होगा।

मेरे विचार से आपको अपने से ही इस तरह के प्रश्न करने चाहिए और वह भी कभी–कभी नहीं वरन नित्य। स्वयं पता लगाएं। प्रत्येक वस्तु को, पक्षियों के कलरव को, गाय के पुकारने को सुनें, क्योंकि यदि आप अपने विषय में अपने से सीखते हैं तो आप सदा नवीन रहेंगे, इसलिए मेरा सुझाव है कि आज से पता लगाएं कि पूर्णतया निम्न प्रकार से कैसे रहा जाता है; परंतु यह कठिन, क्योंकि जहां तक मैं समझता हूं हम में से अधिकांश व्यक्ति एक सरल जीवन पद्धति जीना चाहते हैं जो दूसरे व्यक्ति कहते हैं, जो दूसरे व्यक्ति करते हैं, हम उसी को दोहराना तथा उसी का अनुगमन करना चाहते हैं, क्योंकि वही जीवन की सर्वाधिक सरल विधि है, अर्थात किसी पुराने अथवा नवीन प्रारूप के अनुरूप बनना। हमें इसका पता लगाना है कि कभी भी अनुरूप न बनने का एवं भय विहीन जीवन जीने का क्या अर्थ है। यह जीवन आपका है, कोई भी पुस्तक, कोई भी गुरु या अन्य कोई आपको सिखाने नहीं जा रहा है। आपको स्वयं अपने से अर्जित करना है ना कि पुस्तकों से। अपने विषय में सीखने के लिए बहुत बड़ा है। वह एक अंतहीन वस्तु, वह एक मोहक वस्तु है, और जब आप अपने से अपने विषय में सीखते हैं तो उस सीखने से प्रज्ञा आती है। तब आप एक सर्वाधिक अनुपम, सुखी, सुंदर जीवन जी सकते हैं।

ऐसी स्थिति जिसमें व्यक्ति भय से मुक्त होता है तथा स्वतंत्रता का उपयोग संसार में घट रही घटनाओं को देखने समझने हेतु करता है उस स्थिति में व्यक्ति नवीन मूल्यों का सृजन करता है। क्योंकि वह वर्तमान तथ्यों के प्रकाश में सोचने के लिए स्वतंत्र होता है कि जीने के कौन से तरीके अधिक मानवीयता हैं। क्योंकि मानवीयता ही वह कसौटी हो सकती है जिसके आधार पर एक स्वस्थ दुनिया की रचना की जा सकती है। ऐसा किन्ही पूर्व निर्धारित विचारों को मानकर नहीं किया जा सकता है।

'शिक्षा का दूसरा कार्य नवीन मूल्यों का सृजन करना है। बालक के मन में केवल प्रचलित मूल्यों को आरोपित करना एवं उसे आदर्शों के अनुकूल बनाना उसे प्रतिबद्ध करना है और इसमें उसकी सम्यक बुद्धि जागृत नहीं होती। शिक्षा का वर्तमान विश्व संकट से घनिष्ठ

संबंध है और उसे शिक्षक को जो इस वैश्विक दूर व्यवस्था को देखता है अपने से यह प्रश्न करना चाहिए कि छात्र में इस बुद्धि को कैसे जगाया जाए और इस प्रकार आने वाली पीढ़ी को और अधिक द्वंद तथा विनाश उत्पन्न करने से कैसे रोका जाए? शिक्षक को उचित प्रकार के परिवेश का सृजन करने में तथा जीवन बोध को विकास करने में अपनी समस्त विचार क्रिया समस्त सावधानियां तथा अपने समस्त प्रेम को लगा देना चाहिए जिससे कि वह बच्चा परिपक्व हो, वह मानवीय समस्याओं का विवेकपूर्ण ढंग से सामना कर सके। परंतु ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक विचार प्रणालियों व्यवस्थाओं और विश्वासों पर निर्भर रहने की अपेक्षा स्वयं अपने को समझें।

सिद्धांतों और आदर्शों की भाषा में सोचना छोड़कर हमारा संबंध वस्तुओं के उस वास्तविक रूप से होना चाहिए जैसी कि वे है; क्योंकि जो वास्तविकता है उसी पर विचार करना सम्यक बुद्धि जागृत करना है, और शिक्षक की सम्यक बुद्धि शिक्षा संबंधी किसी प्रणाली के उसके ज्ञान की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। जब कोई व्यक्ति किसी प्रणाली का अनुगमन करता है, चाहे वह प्रणाली कितने ही बुद्धिमान तथा विचार मान व्यक्ति द्वारा बनाई गई हो, तो स्वयं प्रणाली ही बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है और बच्चे वही तक महत्वपूर्ण रहते हैं जहां तक वे उसके प्रारूप में ठीक बैठते हैं। अध्यापक

बालक की नाप जोख करता है, उसे वर्गीकृत करता है और तब किसी चार्ट के अनुसार उसे शिक्षित करना आरंभ करता है। शिक्षण की यह प्रक्रिया किसी अध्यापक के लिए सुविधाजनक हो सकती है; परंतु न तो इस प्रकार की किसी व्यवस्था प्रणाली का अभ्यास ही और न विद्वत्ता एवं विशेषज्ञ – सम्मति की बाध्यता ही ऐसे मानव के समन्वित विकास को संभव बना सकती है।

'बच्चे को क्या होना चाहिए' इस आदर्श के आरोपण के बिना बच्चे द्वारा पूर्ण अध्ययन ही उचित शिक्षा है। किसी आदर्श के चौखटे में उसे बंद करना उसके अनुरूप बनने के लिए प्रोत्साहित करना है; या भय को तथा 'वह क्या है' और उसे 'क्या होना चाहिए' के अनवरत संघर्ष को उत्पन्न करता है। इन सभी आंतरिक दोनों की अपनी बाह्य अभिव्यक्तियाँ होती हैं जो समाज में प्रकट होती है। आदर्श वास्तव में वे बाधाएं हैं जिनके कारण हम बच्चों को नहीं समझ पाते और न तो बच्चा ही स्वयं अपने को समझ पाता है'।

स्वतंत्रता और व्यवस्था

कृष्णमूर्ति स्वतंत्रता और व्यवस्था के सह अस्तित्व को मानते हैं। स्वतंत्रता बिना व्यवस्था के नहीं पाई जा सकती तथा व्यवस्था के लिए स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। अगर मैं स्वतंत्र होकर काम करना चाहता हूं तो व्यवस्था में यह संभव नहीं है। किसी कक्षा में मेज कुर्सियां यदि और व्यवस्थित तरीके से लगी हुई है तो मैं चलने की स्वतंत्रता का उपयोग मुश्किल से कर पाऊंगा। चलने की स्वतंत्रता का उपयोग करने के लिए जरूरी है कि चलने के लिए नियत जगहों पर अन्य सामान ना बिखरा हो।

'स्वतंत्रता का व्यवस्था के बिना अस्तित्व नहीं है। वे दोनों साथ–साथ चलती हैं यदि आप व्यवस्था नहीं प्राप्त कर सकते तो आप स्वतंत्रता भी नहीं प्राप्त कर सकते। इन दोनों को पृथक नहीं किया जा सकता। यदि आप कहते हैं, 'मैं जब चाहूंगा कक्षा में जाऊंगा' इस प्रकार आप और अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। आपको इसका ध्यान रखना पड़ता है कि दूसरे लोग क्या चाहते हैं। कार्य सुविधा से होता चले इसके लिए आपको समय से आना पड़ता

है। यदि मैं आज सवेरे 10 मिनट देर से आया होता तो आप प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। अतः मुझे ध्यान रखना ही पड़ता है। मुझे दूसरों के विषय में सोचना ही पड़ता है। मुझे विनम्र रहना पड़ता है। उनकी सुविधाओं एवं असुविधाओं का ख्याल रखना पड़ता है। दूसरों की सुविधा के प्रति ध्यान रखने के भाव में से विचार शीलता एवं अवलोकन शीलता में से वाह्य और आंतरिक दोनों व्यवस्था का सृजन होता है और इस व्यवस्था से स्वतंत्रता उदित होती है।'

स्वतंत्रता का निर्माण गंभीर अवलोकन शीलता से करना संभव है। वे कौन से हालात हैं जिनमें मैं अपना काम स्वतंत्रता पूर्वक कर सकता हूं? वह कौन से व्यवहार हैं जो स्वतंत्रता की राह में बाधक हैं? वातावरण तथा अपने को समझते जाना तथा अपनी जिम्मेदारियों को तय करते जाना स्वतंत्रता को बढ़ाने का तरीका है। मैं जब चाहे खाना पकाना चाहता हूं। क्या यह व्यवस्थित विचार है? क्या ऐसा करने से मेरी स्वतंत्रता बढ़ेगी? जिस समय मैं खाना पकाना चाहता हूं उस समय रात के 2:30 बजे हैं। साथ के लोग सो रहे हैं। स्वतंत्रता का उपयोग इस प्रकार करने से उन लोगों की स्वतंत्रता में बाधा पहुंचती है तथा संघर्ष बढ़ता है। ऐसे में मुझे चाहिए कि मैं अपने व्यवहार का गंभीर अवलोकन करूं तथा व्यवहार में ऐसा परिवर्तन लाऊँ जिससे व्यवस्था स्थापित होती हो। स्वतंत्रता की स्थापना के लिए विनम्रता को अनिवार्य माना जाना चाहिए। मैं किसी की स्वतंत्रता के प्रति विनम्र हूं कोई किसी अन्य की स्वतंत्रता के प्रति विनम्र है। इस प्रकार हम एक दूसरे की स्वतंत्रता के प्रति विनम्र हैं। विनम्रता का अर्थ है मैं अपने काम को इस प्रकार करूं जिससे दूसरों को बाधा का सामना ना करना पड़े। विनम्रता कोई नारा मात्र नहीं है वह जिम्मेदारी है जिसको निभाने के क्रम में विनम्रता की अभिव्यक्ति होती है। मैं सवेरे सवेरे सबको प्रणाम करता हूं मीठा बोलता हूं सब की तरह मुस्कुरा कर देखता हूं लेकिन अपनी रेडियो की आवाज तेज करके रखता हूं । कहने पर भी आवाज को धीमा नहीं करता। ऐसे में जरूरत इस बात की है कि एक मनुष्य के रूप में मेरे कौन से व्यवहार से स्वतंत्रता को अधिक नुकसान या फायदा पहुंचता है? मानवता की कसौटी पर मेरा मूल्यांकन करते समय मेरा मूल्यांकन कैसे होगा?

कृष्णमूर्ति के अनुसार व्यवस्था आंतरिक अधिक है। हम पहले किसी व्यवस्था को अपने भीतर स्वीकारते हैं। उसके बाद ही वह बाहर लागू होती है। या भीतरी व्यवस्था की स्थाई तथा स्वतंत्रता की पोषक होती है। भीतरी का अर्थ यह नहीं कि वह दबावों के कारण भीतरी सी बन गई है। भीतरी का अर्थ जिसे व्यक्ति ने गहन अवलोकन तथा विचार के बाद ठीक किया है। स्वतंत्रता आदेशों का पालन करना नहीं है। व्यवस्था पंक्तिबंद्ध होकर चलना नहीं है। व्यवस्था उस समझ की निर्मिती में है जो तय करती है कि पंक्तिबद्ध होकर चलने से मनुष्य की स्वतंत्रता को विस्तार मिलता है। मनुष्य यदि यंत्र बनकर आदेशों का पालन करता है तो उसकी सोचने की क्षमता नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्य चाहे तो अव्यवस्था फैलाने का आदेश दे तो वह उसका पालन करेगा। क्योंकि उसकी अवलोकन करने तथा सोचने की क्षमता नष्ट हो चुकी है।

'आप जानते हैं सारे विश्व में प्रत्येक दिन सैनिकों को ड्रिल कराई जाती है, उन्हें बताया जाता है कि उन्हें क्या करना है? एक लाइन में कैसे चलना है? वह आदेशों का बिना विचार के पालन करते हैं। क्या आप जानते हैं कि उससे मनुष्य का क्या हो जाता है? जब आपको बताया जाता है कि आप क्या करें, क्या सोचे, कैसे आज्ञा का पालन करें, कैसे

अनुगमन करें, तो क्या आप जानते हैं इससे आपका क्या होता है? आपका मन मंद हो जाता है, उसकी तीव्रता, अग्रगामी होने की क्षमता नष्ट हो जाती है। अनुशासन का यह बाहरी दबाव मन को मूर्ख बना देता है। यह आप में अनुकूलता एवं नकल करने की प्रवृत्ति लाता है। परंतु यदि आप अवलोकन के द्वारा, सुनकर के, दूसरों की सुविधाओं का ध्यान करके, विचार के द्वारा अपने को अनुशासित करते हैं तो इस अवलोकनशीलता से, इस सुनने से, दूसरों की सुविधा का ध्यान रखने से व्यवस्था आती है। जहां व्यवस्था होती है वहां स्वतंत्रता सदा रहती है। यदि आप चीख रहे हैं, बातों में संलग्न हैं, तो जो दूसरों को कहना है उसे आप नहीं सुन सकते। आप स्पष्टता से केवल तभी सुन सकते हैं जब आप शांत बैठे, जब आप ध्यान दें।

कृष्णमूर्ति के अनुसार बाहरी दबावों से अनुशासन कायम किया जा सकता है, व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती। व्यवस्था का बनना किसी सम्यक बुद्धि की मांग करता है जिससे हालातों को समग्रता में समझा जा सकता है। यदि हम इंसानी जीवन के विभिन्न पहलुओं को समग्रता से नहीं समझते। जीवन को प्रकृति के साथ समग्रता में नहीं देखते तो व्यवस्था कायम नहीं की जा सकती। हम अनुशासित होकर किसी हरे–भरे खेत को रौंद सकते हैं लेकिन ऐसा करना स्वतंत्रता एवं व्यवस्था का प्रतीक नहीं हो सकता।

'और यदि आप अवलोकन के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, सुनने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, दूसरों की सुविधा का ध्यान रखने के लिए स्वतंत्र नहीं है, तो भी आप व्यवस्था नहीं प्राप्त कर सकते। स्वतंत्रता और व्यवस्था की यह समस्या जीवन की सर्वाधिक कठिन और प्रमुख समस्याओं में से एक है ।यह एक बड़ी जटिल समस्या है। गणित, भूगोल अथवा इतिहास पर जितना विचार करना पड़ता है उससे कहीं अधिक विचार की आवश्यकता इसे है। यदि आप वास्तव में स्वतंत्र नहीं हैं तो आप कभी पुष्पित नहीं हो सकते, आप कभी भी अच्छे नहीं हो सकते, सौन्दर्य भी कभी नहीं हो सकता। यदि पक्षी स्वतंत्र नहीं है तो वह उड़ नहीं सकता। यदि बीज अंकुरित होने के लिए पृथ्वी से बाहर फूट निकलने के लिए स्वतंत्र नहीं है तो जीवित नहीं रह सकता। प्रत्येक वस्तु के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है, इसमें मनुष्य भी सम्मिलित है। मनुष्य स्वतंत्रता से भयभीत रहते हैं। वे स्वतंत्रता चाहते नहीं। पक्षी, नदियां, वृक्ष सभी तो स्वतंत्रता की मांग करते हैं और मनुष्य को भी करनी चाहिए, आधे –अधूरे ढंग से नहीं वरन पूर्णतया। स्वतंत्रता आजादी–व्यक्ति जो सोचता है उसको अभिव्यक्त करने की जो वह करना चाहता है उसे करने की –जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं में से एक है। क्रोध, ईर्ष्या पाशविकता, क्रूरता से वास्तव में स्वतंत्र होना अपने स्वयं अंदर में वास्तव में स्वतंत्र होना, सर्वाधिक कठिन और विपत्तिजनक वस्तुओं में से एक है।

कृष्णमूर्ति मानते हैं कि अनुशासन वाह्य होता है। अनुशासन में वह करना होता है जो बताया जाए। व्यवस्था का मसला आंतरिक है। इसके लिए दूसरों पर आश्रित नहीं रहा जा सकता। कोई व्यक्ति स्वतंत्रता एवं व्यवस्था को कैसे प्राप्त कर सकता है? एक विद्यार्थी ने कृष्णमूर्ति से प्रश्न किया:

'छात्रः आपने कहा है कि हमें स्वतंत्रता एवं व्यवस्था होनी चाहिए। परंतु उसे हम कैसे प्राप्त करें?

कृष्णमूर्तिः सबसे पहले आप समझे कि आप दूसरों पर आश्रित नहीं रह सकते; आप किसी दूसरे से यह आशा नहीं कर सकते कि वह आपको स्वतंत्रता और व्यवस्था प्रदान करेगा

–चाहे वह आपके पिता हो, आपकी माता हो, आपके पति हो, अथवा आपके अध्यापक। उसे आपको अपने अंदर से ही उत्पन्न करना पड़ेगा। हमें सबसे पहले यह समझना चाहिए कि हम दूसरों से भोजन कपड़ा और निवास के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज नहीं चाह सकते। उसके लिए आप किसी दूसरे को की ओर नहीं देख सकते, चाहे वह आपके गुरु हो अथवा आपके देवता। कोई दूसरा आपको स्वतंत्रता और व्यवस्था नहीं दे सकता। इसलिए आपको यह पता लगाना है कि अपने में व्यवस्था को कैसे उत्पन्न किया जाए। अर्थात आपको देखना है और अपने आप से पता लगाना है कि अपने अंदर सदाचार को उत्पन्न करने का क्या अर्थ है? क्या आप जानते हैं कि सदाचार क्या है –नैतिक होना, अच्छा होना, सदाचार की व्यवस्था है। इसलिए आपको स्वयं पता लगाना है कि कैसे अच्छा हुआ जाता है, कैसे दयालु हुआ जाता है, कैसे विचारवान हुआ जाता है और इस विचारशीलता से इस अवलोकनशीलता से, आप व्यवस्था और इसलिए स्वतंत्रता उत्पन्न करेंगे। आप दूसरों पर निर्भर करते हैं कि वे आपको बताएं कि आपको क्या करना चाहिए, कि आप को खिड़की के बाहर नहीं देखना चाहिए, कि आपको समय का पालन करना चाहिए, कि आपको दयालु होना चाहिए। परंतु यदि आपको यह कहना होता, मैं खिड़की के बाहर देखना चाहूंगा, तो आप बिना दूसरों के बताए अपने अंदर व्यवस्था उत्पन्न करते हैं।

शिक्षक कैसा हो

कृष्णमूर्ति व्यक्ति द्वारा स्वयं को समझने में मदद करना शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य मानते हैं। ऐसा हो पाए इसके लिए व्यक्ति का स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करना अनिवार्य है। स्वतंत्रता का सम्मान तभी किया जा सकता है जबकि व्यक्ति तमाम तरह के तरीकों तथा विचारों से मुक्त होकर सोच सके। इस पृष्ठभूमि में शिक्षक की विचारना भिन्न प्रकार की होगी।

कृष्णमूर्ति का मानना है कि विद्यार्थी को वर्तमान परिवेश को स्वीकार करने के लिए संस्कारबद्ध करना स्पष्टतया मूर्खतापूर्ण है। जब तक हम स्वेच्छा से शिक्षा में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं उत्पन्न करते तब तक दुर्व्यवस्था और कष्ट को बनाए रखने के लिए अपरोक्ष रूप से हम ही जिम्मेदार हैं। प्रत्येक सत्ताधारी वर्ग शोषण के अपने साधनों का विकास कर लेता है चाहे वह शोषण मनोवैज्ञानिक दबाव द्वारा हो अथवा नग्न शक्ति प्रदर्शन द्वारा। किसी भी व्यवस्था के प्रति बच्चे को प्रतिबद्ध करना विनाशकारी है। उसकी समझ को जगाया जाना चाहिए। उसकी समझने की काबिलियत को बढ़ाने में मदद करनी चाहिए। क्योंकि प्रतिबद्धता से सीमित समझ पैदा होती है और सीमित समझ से संवाद संभव नहीं हो पाता। एक प्रश्न के जवाब में कृष्णमूर्ति शिक्षकों से कहते हैं किः

'क्योंकि आप स्वतंत्र हैं और स्वतंत्रता को समझते हैं, तो कक्षा में आप नियमित (नवीन) रहेंगे, और बालक से आप स्वतंत्रता से बात करेंगे, न कि किसी पूर्व निर्धारित विचार से।'

स्वतंत्रता का अर्थ किसी प्रकार की आत्म संतुष्टि के अवसर की खोज नहीं है और ना ही दूसरों के प्रति ख्याल की उपेक्षा है। एक निष्ठावान अध्यापक बच्चों की सुरक्षा का ध्यान रखता है और उनकी सहायता करता है कि वह सभी संभव तरीकों से उचित प्रकार की स्वतंत्रता की तरफ बढ़े। परंतु यदि शिक्षक स्वयं किसी खास विचार प्रणाली का आदी है यदि वह स्वयं किसी प्रकार से रूढ़िवादी है अथवा आत्म संतुष्टि में लगा है तो उसके लिए स्वतंत्रता का सम्मान कर पाना संभव न होगा ।

'सही शिक्षक चूंकि पूर्णतया व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उसके समन्वय के लिए ही समर्पित है, अतः वह एक गहरे अर्थ में सच्चा धार्मिक व्यक्ति है। वह किसी संप्रदाय का नहीं होता और ना ही किसी संगठित धर्म का; वह विश्वासों एवं कर्मकांडों से भी मुक्त है क्योंकि वह जानता है कि वह सब भ्रम हैं कल्पनाएं हैं तथा अंधविश्वास हैं जो उनको बचाने वालों की वासनाओं द्वारा प्रक्षिप्त की हुई हैं।

कृष्णमूर्ति मानते हैं कि शिक्षा से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को खोजकर्ता की भूमिका में रहना चाहिए। यदि वह पूर्वाग्रहों से ग्रसित नहीं है तो उसे खोजकर्ता होना ही होगा। उनका मानना है किः

जीवन सीखने की और शिक्षण की सतत प्रक्रिया हैः यदि वहां प्रयोजन है तो न तो सीखना संभव होता है और न तो शिक्षण करना। जब हमारे पास कोई प्रयोजन होता है तो सीखने और सिखाने की अवस्था संभव नहीं होती। जब इसे सावधानी से देखिएः शिक्षण करने के और सीखने के अपने स्वरूप में ही विनय निहित है। आप शिक्षक भी हैं और शिक्षार्थी भी हैं। इस प्रकार ना तो कोई शिक्षार्थी है और ना शिक्षक; केवल सीखना और सिखाना है जो मेरे अंदर हो रहा है। मैं सीख रहा हूं और मैं अपने को सिखा भी रहा हूं, सारी प्रक्रिया एक है। यह महत्वपूर्ण है। इससे गहराई का एक बोध, एक शक्ति मिलती है और यदि मेरा कोई प्रयोजन है तो उसमें बाधा पड़ती है। चुकी सीखना–सिखाना महत्वपूर्ण है इसलिए दूसरी वस्तुएं गौण हो जाती हैं और इसलिए प्रयोजन समाप्त हो जाता है। जो महत्वपूर्ण हैं वह महत्वहीन को हटा देता है। इसलिए प्रयोजन समाप्त हो जाता है; और मुझे दिन –प्रतिदिन अपने प्रयोजनों की परीक्षा करनी पड़ती।

शिक्षकः यह मुझे बहुत स्पष्ट नहीं हुआ।

कृष्णमूर्तिः सर्वप्रथम, सीखने की एक प्रक्रिया है। मैंने सीख लिया है' कह कर मैं विश्राम से बैठ जाऊं, यह जीवन नहीं है। जीवन सीखने की एक प्रक्रिया है और यदि मेरे पास एक प्रयोजन है, तो मैं सीख नहीं सकता। यदि यह स्पष्ट है कि जीवन सीखने की प्रक्रिया है तो प्रयोजन का कोई स्थान नहीं होता। प्रयोजन का तभी स्थान होता है जब आप किसी वस्तु पर पहुंचने के लिए सीखने का उपयोग कर रहे हैं। इसलिए जो अनिवार्य तथ्य है वह उन सामान्य बातों को जो अनावश्यक हैं और जिनमें प्रयोजन निहित है समाप्त कर देता है।

क्या कारण है कि जिन लोगों के पास शास्त्रीय पदवी नहीं होती वे अच्छे अध्यापक बन जाते हैं? इस पर कृष्णमूर्ति का कहना है कि–

जिन लोगों के पास कोई शास्त्रीय पदवी नहीं होती है वे प्रायः बड़े अच्छे अध्यापक बनते हैं, क्योंकि वह प्रयोग के लिए तैयार रहते हैं; विशेषज्ञ ना होने के कारण वे सीखने में, जीवन को समझने में रुचि रखते हैं। एक सच्चे अध्यापक के लिए अध्यापन टेक्निक नहीं है, वह उसकी जीवन पद्धति है; एक बड़े कलाकार की भांति वह अपने सर्जनशील कार्य को छोड़ने के स्थान पर भूखों मरना अधिक पसंद करेगा। जब तक व्यक्ति में अध्यापन करने की ज्वलंत अभिलाषा ना हो उसे अध्यापक नहीं बनना चाहिए। यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति इसका पता लगाएं कि उसमें यह प्रतिभा है अथवा नहीं ;केवल जीविकोपार्जन के साधन के लिए अध्यापन में आना उचित न होगा।

जब तक अध्यापन एक व्यवसाय है, जीविकोपार्जन का एक साधन है, न की एक ऐसी वृत्ति जिसके लिए व्यक्ति समर्पित है, तब तक हमारे तथा संसार के पीछे गहरी खाई बनी ही रहेगी; हमारा घरेलू जीवन तथा हमारा काम एक दूसरे से पृथक एवं भिन्न रहेंगे। जब तक शिक्षा दूसरी नौकरियों की भांति एक नौकरी है तब तक व्यक्तियों में तथा समाज के विभिन्न वर्गों में द्वंद तथा वैर भाव अनिवार्य है तथा प्रतिद्वंद्विता व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं का निष्ठा पूर्वक अनुसरण तथा राष्ट्रीय एवं जातीय विभाजन में निरंतर वृद्धि होती रहेगी। और ये ही है जो संघर्ष तथा कभी न समाप्त होने वाले युद्धों का कारण होते हैं।

जो भी व्यक्ति शिक्षण के कार्य को अपनाता है उसे किसी विशेष प्रणाली के फंदे में नहीं फंसना चाहिए। उसे लगातार पढ़ाने के तरीकों का अवलोकन करते रहना चाहिए। ऐसा तभी संभव है जब शिक्षक तरीकों की पूजा करने की बजाय यह समझे कि तरीकों का मूल्य तभी है जब उनके उपयोग से विद्यार्थियों में स्वयं को जानने की क्षमता उत्पन्न हो रही हो।

दंड और पुरस्कार

कृष्णमूर्ति का विचार है कि शिक्षा की प्रक्रिया को दंड एवं पुरस्कार के ढांचे में नहीं बांधना चाहिए। वह शिक्षक से उम्मीद करते हैं कि वह दंड या पुरस्कार को शिक्षण प्रक्रिया का हिस्सा ना बनाएं। क्योंकि दंड या पुरस्कार व्यवहारों तथा कार्यों की अत्यंत सीमित बातों के लिए दिया जा सकता है। इसमें दंड या पुरस्कार की व्यवस्था करने वाले की समझ केंद्र में होती है। बाकी लोगों को उस समझ का बेहतरीन अनुकरण करना होता है। इसके साथ ही दंड या पुरस्कार के मॉडल से स्वकेंद्रित मनोविज्ञान को पोषण मिलता है। हमारी सारी शक्ति दंड से बचने के लिए या पुरस्कार पाने के लिए खर्च हो जाती है।

किसी कार्य के लिए पुरस्कार अथवा दंड केवल स्वकेन्द्रितता को शक्ति प्रदान करता है। किसी दूसरे के लिए कार्य करना चाहे वह ईश्वर के नाम पर हो अथवा राष्ट्र के नाम पर भय उत्पन्न करता है, और यह वह उचित कार्य का आधार नहीं हो सकता। यदि हम दूसरों के प्रति सहानुभूति पूर्ण होने में बालक की सहायता करना चाहते हैं तो हमें प्रेम का प्रयोग रिश्वत के रूप में नहीं करना चाहिए हमें उस सहानुभूति की प्रक्रिया को समझना चाहिए और उसके लिए यह आवश्यक है कि हमारे पास समय तथा धैर्य हो।

जब दूसरे के प्रति सम्मान के लिए हमें पुरस्कार मिलता है तो वास्तव में वह सम्मान है ही नहीं, क्योंकि रिश्वत अथवा दंड सम्मान की भावना से कहीं अधिक महत्वपूर्ण नहीं है और हम उसे केवल पुरस्कार देते रहते हैं अथवा दंड की धमकी देते हैं तो हम उसके अंदर लिप्सा एवं भय को प्रोत्साहन देते रहते हैं। स्वयं हमारा ही विकास इस प्रकार हुआ है कि हम सदा किसी परिणाम को प्राप्त करने के लिए ही कर्म करते हैं ,फलस्वरूप हम यह नहीं देख पाते कि कोई ऐसा भी कर्म हो सकता है जो किसी लाभ की इच्छा के बिना ही किया जाए।

दंड या पुरस्कार की नीति से प्रतियोगिता बढ़ती है जिसमें ज्ञान जानकारियां या कौशलों को दूसरों से छुपा कर अपने ही हित में लगाने की प्रवृत्ति बढ़ती है। इससे द्वेष भाव विकसित होता है। विनम्रता का अभाव हो जाता है ।शिक्षक को अपने द्वारा अपनाए जा रहे तरीकों को व्यापक मानवीय व्यवस्था के संदर्भ में समझते रहना चाहिए।

विमर्श के बिंदु

- 'शिक्षा क्या है?
- 'किस तरह से शिक्षा व्यक्ति में अन्वेषण, खोज की क्षमता को जागृत करने का साधन है।
- 'नवीन मूल्यों के सृजन में शिक्षा की भूमिका को आप किस प्रकार देखते हैं।
- 'स्वतंत्रता और व्यवस्था के सह–अस्तित्व से क्या समझ पाते हैं? इसे प्राप्त करने हेतु क्या अपेक्षित है?
- 'जीवन सीखने की और शिक्षण की सतत प्रक्रिया है। शिक्षक की भूमिका के आलोक में कृष्णमूर्ति इसे किस प्रकार देखते हैं ?
- 'क्या शिक्षा की प्रक्रिया को दंड एवं पुरस्कार के ढांचे में बांधना चाहिए?

क्रियाकलाप

अपने आसपास के किसी विद्यालय के एक संपूर्ण दिवस के क्रियाकलापों का अवलोकन करें तथा उन अवसरों को सूचीबद्ध करें जहाँ बच्चों को संवाद के माध्यम से सीखने के पर्याप्त अवसर मिल रहे हों। सूची बनाकर अपने कक्षा–कक्ष में बड़े समूह में चर्चा करें।

समेकन तथा सीखने–सिखाने में सहयोगी ई–संसाधन

इस इकाई में विभिन्न विचारकों के शिक्षा दर्शन का अध्ययन करने के उपरांत हमने समझा कि किस प्रकार शिक्षा और समाज में एक बहुत ही गाढ़ा अंतर्संबंध है और सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया में शिक्षा किस प्रकार एक महत्वपूर्ण कारक है। गांधी टैगोर, जाकिर हुसैन, के विचारों से जहां हमने यह जाना कि किस प्रकार शिक्षा के जरिए ही सामाजिक सुधार की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सकता है। वहीं ज्योतिबा फुले के विचारों को समझने पर यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार शिक्षा भारतीय समाज के विशेष संदर्भ में एक बाधाकारी तत्व भी बनती है जब इसे कुछ विशेष समूह तक सीमित रखने के प्रयास किए जाते हैं। गिजूभाई जहां कक्षा–कक्ष में संचालित शिक्षा प्रक्रिया के संदर्भ में उभरे अनेक प्रश्नों व समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए शिक्षा प्रक्रिया के बहुआयामी परिपेक्ष्यों पर समझ को विकसित करते हैं, मारिया मांटेसरी अपनी प्रयोग धर्मी शिक्षण पद्धति के साथ–साथ बच्चों को समझने और वातावरण निर्माण पर जोर देती है। वहीं जॉन डीवी जीवन की आवश्यकता के रूप में शिक्षा को रेखांकित करते हुए औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के बीच संतुलन की वकालत करते हैं। जे. कृष्णमूर्ति शिक्षा में संवाद के साथ–साथ शिक्षा के कार्य और लक्ष्यों की ओर इस निमित्त प्रयोगों की बात करते हैं।

इकाई की विस्तृत समझ के लिए निम्नलिखित ई–संसाधनों का भी उपयोग जरूर करें :

- इकाई के विषयवस्तु पर निर्मित आई.सी.टी./ऑडियो–विजुअल/एनिमेशन सामग्री।
- प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित डिजिटल सामग्री, जो इस इकाई से सम्बंधित हों।
- इकाई के विषयवस्तु से सम्बंधित फिल्म, डॉक्युमेंटरी, प्रेजेन्टेशन, वेब–रिसोर्स, ओपेन रिसोर्स, इत्यादि।

मूल्यांकन

1. गांधी जी ने अपनी हिंद स्वराज पुस्तक में किन–किन मुद्दों पर चर्चा की है?
2. आप उन में से किन मुद्दों को आज के संदर्भ में अति महत्वपूर्ण मानते हैं?
3. आप हिंद स्वराज के किन–किन मुद्दों से सहमत या असहमत हैं? क्यों
4. दिवास्वप्न में जिस तरह के विद्यालय का वर्णन है उसकी विशेषताओं का विश्लेषण करें।
5. क्या आप किसी ऐसे शिक्षक या शिक्षिका के बारे में जानते हैं जो दिवास्वप्न के शिक्षक के तरह हो।
6. आप स्वयं दिवास्वप्न के शिक्षक की तरह कैसे बन सकते हैं? विचार करें ।
7. रविंद्र नाथ टैगोर के अनुसार हमारी शिक्षा में बाल्यकाल से ही 'आनंद के लिए स्थान नहीं होता है' जो नितांत आवश्यक है। वर्तमान संदर्भ में इसकी समीक्षा करें
8. रविंद्र नाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन की चर्चा करें।
9. मारिया मांटेसरी के अनुसार बच्चों के शिक्षण में शिक्षक की मानसिक और भौतिक तैयारी महत्वपूर्ण है। स्पष्ट करें।
10. 'शिक्षा का यही नया मार्ग है मस्तिष्क के विकास में उसकी सहायता करना और उसकी शक्तियों तथा क्षमताओं को सुदृढ़ बनाना' मारिया मांटेसरी के इस कथन की विवेचना करें।
11. शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक तरीकों के बीच संतुलन कैसे कायम किया जाए स्पष्ट करें।
12. सामाजिक जीवन के लिए शिक्षा का वही महत्व है जो दैनिक जीवन के लिए पोषण और प्रजनन का। जॉन डीवी के इस कथन की समीक्षा करें।
13. डॉक्टर जाकिर हुसैन के शैक्षिक दर्शन की संक्षिप्त चर्चा करें।
14. नारी शिक्षा पर ज्योतिबा फुले के योगदान की चर्चा करें।
15. जानवरों की तुलना में इंसान के बच्चे को विकसित होने में अधिक समय क्यों लगता है? डॉक्टर जाकिर हुसैन के दर्शन के आधार पर इसकी पुष्टि करें।
16. फुले द्वारा हंटर कमीशन के सामने दिए गए व्याख्यान के संदर्भ में वर्तमान की शिक्षा व्यवस्था व राज्य के अंतर्संबंध की समीक्षा कीजिए।
17. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा के प्रमुख कार्य कौन से हैं? किन आधारों पर आप इनकी समीक्षा करेंगे।
18. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षक को विद्यार्थी के किन गुणों में विकास करनी चाहिए?

इकाई 5

पाठ्यचर्या की समझ: बच्चों तथा समाज के सन्दर्भ में

परिचय

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि पाठ्यचर्या क्या है और यह विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों का निर्धारण कैसे करती है? समाज की आकांक्षायें उसे कैसे प्रभावित करती है और पाठ्यचर्या उसे कैसे पूरा करती है? आशय यह है कि विद्यालय में सीखने–सिखाने की विषयवस्तु क्या हो और इस विषयवस्तु के सन्दर्भ में, वर्ग कक्ष में क्या हो – क्या सिर्फ पढ़ाई–लिखाई हो या कुछ और गतिविधियां भी, जो सीखने वालों के व्यक्तित्व विकास के लिये आवश्यक है। वर्ग कक्ष में सीखने वालों की भागीदारी कैसी हो? क्या वे मौन श्रोता या शिक्षक द्वारा दिये गये कार्यों को पूरा करने वाले हैं या वर्ग कक्ष में ज्ञाननिर्माण–प्रक्रिया में सक्रिय व बराबर के भागीदार? सिखाने वालों से उनका संबन्ध कैसा हो? सीखने के लिये निर्धारित लक्ष्यों के आकलन का तरीका क्या हो? साथ ही यह भी समझेंगे कि उपरोक्त सभी सवाल पाठ्यचर्या से कैसे जुड़े हुए हैं?

इन मुद्दों के संन्दर्भ में वर्ग कक्ष में क्या हो रहा है, यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि विद्यालय और वर्ग कक्ष ही वह इकाई है, जहाँ पाठ्यचर्या उसके दैनिक जीवन में मूर्तरूप लेती है। यदि विद्यालय व वर्ग–कक्ष में हो रही गतिविधियाँ पाठ्यचर्या के अनुरूप नहीं हो पा रही है तो हमें उपरोक्त वर्णित मुद्दों के आधार पर अपने विद्यालय की पाठ्यचर्या का निर्माण करना चाहिए। और तदनरूप,विद्यालय व वर्गकक्ष का संचालन करना चाहिए और अपने समाज की आकांक्षाओं व जरूरतों को पूरा किया जाना चाहिए।

इस इकाई में आप पाठ्यचर्या की अवधारणा की समझ विकसित कर सकेंगे। साथ ही पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों के अन्तर्संबंधों की समझ बना सकेंगे। पुनः आप प्रभावी अध्यापन व अधिगम में पाठ्यचर्या की भूमिका को समझ सकेंगे। आप अपने

विद्यालयी अनुभवों को समृद्ध करते हुये, स्थानीय पाठ्यचर्या की समझ विकसित करते हुए विद्यालयीय पाठ्यचर्या निर्माण की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

इससे पूर्व हमने जाना कि बच्चे, बचपन और उनका समाजीकरण क्या है? समाजीकरण किसे कहते हैं? प्राथमिक व द्वितीयक समाजीकरण के लिए किस प्रकार समाज ने विद्यालय नामक संस्था स्थापित की है जहां शिक्षा का शैक्षिक गतिविधियों के द्वारा मानव का समाजीकरण एवं सांस्कृतिक विकास संभव हो पाता है। विद्यालय में चलने वाली औपचारिक व अनौपचारिक गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं के माध्यम से समाजीकरण की प्रक्रिया संचालित होती है। शिक्षा की विकास यात्रा में विभिन्न आयोगों के द्वारा ऐसी सिफारिशें की गई जिनके द्वारा शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल करने के प्रयास किए जा रहे हैं। स्थानीय कला, साहित्य व संस्कृति को शिक्षा के स्रोत के रूप में प्रयोग की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है ताकि सीखने सिखाने की प्रक्रिया में अधिकाधिक स्थानीय संस्कृति प्रभावी बन सके। इसके लिए अधिक से अधिक विद्यालय व स्थानीय समुदाय के सांस्कृतिक बौद्धिक व स्थानीय परिवेश की समझ को साथ में लेते हुए ज्ञान सृजन पर जोर दिया जाना चाहिए।

पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रमः अवधारणा तथा विविध आधार

हमारे देश में शिक्षकों के मध्य पाठ्यचर्या पर विमर्श बहुत पुराना नहीं है। शिक्षकों के मध्य यह विमर्श हाल ही में उभरा है। इसलिए हम सबके लिए व आपके लिए भी पाठ्यचर्या पर एक समझ बनाना थोड़ा मुश्किल काम लगता है। सामान्यतः हम पाठ्यपुस्तक को कक्षा में पढ़ा देना ही अपना एकमात्र काम मानते हैं और उसी को पाठ्यचर्या की परिपूर्णता भी मान लेते हैं।

आपको क्या लगता है कि पाठ्यपुस्तक पढ़ा देना या ज्यादा से ज्यादा पाठ्यक्रम पूरा कर लेना ही पाठ्यचर्या है या इसके दायरे में और कुछ भी शामिल होता है? आगे बढ़ने से पहले अपने साथियों से चर्चा करें।

रमेश एक उच्चतर प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक है, वे मानते हैं कि कक्षा में पाठ्यसामग्री/विषयवस्तु को पढ़ाने के साथ–साथ उन्हें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इससे बच्चों को क्या फायदा होगा। अर्थात् वे विषयवस्तु को पढ़ाने के साथ–साथ पढ़ाने के उद्देश्यों को भी पाठ्यचर्या का हिस्सा मानते हैं।

यहाँ हम देखते हैं कि पूर्व में कहीं गई बात में एक और नया बिन्दु 'पढ़ाने का उद्देश्य' जुड़ गया है, फिर भी यह अपने आप में पूर्ण नहीं है।

पाठ्यचर्या के संबंध में दो–तीन सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण है। पाठ्यचर्या क्या होती है? यह विद्यालय के क्रियाकलापों को कैसे प्रभावित करती है? या विद्यालय की परिस्थिति से पाठ्यचर्या कैसे प्रभावित होती है और क्या शिक्षक को इसके बारे में जानना जरूरी है?

पहले सवाल का सैद्धान्तिक जवाब यह हो सकता है कि विद्यालय में किए जाने वाले प्रत्येक कार्य का दार्शनिक/सैद्धान्तिक आधार पाठ्यचर्या होती है। मौटे तौर पर हम चार दार्शनिक आधारों को पाठ्यचर्या के अन्तर्गत शामिल करते हैं। शिक्षा या विद्यालय के लक्ष्य/उद्देश्य क्या है? इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्या पढ़ाया जाएगा या किस प्रकार के अनुभव प्रदान किए जाएँगे? (पाठ्यक्रम)। इन अनुभवों को कैसे प्रभावी रूप से प्रदान

किया जाएगा? (शिक्षणशास्त्र) व अन्त में इन उद्देश्यों की प्राप्ति हुई या नहीं इसकी जाँच (मूल्यांकन)।

इससे यह बात भी स्पष्ट होता है कि विद्यालय के समस्त कार्य पाठ्यचर्या के दायरे में आते हैं, उसी से निर्धारित, संचालित होते हैं, वहीं विद्यालय की परिस्थितियाँ पाठ्यचर्या निर्धारण को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए यदि विद्यालय के पास खेल का मैदान नहीं है, तो खेल वहाँ की पाठ्यचर्या का हिस्सा नहीं हो सकता है या विद्यालय की परिधि के समाज में समृद्ध स्थानीय ज्ञान परम्पराएँ है, तो वे विद्यालय की पाठ्यचर्या का हिस्सा होंगी।

तीसरा सवाल है कि शिक्षक को पाठ्यचर्या के बारे में जानना क्यों जरूरी है? यदि हम शिक्षक को एक ऐसा इंसान मानते हैं, जिसे एक किताब दे दी और यह बता दिया कि कक्षा में जाकर यह पढ़ा दीजिए, आपका काम सोचने का नहीं है, तब तो शायद उसे पाठ्यचर्या के बारे में नहीं जानना चाहिए, लेकिन यदि हम मानते हैं कि शिक्षा द्वारा बच्चे को विवेकशील, चिंतनशील नागरिक बनाना है, और शिक्षक को भी ऐसे ही दृष्टिकोण से देखते हैं, तब शिक्षक को पाठ्यचर्या व उसके मूल सिद्धान्तों को समझना आवश्यक हो जाता है।

यहाँ यह मुद्दा भी महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय समाज बहुत जटिल विविधता और संस्कृतियों वाला समाज है, इसलिए हमारे समाज में परिप्रेक्ष्यों, आदर्शों व आकांक्षाओं में भी पर्याप्त भिन्नताएँ है। ऐसे में पाठ्यचर्या की आधारभूत मान्यताओं का चयन मुश्किल हो जाता है। इसीलिए विद्यालयों व उनकी परिधि में समाज की परिस्थितियों, आकांक्षाओं के अनुरूप प्रत्येक विद्यालय की पाठ्यचर्या अलग–अलग हो सकती है। हाँ, यह संभव है कि वह लिखित रूप में ना हो। इसी संदर्भ में बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2008 (BCF 2008) कहता है कि ''वास्तविक पाठ्यचर्या सचेतन या अचेतन रूप से विद्यालय के विशिष्ट संदर्भ में ही आकार ग्रहण करती है।''

उपरोक्त बात से एक सवाल यह उभरता है कि यदि विद्यालय की विशिष्ट परिस्थिति, संदर्भ के अनुरूप सबकी अलग–अलग पाठ्यचर्या होती है, तो फिर एक राष्ट्रीय या राज्य पाठ्यचर्या की क्या आवश्यकता है, या क्या वह बनाई जा सकती है? इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि किसी भी लोकतांत्रिक राज्य में समानता का प्रमुख पहलू सबको समान स्तर की बेहतर शिक्षा उपलब्ध करवाना है, और इसके लिए एक सामान्य पाठ्यचर्या योजना/ढाँचा जरूरी हो जाता है, हाँलाकि यह एकमात्र जरूरत नहीं है। अतः विद्यालयों की अलग–अलग पाठ्यचर्याएँ होते हुए भी एक राष्ट्रीय या राज्य पाठ्यचर्या ढाँचे का होना जरूरी है। इस राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढाँचे में ऐसी मूल मान्यताएँ शामिल की जाती है, जो सभी विद्यालयों से समान रूप से जुड़ती हैं। वे मूल मान्यताएँ निम्नलिखित हैंः

- ऐसी मान्यताएँ जो मनुष्य व समाज के बारे में हमारी समझ को दर्शाती हो, जैसे व्यक्ति क्या है? जीवन का उद्देश्य क्या है? मनुष्य व समाज का अन्तर्सबंध क्या है? इत्यादि।
- ऐसी मान्यताएँ जो इंसान की समझ/ज्ञान की प्रकृति (Nature of Knowledge) से संबंधित हो, जैसे ज्ञान क्या है? विषयों की प्रकृति क्या है? कौशल क्या है? इत्यादि।
- ऐसी मान्यताएँ जो इंसान के सीखने के बारे में हो, सीखने वाले के बारे में हो, जैसे सीखना क्या है? इंसान सीखता कैसे है? सीखने में सीखने वाले की परिस्थिति, संदर्भ का क्या स्थान है? इत्यादि।

इन्हीं मूल मान्यताओं के आधार पर पाठ्यचर्या की एक राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय रूपरेखा/ढाँचा निर्धारित किया जाता है। इसी ढाँचे को बेहतर तरीके से समझने के लिए हम राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 व बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2008 ढाँचे को साररूप में देखेंगे।

क्रियाकलाप

- यदि आपको स्वयं के विद्यालय के लिये 'विद्यालयी पाठ्यचर्या' बनानी हो तो उसमें क्या–क्या शामिल करना चाहेंगे। बिन्दुवार स्पष्ट करें?

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005

अब हम राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 के विभिन्न अयामों को समझने का प्रयास करते है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 इसे हम एनसीएफ 2005 के नाम से भी जानते है। यह पाठ्यचर्या पाँच अध्यायों में विभाजित है–

(1) परिप्रेक्ष्य,
(2) सीखना और ज्ञान,
(3) पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्थायें और आकलन,
(4) विद्यालय और कक्षा का वातावरण,
(5) व्यवस्थागत सुधार।

आइए हम देखें कि एनसीएफ–2005 के विभिन्न अध्यायों में विचारों का सारतत्व क्या हैं?

नोटः– राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) द्वारा दिये गये सुझावों के आधार पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2022 तैयार की गई है। इसके अनुसार पाठ्यक्रम में चार क्षेत्र शामिल किये गये हैं। प्रारम्भिक बचपन और शिक्षा, शिक्षक शिक्षा, स्कूली शिक्षा और वयस्क शिक्षा।

अध्याय 1 : परिप्रेक्ष्य में पाठ्यचर्या अपनी आवश्यकताओं, लक्ष्यों और उद्देश्यों को, शैक्षिक अतीत व अतीत की पाठ्चर्यायों का सार–संकलन करते हुये एवं वर्तमान की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये रेखांकित करती है और शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था को बहुलतावादी समाज में मजबूती प्रदान करने और 'समानता के लक्ष्य के लिये शिक्षा' और 'शिक्षा बिना बोझ के' के सूत्र को अपनाते हुये, भावी पाठ्यचर्या के लक्ष्यों और उद्देश्यों को इन शब्दों में प्रस्तुत किया– शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पाठ्यचर्या की परिकल्पना ऐसी संरचना के रूप में की गई है, जो इन आवश्यक अनुभवों को स्पष्ट रूप से मुखरित कर सके इसके लिए, इसे कुछ बुनियादी प्रश्नों को सम्बोधित करना होगाः (क) स्कूल किन शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिश करें? (ख) इन उद्देश्यों के लिए कौन से शैक्षिक

अनुभव कारगर होंगे? (ग) ये शैक्षिक अनुभव किस प्रकार सार्थक रूप से नियोजित किए जा सकते हैं? (घ) हम कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं कि ये शैक्षिक उद्देश्य वाकई पूरे हो रहे हैं?

– **एनसीएफ–2005**

एनसीएफ–2005 इन पुनरावलोकनों से प्राप्त शैक्षिक मूल्यों और वर्तमान वैश्विक चुनौतियों को ध्यान में रखते हुये – शिक्षा के सौर्वभौमिकरण व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करना भावी पाठ्यचर्या का एक जरूरी कार्यभार है और संविधान में उल्लिखित मूल्यों –सामाजिक न्याय, समानता और धर्मनिरपेक्षता पर आधारित पाठ्यचर्या अभ्यास को तैयार करना व पाठ्यचर्या सुधार से सुसंगत व्यवस्थागत परिवर्तन करना भावी पाठ्यचर्या का मूलभूत उददेश्य है। अपने मूल उद्देश्यों को निर्धारित करने के साथ ही पाठ्यचर्या अपने मार्गदर्शक सिद्धान्तों का निर्धारण इन शब्दों में करती हैः–

हमें व्यवस्थागत मुद्दों पर ध्यान देने व उन्हें नियोजित करने की आवश्यकता है जिससे हम उन अनेक अच्छे विचारों को कार्यान्वित कर सकें जिनके बारे में पहले भी बात की जा चुकी है। इनमें सबसे अहम हैं:

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना,
- पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चित करना,
- पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि वह पाठ्यपुस्तक–केंद्रित बन कर रह जाए,
- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना, और
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य–व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों।

पाठ्यचर्या एक सफल लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में देश का मूल्यांकन करते हुये लोकतांत्रिक मूल्यों को विकसित करने और संविधान प्रदत्त मूल्यों को पूरा करने व विकसित करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को इन शब्दों में रेखांकित करता है – अगर हमें लोकतंत्र को शासन चलाने की प्रणाली मात्र नहीं बल्कि एक जीवन शैली के रूप में पोषित करना है तो, संविधान में निहित मूल्य सर्वोपरि महत्त्व के हो जाते हैं।

विमर्श के बिन्दु :

- विद्यालय में पढ़ाने के दौरान आपको राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 के पाँच मार्गदर्शक सिद्धान्त किस प्रकार मदद करेंगे?
- बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास में आपकी क्या भूमिका हो सकती है?

अध्याय 2 : सीखना और ज्ञान

पाठ्यचर्या का दूसरा अध्याय सीखना और ज्ञान है। पाठ्यचर्या सीखने की बालकेन्द्रित अवधारणा और बच्चों में स्वाभाविक रूप से ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के समूचे परिदृश्य को स्पष्ट करते हुये कहती है कि, ''बच्चों को स्वाभाविक रूप से सीखने वालों की तरह पहचाने जाने की आवश्यकता है जो बच्चों में अपनी गतिविधियों के फलस्वरूप पैदा होने वाले ज्ञान को स्थापित करता है। आम दिनचर्या में, विद्यालय से बाहर हम बच्चों की जिज्ञासा, खोजी व लगातार प्रश्न पूछने की प्रवृति का आनंद लेते हैं। बच्चे अपने आस–पास की दुनिया से बहुत ही सक्रिय रूप से जुड़े रहते हैं। वे खोज–बीन करते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं, चीजों के साथ कार्य करते हैं, चीजें बनाते हैं और अर्थ गढ़ते हैं। बचपन विकास और निरंतर बदलाव की अवस्था है जिसमें शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का पूर्ण विकास शामिल होता है। इस विकास में वयस्क समाज में समाजीकृत होना भी शामिल है जिसमें बच्चा संसार का ज्ञान ग्रहण करता है और नए ज्ञान का सृजन भी करता है। बच्चा अपने आप को दूसरों से जोड़ कर देखना सीखता है जिससे उसकी समझ बनती है, वह कार्य कर पाता है और रूपांतरण कर पाता है।''

विद्यार्थी को संदर्भ में रखना – सक्रिय विद्यार्थी की परम्परागत रूप का जिक्र करते हुये कहती है कि, प्रायः ''अच्छे विद्यार्थी की जिस धारणा को प्रोत्साहित किया जाता है उसमें अध्यापकों की आज्ञा का पालन, नैतिक चरित्र और अध्यापक के शब्दों को 'आधिकारिक' ज्ञान की तरह स्वीकारना शामिल है।'' जबकि सीखना अपने आप में एक सक्रिय व सामाजिक गतिविधि है। पाठ्यचर्या का वर्तमान सरोकार बच्चों को सार्थक अनुभव देने वाली तथा समाहित करने वाली शिक्षा प्रदान करने का है। पाठ्यपुस्तक संस्कृति से दूर हटने का प्रयास भी है जिसके लिए यह भी ज़रूरी होगा कि हम विद्यार्थियों व सीखने की प्रक्रिया के बारे में जो सोचते हैं उसमें मूलभूत बदलाव लाएँ। अतः बाल–केंद्रित शिक्षा के तात्पर्य व निहितार्थ को गहराई से देखने की आवश्यकता है।

विमर्श के बिन्दु :

- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या कहती है कि 'बच्चे को स्वाभाविक रूप से सीखने वाले के तौर पर पहचाने जाने की जरूरत है।' इस कथन से आप क्या समझते हैं?

अध्याय 3 : पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्थाएँ और आकलन

अध्याय तीन पाठ्यचर्या के क्षेत्र का है अर्थात् विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषय, उनकी प्रकृति और शिक्षण के तरीके एवं आकलन के तौर–तरीकों से संबंधित है। पाठ्यचर्या के क्षेत्र निर्धारण के अंतर्गत वर्तमान सामाजिक आकांक्षाओं को पूरा करने और आर्थिक विकास के साथ व्यक्तिगत विकास के आयाम भी जुड़े होते हैं। पाठ्यचर्या आर्थिक, सामाजिक व व्यक्तिगत विकास के लिए होती है, इन तीनों का बुनियादी महत्व है। यह सुनिश्चित करने में स्कूलों की महत्वपूर्ण भूमिका है जिससे आत्मनिर्भरता, शांति–आधारित मूल्यों व स्वस्थ संस्कृति में बच्चों का समाजीकरण हो।

अध्याय 4: विद्यालय एवं कक्षा का वातावरण

विद्यालय को एक शैक्षिक समुदाय माना जाता है जहाँ शिक्षार्थी व शिक्षक मिलकर औपचारिक–अनौपचारिक अंतःक्रियाएँ करते हैं। विद्यालय व कक्षा के वातावरण को कैसा बनाया जाए कि इस शैक्षिक समुदाय में बच्चा खुश रहे, सुरक्षित महसूस करे और सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को बढ़ावा मिले, इसकी चर्चा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज के अध्याय चार में की गई है।

भौतिक वातावरण– पाठ्यचर्या कहती है कि विद्यालय के शैक्षिक वातावरण के साथ–साथ भौतिक वातावरण का भी शैक्षिक महत्व है। भवन का उपयुक्त डिजाइन, खेल का मैदान, दीवारों का इस्तेमाल जिनमें बच्चों द्वारा किए गए कार्यों के नमुने लगे हो, भी शैक्षिक वातावरण निर्मित करने के लिए आवश्यक है। कक्षा में फर्नीचर ऐसा हो जो बच्चों के लिए आरामदायक हो और शिक्षक व विद्यार्थी को आपस में जुड़ने में बाधक ना बने। कक्षा के स्थान का अधिकतम शैक्षिक संसाधन के रूप में उपयोग करना चाहिए जैसे– कक्षा की दीवारों के निचले हिस्सों पर काला रंग करके बच्चों के लिखने के लिए स्थान बनाना, कक्षा के कोनों में पढ़ने की सामग्री रखना, कहानियों की किताबें रखना आदि।

समानता के वातावरण का पोषण– विद्यालय का वातावरण ऐसा हो जिसमें समानता, विविधता व बहुलता के प्रति सम्मान का भाव हो। विद्यालय में सीखने का सक्षम वातावरण तभी बन सकता है जब वहाँ भय ना हो, बराबरी व समता हो और इसके लिए शिक्षक को कोई विशेष प्रयास न करके केवल सभी बच्चों से बराबरी व भेदभाव रहित व्यवहार करना होता है। कक्षा का वातावरण ऐसा हो जहाँ बच्चे प्रश्न पूछ पाएँ, शिक्षक के साथ संवाद स्थापित कर पाए। बच्चे सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा तभी बन पाते हैं जब वे अपने अनुभवों को कक्षा में रख पाए।

समावेशी वातावरण :

सभी विद्यालयों में समावेशी वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी बच्चों, खासकर शारीरिक या मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों, समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों और कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के सबसे ज्यादा फायदे मिलें। अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने के मौके और सहपाठियों के साथ बाँटने के मौके देना बच्चों में प्रोत्साहन और जुड़ाव को पोषण देने के शक्तिशाली तरीके हैं।

अनुशासन :

अधिकांश विद्यालय नियमों व अनुशासन के अनुसार बच्चों से एक तरह के उपयुक्त व्यवहार की अपेक्षा करते है। सख्त अनुशासन द्वारा नियन्त्रण व व्यवस्था बनाए रखना चाहते हैं जिसमें सजा व पुरस्कार की भूमिका होती है। पाठ्यचर्या दस्तावेज मानता है कि यह गलत है इसका बच्चों के संपूर्ण विकास, आत्मसम्मान व रूचि पर प्रभाव पड़ता है। अतः बच्चों में आत्मानुशासन का मूल्य विकसित करना होगा। अनुशासन ऐसा होना चाहिए जो काम के संपन्न होने में मदद करे और जो बच्चों की सक्षमता को बढ़ाए। अनुशासन शिक्षक एवं बच्चे

दोनों के लिए आज़ादी, विकल्प एवं स्वायत्तता बढ़ाने वाला होना चाहिए। यह ज़रूरी है कि बच्चों को नियम विकसित करने की प्रक्रिया में शामिल किया जाए ताकि वे नियम के पीछे के तर्क को समझें और उसके पालन की अपनी ज़िम्मेदारी को भी महसूस करें।

यह अध्याय यह भी बताता है कि विद्यालय की ज्ञान प्रक्रियाओं में समुदाय को भी शामिल करने की आवश्यकता है इससे विद्यालय व समुदाय के मध्य नजदीकी बढ़ेगी।

अध्याय 5 : व्यवस्थागत सुधार

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 में पहली बार 'व्यवस्थागत सुधार' को भी पाठ्यचर्या के ढाँचे का हिस्सा बनाया गया। यह कहा गया कि पूरी पाठ्यचर्या में जिन सामाजिक विवेक से युक्त व शिक्षा के लक्ष्यों से प्रेरित राष्ट्रीय आयामों का खाका खींचा गया है, जिस प्रकार शिक्षार्थी को केन्द्र में रखकर ज्ञान सृजन की बात की गई है, ऐसे दृष्टिकोण को व्यवस्थागत सुधारों के द्वारा पोषित किया जाना चाहिए। व्यवस्थागत सुधारों के निम्नलिखित बिन्दूओं की चर्चा की गई है :–

गुणवत्ता के सरोकार :

व्यवस्थागत सुधार का एक प्रमुख लक्षण है, गुणवत्ता की चिंता जिसका मतलब हुआ कि संस्था में अपनी कमज़ोरियों की पहचान कर नयी क्षमताओं का विकास करते हुए खुद को सुधारने की क्षमता हो। गुणवत्ता के संबंध में पाठ्यचर्या के स्तर पर हमें सूचना को ज्ञान मानने की प्रवृति पर नियन्त्रण करना होगा, उत्पादक कार्य को ज्ञान प्राप्ति व कौशल निर्माण के लिए शिक्षाशास्त्रीय माध्यम के रूप में देखना होगा।

शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार–संबंधी प्रयास तभी सफल हो सकते हैं जब उसके साथ–साथ सामाजिक न्याय का भी प्रसार हो। इसके लिए जरूरी है कि समान स्कूल व्यवस्था विकसित की जाए ताकि देश के अलग–अलग क्षेत्रों की तुलनीय गुणवत्ता भी सुनिश्चित हो सके क्योंकि जब अलग–अलग पृष्ठभूमियों के बच्चे साथ–साथ पढ़ते हैं तो इससे शिक्षण की गुणवत्ता में विकास होता है और स्कूल का माहौल समृद्ध होता है।

गुणवत्ता सुनिश्चित करने में अकादमिक योजना निर्माण की भी महत्ती भूमिका है। हमारे यहाँ अकादमिक योजना राज्य स्तर पर बनती है और सभी स्कूल उसका पालन करते हैं जबकि सार्थक अकादमिक योजना प्राचार्यों और शिक्षकों की सहभागिता से ही तैयार हो सकती है। स्कूल स्तर पर ही योजना बनाने के महत्त्व पर कोठारी कमीशन ने बल दिया था जब उसने इसकी ज़रूरत रेखांकित की थी कि हर स्कूल अपनी 'संस्थानिक योजना' बनाए।

शिक्षक–शिक्षा :

वर्तमान में हमारे यहाँ शिक्षक–शिक्षा की जमीनी हकीकत सोचनीय है। कोठारी आयोग (1964–66) ने इस पर ज़ोर दिया है कि शिक्षक शिक्षा को अकादमिक जीवन की मुख्य धारा से जोड़ा जाना चाहिए, लेकिन शिक्षक–शिक्षण संस्थाएँ अभी तक संकीर्णता से बाहर नहीं निकल पाई हैं। अतः, शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रमों का इस प्रकार पुनर्सूत्रीकरण एवं सशक्तिकरण किया जाए ताकि शिक्षक निम्नलिखित रूपों में अपनी भूमिका निभा सकेः

- अध्ययन–अध्यापन की परिस्थितियों को शिक्षकों के लिए उत्साहवर्धक, सहयोगी और मानवीय बनाया जाए ताकि विद्यार्थियों को अपनी शारीरिक तथा बौद्धिक संभावनाओं के

पूर्ण विकास का मौका मिले। साथ ही,जिम्मेदार नागरिक के रूप में अपनी भूमिका निभाने के लिए वांछनीय सामाजिक और मानवीय मूल्यों के विकास का भी अवसर मिल सके;

- शिक्षक को ऐसे समूह का हिस्सा होना चाहिए, जो लगातार सामाजिक और विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पाठ्यचर्या सुधार में सजगता से लगे।
- शिक्षक–शिक्षा का इस प्रकार पुनर्सूत्रीकरण हो कि इसमें ज्ञान निर्माण में विद्यार्थी की सक्रिय भागीदारी, अधिगम के साझे संदर्भ, ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षक के लिये उत्प्रेरक के रूप में काम करे, इत्यादि पर बल दिया जाए। शिक्षक–शिक्षा का दृष्टिकोण बहु–अनुशासनात्मक हो, उसमें सिद्धांत और व्यवहार अंतर्भूत हों तथा इसमें आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य विकसित करने की दृष्टि से समकालीन भारतीय सामाजिक मुद्दों पर बातचीत हो।
- शिक्षक की भूमिका में एक बड़ी तब्दीली आई है। उसे अब तक ज्ञान के स्रोत के रूप में केंद्रीय स्थान मिलता रहा है, वह सीखने–सिखाने की समूची प्रक्रिया का संरक्षक और प्रबंधक रहा है। अब उसकी भूमिका ज्ञान के स्रोत के बदले एक सहायक की होगी जो सूचना को ज्ञान/बोध में बदलने की प्रक्रिया में विविध उपायों से शिक्षार्थियों को उनके शैक्षणिक लक्ष्यों की पूर्ति में मदद करे।
- शिक्षक–शिक्षा में भाषिक दक्षता को केंद्र में रखा जाए और शिक्षक–शिक्षा का समेकित मॉडल विकसित किया जाए ताकि शिक्षकों के पेशेवर दक्षता को मज़बूत किया जा सके।

परीक्षा सुधार :

वैसे तो परीक्षा प्रणाली में सुधार की बात सभी पाठ्यचर्या दस्तावेजों व शिक्षा नीति दस्तावेजों में की गई है लेकिन 2005 की पाठ्यचर्या में इसे प्रमुखता से रेखांकित किया गया है और एक मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में यह कहा गया कि परीक्षा को लचीला बनाना और उसे कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना होगा। वर्तमान परीक्षा प्रणाली से बच्चों में असफलता या अच्छे प्रदर्शन का तनाव व्याप्त रहता है। अतः निम्नलिखित बिन्दुओं पर बल देकर परीक्षा के कारण होने वाले तनाव में कमी लाई जा सकती है और सफलता बढ़ाई जा सकती हैः–

- विषयवस्तु के परीक्षण के बदले शिक्षार्थियों की समस्या समाधान तथा समझ को जाँचने की दिशा में बदलाव। इसके लिए प्रश्न–पत्र के वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन आवश्यक है।
- लघु परीक्षाओं की ओर बदलाव।
- परीक्षा की समय सीमा में लचीलापन।
- एक ऐसी नोडल एजेंसी की स्थापना जो प्रवेश परीक्षाओं के डिज़ाइन बनाए तथा उन्हें संचालित कर सके।

बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2008 (बीसीएफ 2008) :

बिहार की पाठ्यचर्या 2008, का निर्माण करते हुये यह बात स्पष्ट थी कि एनसीएफ 2005 के मूल अवदानों को स्वीकार करते हुये बिहार की विशिष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक व भौगालिक स्थितियों के कारण यह महसूस किया गया कि एक ग्रामीण स्कूली पाठ्यचर्या का होना आवश्यक है। बिहार राज्य देश के सबसे पिछड़े राज्यों में से एक है, आबादी के लिहाज से यह उत्तर प्रदेश व महाराष्ट्र के बाद तीसरा सबसे बडा राज्य है जहाँ लगभग दस करोड़ से ऊपर आबादी है। इस आबादी की 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है। आर्थिक रूप से पिछड़ा होने के बावजूद सांस्कृतिक व भाषा की दृष्टि से यह बेहद् समृद्ध है बल्कि यह कहें कि भारत का यह छोटा प्रतिरूप है। लोककलाओं, लोकसंस्कृति व भाषायी विविधता का शिक्षा से सीधा रिश्ता है और इसका इस्तेमाल व्यापक रूप से होना चाहिए। बीसीएफ 2008 निर्माण की मूलधारणा यही थी। हम यहाँ पर बीसीएफ के उन अवदानों की चर्चा करेंगे जिनका उल्लेख एनसीएफ 2005 में नहीं है या पर्याप्त जोर के साथ नहीं है। चूँकि बीसीएफ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के मूल अवदानों को स्वीकार करता है इसलिये यहाँ अनावश्यक दोहराव नहीं करेंगे।

बिहार पाठ्यचर्या 2008 में कुंल आठ अध्याय है :–

1. पृष्ठभूमि और संदर्भ,
2. बच्चा, उसका विकास और सीखना,
3. अध्यापक –भूमिका, तैयारी और समर्थन,
4. पाठ्यचर्या संबंधी मुद्दे, क्षेत्र, अवस्थाएँ,
5. ग्रामीण शिक्षा के लिये पाठ्यचर्या,
6. पाठ्यचर्या के लिये क्रियाशीलन,
7. विद्यालय की पाठ्यचर्या,
8. व्यवस्थापरक सुधार।

अध्याय 1 – पृष्ठभूमि व संदर्भ :

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पर विभिन्न परिचर्चा के बाद यह निर्णय लिया गया कि इस बात की संभावना तलाशी जाए कि बिहार राज्य भी अपनी पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार कर सकें। संभावना की तलाश, हकीकत में तब्दील हुई 13–17 मार्च 2008 की अंतिम कार्यशाला में जहाँ बिहार राज्य की पाठ्यचर्या की रूपरेखा का संशोधित रूप तैयार हुआ। समिति के सामने पहला प्रश्न यह उठा कि आखिर राज्य स्तरीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा क्यों तैयार की जाये, विशेषतया तब जबकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा को एनसीईआरटी ने सारे देश में विस्तृत संपर्क व परिचर्चा के बाद तैयार किया है। बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा के प्राक्कथन और फिर पहले अध्याय में इसके औचित्य पर प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः सैद्धान्तिक रूप में डॉ0 कोठारी से डॉ0 कृष्ण कुमार तक पाठ्यचर्या के विकेन्द्रीकृत नजरिये की सिफारिशें होती रही हैं, जो अधिकांश संवेदनशील शिक्षाविदों द्वारा अनुमोदित होता रहा है। साथ ही, इस बात को भी नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता है कि शिक्षा के संदर्भ में बिहार की स्थिति राष्ट्रीय सामान्य स्थिति की तुलना में विशिष्ट और अलग है। संदर्भगत आवश्यकता को देखते हुये, राज्य के लिये अलग पाठ्यचर्या की रूपरेखा की आवश्यकता महसूस की गई। आर्थिक पिछड़ापन या मानव

विकास सूचकांक में बिहार निम्नतम पायदान पर है, यहाँ तक कि शहरीकरण का प्रतिशत भी राष्ट्रीय औसत 27.78 प्रतिशत की तुलना में केवल 10.47 प्रतिशत है। बिहार में जाति आधारित सामाजिक स्तरीकरण की एक दृढ़ परंपरा है। शैक्षणिक अधिसंरचना का स्तर सामान्यतः निम्न रहा है। इन सभी सीमाओं के बावजूद राज्य की अपनी एक शक्ति है और यहाँ के छात्र अन्य जगहों पर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित कर रहे हैं।

मार्गदर्शक सिद्धान्त :

बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा शिक्षा की एक ऐसी प्रणाली विकसित करने को प्रतिबद्ध है जो समानता, सद्भाव और उत्कृष्टता को बढ़ावा दे सके। बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा के मार्गदर्शक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं : –

1. शिक्षा को विद्यालय के बाहर प्रकृति, समाज और जीवन से जोड़ना,
2. सकारात्मक लेकिन आलोचनात्मक नजरिया विकसित करने के लिये पाठ्यपुस्तकों तथा शिक्षण–अधिगम रणनीति का पुनर्निर्माण,
3. सीखने की प्रक्रियाओं को मजबूत करने के लिये कक्षाओं व परीक्षाओं को नया रूप देना,
4. बच्चों का बहुआयामी विकास तथा उनके व्यक्तिगत विशिष्टताओं को नया रूप देना,
5. बच्चों की देखभाल इस प्रकार से करना कि वे जागरूक, सक्षम एवं संवेदनशील नागरिक बन सकें जो अपने सामाजिक सरोकारों से जुड़े हों।

विमर्श के बिन्दु :

- एनसीएफ–2005 व बीसीएफ–2008 के मार्गदर्शक सिद्धान्तों में आप क्या समानता और अन्तर देखते हैं?

अध्याय–2 में शिशु शिक्षा एवं किशोर शिक्षा के साथ–साथ, अभिवंचित बच्चों के मुद्दों को उठाया गया है, जो राज्य में बच्चों की आबादी के एक बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्हें सर्वोत्तम शिक्षा कैसे दी जा सके यह राज्य स्तरीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा की सबसे बड़ी चुनौती बन कर उभरी है।

अध्याय–3 में शिक्षकों से संबंधित मुद्दे का वर्णन है – जिसमें उनकी बदलती भूमिका, उनके प्रशिक्षण की आवश्यकता, भावी शिक्षकों की तैयारी और संस्थागत व्यवस्था की चर्चा की गई है।

अध्याय–4 पाठ्यचर्या के मुद्दे, इसके क्षेत्र व रणनीतियों से जुड़ा है। न केवल यह भाग सबसे लम्बा है बल्कि सबसे महत्वपूर्ण भी। एनसीएफ 2005 की ही तरह इस अध्याय में पाठ्यचर्या में विषयों के चुनाव की समस्या को स्वीकारा गया है। साथ ही यहाँ स्तर आधारित चुनाव तथा विषय की परिभाषा व सीखने–सिखाने की शैलियों की चर्चा है। यहाँ पाठ्यक्रम के चार परम्परागत हिस्से – भाषा, गणित, विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के अलावा पर्यावरण शिक्षा को विशिष्ट क्षेत्र के रूप में लिया गया है, हालाकि इसकी प्रकृति अन्य चार की तुलना में अलग है। बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा बहुत हद तक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या से सहमत है कि परमपरागत विषयों के अध्यापन की नीतियों में बदलाव की

आवश्यकता है। पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा एक व्यापक बदलाव ला सकता है, जो इसके खुले आयाम के कारण संभव है। महज पाठ्यपुस्तकों से कक्षा में कैद पर्यावरण की पढ़ाई अक्सर परीक्षा की तैयारी के सिवाय कुछ नहीं देती। उसकी सार्थकता संदिग्ध है और वह शायद ही 1977 के तिबलिस सम्मेलन की मूलभावनाओं को पूरा कर पाये। इन मूल विषयों के अतिरिक्त पाठ्यचर्या में अब उन क्षेत्रों को शामिल करते हैं, जिन्हें कल तक सह–पाठ्यचर्या क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। जैसे कला, स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा, योग, शिक्षा में काम तथा अंततः मूल्य आधारित शिक्षा। एनसीईआरटी के फोकस समूह ने काफी रोचक व महत्वपूर्ण सलाह दी है तथा बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा में इस अन्तर्दृष्टि का भरपूर उपयोग सामयिक बदलावों के साथ किया गया है।

अध्याय–5 ग्रामीण शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या का है, जो बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा का सबसे विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका कारण है कि बिहार की जनसंख्या में ग्रामीण बच्चों की संख्या नब्बे फीसदी के आस–पास है। एक ओर अगर यह अध्याय गाँव को समझने एवं ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में शिक्षा को देखने की बात करता है, तो दूसरी ओर यह भारत में लागू किये गये शिक्षा के सबसे प्रमुख प्रयोग बुनियादी शिक्षा की ओर भी देखता है। यहाँ इस बात की चर्चा करना समीचीन होगा कि बुनियादी शिक्षा की अवधारणा सबसे पहले महात्मा गाँधी द्वारा उत्तर बिहार के चंपारण जिले में लागू की गई और बाद में बुनियादी विद्यालयों की एक पूरी श्रृंखला ही पूरे राज्य में स्थापित हुई। दुर्भाग्यवश इस अहम् प्रयोग को भुला दिया है। बुनियादी शिक्षा का यह प्रयोग ग्रामीण बच्चों में स्वालंबन, समानता एवं सौहार्द्र बढ़ाने का महत्वपूर्ण कदम था और आज भी ग्रामीण शिक्षा की रणनीति बनाने में इस प्रयोग का अनुभव काफी लाभप्रद और दूरगामी महत्व का है। अतः हम इस अध्याय के महत्व को देखते हुये थोड़े से काट–छाँट के साथ पूरे अध्याय को दे रहे हैं।

अध्याय–6 पाठ्यचर्या क्रियाशीलन पर केन्द्रित है। इसका आरंभिक भाग इस बात की संभावना की तलाश करता है कि पाठ्यपुस्तकों व शिक्षण सामग्री का भरपूर उपयोग कैसे किया जाए। शिक्षकों के परे कक्षा में पाठ्यपुस्तकों का अनिवार्यतः प्रवेश तथा सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में निश्चित योगदान बनता है, इसलिये सीखने की प्रक्रिया को बगैर संकुचित किये इस साधन का पूरा इस्तेमाल किया जाना चाहिए। आकलन एवं मूल्यांकन को भी इसी अध्याय में शामिल कर लिया गया है, हालाँकि शिक्षा में इस विषय पर आज भी आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा की तरह यहाँ भी कुछ क्षेत्रों के मूल्यांकन में परीक्षा प्रणाली की सीमाएँ स्वीकार की गई हैं। साथ ही, पाठ्यचर्या पर प्रकाशित अन्य रिपोर्टों की तरह मूल्यांकन को सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग के रूप में मान्यता प्रदान किया गया है।

अध्याय–7 विद्यालय, सीखने–सिखाने का माहौल एवं पाठ्यचर्या निर्माण का है। यह अध्याय इस दस्तावेज की अपेक्षाकृत नई विशिष्टता है – इस आधार पर कि पाठ्यचर्या अपना वास्तविक रूप विद्यालय में ग्रहण करती है। विद्यालय को एक स्वतंत्र इकाई मानते हुए, विद्यालय स्तर पर पाठ्यचर्या निर्माण की तलाश की गई है। इस बात की संभावना पर विशेष रूप से बल दिया गया है कि शैक्षणिक स्थलों व विद्यालय के अन्दर सीखने के मौकों को कैसे गुणित किया जाये ताकि सीखने के उद्देश्यों को पूरा किया जाए।

अध्याय–8 व्यवस्थागत सुधारों व कार्यात्मक मुद्दों का है जो काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि बिना एक सक्षम व्यवस्था तथा स्पष्ट कार्यात्मक रणनीति के पाठ्यचर्या पुनर्निर्धारण का सारा

प्रयास आरम्भ ही नहीं हो पायेगा। बिहार राज्य ने पंचायती राज्य संस्थाओं के लागू होने तथा विद्यालय प्रणाली के, पंचायती राज संस्थाओं को आंशिक हस्तांतरण ने नई स्थितियाँ पैदा की है जो बीसीएफ के उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक होगा।

अध्याय–9 आगामी योजना से संबंधित है।

बच्चों की पाठ्यपुस्तकें : शिक्षा, ज्ञान एवं समाजीकरण के माध्यम के तौर पर

जैसा कि हम जानते हैं कि विद्यालय में विद्यार्थियों के समग्र विकास में योगदान देने वाली सभी गतिविधियां पाठ्यचर्या पर केंद्रित होती हैं। एक तरफ पाठ्यचर्या और उसके लेनदेन को समझना सभी हितधारकों को पाठ्यपुस्तक की सामग्री, संज्ञानात्मक एवं मानवीय मूल्यों के विकास तथा जेंडर से संबंधित सरोकारों को एकत्रित करने एवं अधिगम की प्रक्रिया में सभी विद्यार्थियों को समावेशन प्रक्रिया से जुड़ने में मदद करता है तो दूसरी तरफ पाठ्यक्रम कक्षावार और विषयवार पढ़ाए जाने वाले विषयों की सूची प्रदान करता है। इस क्रम में पाठ्यपुस्तकों की महत्वपूर्ण भूमिका है. पाठ्यपुस्तकें, पाठ्यक्रम में शामिल विषयों/विषयवस्तुओं पर सामग्री प्रदान करती है। वस्तुतः पाठ्यपुस्तक सभी विद्यार्थियों के लिए एक मुद्रित/डिजिटल शिक्षण संसाधन है जो विद्यार्थियों के शैक्षिक, ज्ञानात्मक विकास और समाजीकरण को दिशा प्रदान करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षा के बारे में कहा गया है कि शिक्षा किसी राष्ट्र के लिए वर्तमान में सुनहरे कल के लिए पूंजी निवेश है। इस विनियोग के माध्यम है पाठ्यपुस्तकें एवं अध्यापक. पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थी जीवन में अनुशासन की भावना का विकास कर सकते हैं। भारत जैसे देश में पाठ्यपुस्तक अध्यापक के हाथ में बहुत ही महत्वपूर्ण और आवश्यक उपकरण है जो की कक्षा में पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों तक प्रेषित करने में उचित अवसर प्रदान करता है। यह सूचना और ज्ञान के संप्रेषण के मुख्य द्वार हैं। एक अच्छी पाठ्यपुस्तक वर्षों तक विद्यार्थी का मार्गदर्शन करती है ।

ज्ञान ग्रहण करने की प्रक्रिया विद्यार्थी के सक्रिय ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में शामिल रहती है जिसमें पाठ्यपुस्तकें एक ऐसा साधन बनती है जो उदाहरण, संकेत, अनुसरण कार्यक्रम एवं सिद्धांतों का परिचय प्रदान करती है. ज्ञान ग्रहण और सृजन की इस प्रक्रिया में पाठ्यपुस्तकें शिक्षा और शैक्षिक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बन कर संपूर्ण प्रक्रिया को सम्पादित करते रहती है जिससे बच्चों का सीखना सार्थक हो सके. इसी क्रम में समाजीकरण के तमाम आयाम भी पाठ्यपुस्तकों का अभिन्न हिस्सा बनकर बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया को दिशा और गति प्रदान करते है।

व्यक्ति में ज्ञान एवं अनुभवों को संचित करने की प्रवृत्ति होती है। पुस्तक मानवीय ज्ञान एवं अनुभवों को संचित करने का प्रमुख साधन है। यह ज्ञान संचयन एवं अर्जन में सहायक ही नहीं होती वरन पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाती है। मनुष्य पुस्तक के रूप में प्राचीन तथ्यों एवं अनुभवों को संजोकर भावी पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। पाठ्यपुस्तक से तात्पर्य ऐसी शैक्षिक सामग्री से है जो पढ़ने योग्य हो तथा जिसे पढ़कर ज्ञान की प्राप्ति हो। यहाँ ज्ञान को व्यापक सन्दर्भ में देखा जाना अपेक्षित है. शिक्षा की प्रक्रिया को निश्चित, नियमित एवं उपयोगी बनाने के लिए सार्थक क्रियाओं की एक क्रमिक योजना प्रस्तुत की जाती है जिसे हम पाठ्यक्रम कहते हैं। पाठ्यक्रम को अधिक

स्पष्ट रोचक एवं प्रभावशाली विधि से प्रस्तुत करने के लिए पाठ्यपुस्तकों की रचना की जाती है।

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थान के लिए अत्यंत आवश्यक है और इसमें पाठ्यपुस्तकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय में नामांकन के साथ ही विद्यार्थी पाठ्यपुस्तकों से परिचित होता है। सच पूछा जाए तो पाठ्यपुस्तक वर्तमान सन्दर्भ में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है. दुसरे शब्दों में पाठ्यपुस्तक स्कूली शिक्षा की आधारशिला होती है। इसके बिना औपचारिक शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है। पाठ्यपुस्तकें शिक्षा को सरल एवं सुबोध बनाती है। शिक्षा के प्रसार में पाठ्यपुस्तक सहायक होती हैं। पाठ्यपुस्तक सीखे हुए ज्ञान को स्थाई बनाने में मदद करती है जिसका व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है. पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों के विकास व वांछित मनोभावों को दृढ़ बनाने में सहायक होती हैं. बच्चों को बचपन से ही पढ़ने की आदत डालने में पाठ्यपुस्तकें मदद करतीं है साथ ही पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों को देश–विदेश एवं सामाजिक पारिवारिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं से परिचित कराती हैं। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पाठ्यपुस्तकें शिक्षा, ज्ञान एवं समाजीकरण के माध्यम के तौर पर कार्य करती है.

वर्तमान संदर्भ में बच्चों की पाठ्यपुस्तकें कुछ इस रूप में होनी चाहिए कि उनके शैक्षिक और ज्ञानात्मक विकास के साथ–साथ समाजीकरण की प्रक्रिया सरल और सहज हो सके. इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यपुस्तकें भी विद्यार्थी केंद्रित हो। विद्यार्थी केंद्रित पाठ्यपुस्तकों में निम्नलिखित का ध्यान रखा जाना अपेक्षित होगा –

- कम जानकारी (सूचना) और अधिक गतिविधियों के साथ अंतः क्रियात्मकता को बढ़ावा देना ।
- विद्यार्थियों को अपने स्वयं के ज्ञान को प्रतिबिंबित करने और निर्माण करने के लिए स्थान प्रदान करना ।
- देश की विविधता को शामिल करना।
- संवैधानिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता का प्रदर्शन करना ।
- सामाजिक सरोकारों जैसे जेंडर समावेशन आदि के प्रति संवेदनाओं के लिए जगह प्रदान करना।
- काम करने के लिए जगह प्रदान करने का प्रयास करना।
- आईसीटी को स्थान प्रदान करने का प्रयास करना।
- अंतर्निहित मूल्यांकन करना।
- कला स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा को एकीकृत करना।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि शिक्षा जगत में पाठ्यपुस्तकों का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के साधन के रूप में पुस्तक ज्ञान संचय और अर्जन में सहायक ही नहीं वरन पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पाठ्यपुस्तक विद्यार्थी और अध्यापक के बीच शैक्षिक प्रक्रिया का माध्यम है। सामान्य अर्थों में कहा जा सकता है कि पाठ्यपुस्तक विद्यार्थी के मानसिक बौद्धिक एवं चारित्रिक विकास में सहायक होती है एवं उनके बेहतर समाजीकरण में मदद करती है।

स्थानीय पाठ्यचर्या की समझ

अपनी स्थानीय आवश्यकताओं एवं स्थितियों तथा भविष्य की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए स्थानीय संसाधनों एवं कारगर शैक्षणिक अनुभवों के आधार पर शामिल किए जाने वाले विषयों के संयोजन एवं परिष्कार का निर्णय किया जा सकता है। अधिकाधिक विभिन्नताएँ संभवतः इस ढंग से प्रस्तुत की जा सकती हैं कि उसमें उदाहरणों या चित्रों का चयन किया जाता हो अथवा पाठों का अधिगमन होता हो। तथापि, ग्रामीण क्षेत्रों की पाठ्यचर्या में कृषि एक विशेष स्थान की हकदार है। इसे अतिरिक्त विषय के रूप में शामिल किया जा सकता है या फिर इसे ऐसे उदाहरणों और गतिविधियों के रूप में रखा जा सकता है जिनके जरिए संबंधित पाठ समझाए जाते हैं, उदाहरणार्थ गाँवों में जिस चीज की खेती होती है उसके बारे में विभिन्न ढंग से चर्चा/गतिविधि आयोजित कर भाषा, गणित, पर्यावरण एवं सामाजिक विज्ञान की अवधारणा स्पष्ट की जा सकती है। दूसरी ओर, महानगर के बच्चों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों के लिए यातायात के नियमों की जानकारी स्पष्टतः कम महत्वपूर्ण है। ग्रामीण विद्यालयों में पंचायतों और ग्रामीण विकास से संबंधित मुद्दों का विस्तार से जिक्र होना चाहिए जबकि शहरी स्थानीय निकायों का पंचायतों से तुलना करते हुए एक संदर्भ के रूप में उल्लेख किया जा सकता है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी अथवा कम्प्यूटर पर कम ध्यान दिया जाय, लेकिन गाँवों में पढ़ाई के दौरान उनकी स्थानीय समस्याओं तथा परिस्थितियों के संदर्भ में उनके संभावित अनुप्रयोग पर काफी हद तक चर्चा होनी ही चाहिए।

ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक परिवेश का बहुत अधिक महत्व है और गाँव के बच्चों को इसका सर्वोत्तम उपयोग करना ही चाहिए। उनकी पर्यावरणीय समस्याएँ आम तौर पर भिन्न होती हैं और पर्यावरण संबंधी उनके अध्ययन का निर्णय उसी लिहाज से किया जाना चाहिए। उदाहरणस्वरूप बाढ़ प्रभावित गाँव के बच्चों को तैरना तथा बाढ़ के समय विभिन्न समस्याओं से जूझने की तैयारी अवश्य उपयोगी है जिसका क्रमशः अभाव होता जा रहा है। बच्चे अंधविश्वास का शिकार बने बगैर अपने बुजुर्गों, लोकगाथाओं और गाँव में प्रचलित विभिन्न प्रकार के परिस्थिति की हितैषी व्यवहारों से पर्यावरण संरक्षण के पारंपरिक मानकों के बारे में सीख सकते हैं। जैसे– उत्तर बिहार (मिथिलांचल) में मेष संक्रांति (14 या 15 अप्रैल) को जूड़शीतल पर्व मनाते हैं जिसमें सभी पुष्प, पादपों, वृक्षों, बाँसों सहित रास्ते तक पर पानी डाला जाता है। सम्भव है कि हमारे पूर्वजों द्वारा इन प्रचलनों के पीछे पर्यावरण संरक्षण की सुविचारित धारणा हो। उन्हें पर्यावरण संरक्षण की नई तकनीकों एवं विचारों से भी अवगत कराना चाहिए। नए ज्ञान के आलोक में अनेक पारंपरिक व्यवहारों की पुनर्व्याख्या भी संभव है। देखा जा रहा है कि वर्षों पूर्व की देशी चिकित्सा पद्धति जिसे पिछले दिनों तक अवैज्ञानिक माना जा रहा था, परन्तु आज उस पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पुनः विचार किया जा रहा है। इसी प्रकार ग्रामीण परिवेश में प्रचलित डाक/घाघ वचन किसानों के पास संरक्षित है, जिन्हें मौसम विज्ञान की वैज्ञानिक भविष्यवाणियों से तुलना कर प्रामाणिकता की तलाश की जा सकती है।

विद्यालय स्तरीय पाठ्यचर्या का औचित्य :–

यदि उच्चतर स्तर पर अर्थगर्भित उसूल बना लिए जाएँ और एक व्यापक रूपरेखा तैयार भी कर ली जाए, तब भी वास्तविक पाठ्यचर्या खुद विद्यालय में आकार ग्रहण करती है।

अधिसंरचना, अध्यापक, प्रधानाध्यापक अथवा पहचान के मामले में विद्यालयों में भिन्नताएँ होती हैं और उसी प्रकार सीखने–सिखाने की वास्तविक स्थितियाँ बहुत भिन्न होती हैं और उनमें मौजूद संभावनाएँ भी अलग–अलग होती हैं। सभी विद्यालयों को एक तराजू पर तौलना न तो संभव है और न ही आवश्यक है। लेकिन प्रत्येक विद्यालय में सीखने के अवसर एवं माहौल में सुधार तथा वृद्धि का प्रयास अवश्य किया जाना चाहिए। अतः इस निष्कर्ष पर पहुंचना लाजिमी होगा कि पाठ्यचर्या को अंतिम ठोस आकार विद्यालय में दिया जाएगा और इस लिहाज से विद्यालय को यह जिम्मेवारी सचेत रूप से उठानी चाहिए। प्रत्येक विद्यालय के प्रधानाध्यापक और अध्यापकों को पाठ्यचर्या की एक सामान्य समझदारी होनी चाहिए और उन विचारों से पर्याप्त रूप से अवगत होना चाहिए जो उन्हें बच्चों के लिए पाठ्यचर्या के रूपांकन में मदद करेंगे। सामान्यतया अध्यापकों की तो बात ही मत कीजिए, बहुत कम प्रधानाध्यापकों को शिक्षा प्रणाली के निर्माण में उनकी संभावित भूमिका के बारे में कोई जानकारी रहती है। उनकी आदत यही होती है कि विद्यालय में उनसे कौन सा काम अपेक्षित है, इसके बारे में ऊपर से दिशानिर्देश जारी किए जाएँ। इस प्रकार, यदि विद्यालयों द्वारा अपनी पाठ्यचर्या निर्माण हेतु किसी प्रकार का क्षमता निर्माण आवश्यक है, तो यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि विद्यालयों, प्रधानाध्यापकों और अध्यापकों को व्यापक स्वायत्तता प्रदान की गई हो।

उन्हें यथासंभव अपने पाठ्यचर्या निर्माण में सहायता करने के उद्देश्य से यह चर्चा करना सार्थक होगा कि आखिरकार विद्यालय क्या है और एक अच्छा विद्यालय किस प्रकार का होना चाहिए।

विद्यालय का विचार :–

आरंभिक तौर पर विद्यालय शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया को सुगम बनाने हेतु निर्मित 'एक अंतःक्रियात्मक भौतिक स्थल' है। प्रत्येक विद्यालय में एक भवन अपेक्षित होता है जिसमें कुछ वर्गकक्ष होते हैं और शौचालय, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल का मैदान इत्यादि अन्य सुविधाएँ मौजूद होती हैं। अधिकारियों द्वारा विभिन्न स्तरों के विद्यालयों के मामले में इन सुविधाओं के लिए कुछ न्यूनतम मानक तय किए जा सकते हैं। इसके साथ ही, किसी विद्यालय को विद्यार्थी, अध्यापक और अन्य सहायक कर्मियों से युक्त एक प्रणाली के तौर भी देखा जा सकता है। इन समूहों के साथ उद्देश्यपूर्ण अंतःक्रिया के अलावा, विद्यालय आमतौर से समाज के साथ, विशेष कर वहाँ अध्ययनरत बच्चों के माता–पिता के जरिए जीवंत संपर्क रखता है। प्रणाली के अंदर शिक्षाशास्त्रीय तथा प्रबंधकीय प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं और निष्पतियों और परिणामों के बारे में अपेक्षाएँ रहती हैं।

किसी विद्यालय का यह दोनों चित्रण विद्यालय जैसे परिषद् के बारे में उत्तर–औद्योगिक क्रांति की अवधारणा पर आधारित है जो उत्पादक केन्द्र के रूप में संगठित कारखाने से कई तरह से मिलता–जुलता है। फ्रेरे जैसे आधुनिक दौर के समीक्षकों ने विद्यालय की तुलना कारागर, चर्च या अस्पताल से की है जिसकी अपनी नियामक सत्ता होती है। ये तमाम चित्रण स्पष्ट तौर पर एक ऐसे विद्यालय के विचार से जुड़े हैं जो यांत्रिक तौर पर कार्य करता है जैसा इसे नहीं होना चाहिए। निश्चित रूप से बहुत से प्रबुद्ध लोगों की स्मृति में विद्यालयों के और भी पसंदीदा संस्करण मौजूद हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में दिए गए निम्नलिखित चित्रण में आप उसकी एक झलक पा सकते हैं:–

"विद्यालय के मैदान में दोस्तों के साथ खेलना एवं हाथापाई करना, अंतराल के दौरान बेंच पर बैठकर दोस्तों के साथ गपशप के लिए मुक्त समय, विद्यालय में सुबह की प्रार्थना और अन्य समारोहों के अवसर पर एकत्र होना, वर्गकक्ष में अध्ययन करना और वर्ग परीक्षा के पहले चिंतित होकर किताब के पन्ने पलटना और सहपाठियों एवं अध्यापकों के साथ बाहर की यात्राएँ –ये तमाम गतिविधियाँ मिलकर इसे ज्ञानार्जन करने वाले समुदाय का चरित्र प्रदान करती हैं।"

विद्यालय एक परिषद् है – वास्तव में प्रत्येक विद्यालय को ऐसे परिषद् के रूप में देखा जाना चाहिए जिसकी अपनी पहचान होती है, अपनी परंपरा होती है, विद्यालय के विशिष्ट पूर्ववर्ती विद्यार्थियों व अध्यापकों के संभवतः ऐसे रिकार्ड एवं स्मृतियाँ मौजूद होती हैं जिन पर वहाँ के विद्यार्थी समुचित तौर पर गर्व कर सकें। पुराने उच्च विद्यालयों समेत हमारे अधिकांश सरकारी विद्यालय आज पहचान के संकट से घिरे हैं। न उन्हें अपने अतीत का कोई बोध हैं, न कोई भविष्य दृष्टि है और न ही उनकी कोई संस्थानिक पहचान व चरित्र है।

परिषद् के बारे में सोचने और इसके विकास की योजना बनाने की चुनौती और पाठ्यचर्या रणनीति बनाने के अवसर अनुमानतः संस्थानिक पुनर्निर्माण के लिए अत्यावश्यक प्रेरणा मुहैया कर सकते हैं।

सच्चाई यह है कि ग्रामीण संदर्भ में (और बिहार में यह संदर्भ बहुत व्यापक है!) विद्यालय व्यापक समुदाय के लिए और भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। जैसे विश्वविद्यालय अकादमिक और सामाजिक मुद्दों पर समाज में नये विचार एवं बहस को जन्म देने में महती भूमिका अदा कर सकते हैं, उसी प्रकार गाँव में उच्च विद्यालय या संभवतः मध्य विद्यालय भी परिवर्तन के केंद्र बन सकते हैं। यह एक ओर अध्यापकों की गुणवत्ता और उनके सामाजिक सरोकार की गहनता पर तथा दूसरी ओर समुदाय के साथ विद्यालय के संपर्क पर निर्भर करेगा। शायद गाँव में स्वच्छता अभियान शुरू करने की सर्वाधिक उपयुक्त जगह विद्यालय ही है। विद्यालय सरकार द्वारा बच्चों संबंधी अनेक पहलकदमियों के लिए सबसे उपयुक्त नोडल एजेंसी बन सकते हैं।

विद्यालय के भौतिक पर्यावरण, विद्यालय में सीखने–सिखाने का माहौल, समावेशी शिक्षा व समावेशी महौल, सभी बच्चों की भागीदारी, समुदाय और विद्यालय एव पाठ्यचर्या स्थल और गतिविधियां की चर्चा आप एनसीएफ 2005 में देख चुके है।इन बिन्दुओं पर विस्तृत चर्चा बीसीएफ 2008 में भी है। इसे आप दोनों में देख सकते हैं। हम इसे यहाँ इंगित करके इसके विशिष्ट एवं दूरगामी हिस्से पर चर्चा करेंगे।

विद्यालय अपनी पाठ्यचर्या कैसे तैयार करें?

सबसे पहले तो आम तौर पर शिक्षकों तथा खास तौर पर प्रधानाध्यापक को पाठ्यचर्या के महत्त्व का बोध होना चाहिए और उन्हें खुद को इस कार्यभार के लिए क्रमशः तैयार करना चाहिए। उनके द्वारा तैयार पाठ्यचर्या अपने आप में स्थूल, अपूर्ण अथवा यथार्थरहित भी हो सकती है, फिर भी, उन्हें उस पर आपस में विचार–विमर्श करना चाहिए तथा जानकार बाहरी व्यक्ति से परामर्श लेकर उसमें सुधार करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक विद्यालय के पास अपनी विशिष्ट पाठ्यचर्या हो सकती है। जहाँ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तथा राज्य पाठ्यचर्या की रूपरेखा का अध्ययन करके वे पाठ्यचर्या के तत्वों–अवयवों को अच्छी

तरह समझ सकते हैं, वहीं संकुल संसाधन केंद्र और प्रखंड संसाधन केंद्र के स्तर पर विचार–विमर्शों के कुछ दौर भी अत्यंत मददगार होंगे। शिक्षकों के लिए तत्काल उपलब्ध संदर्भ के बतौर कुछ प्रकार की रूपरेखाएँ सामान्यतया इस स्पष्ट चेतावनी के साथ सुझाई जा सकती है कि ये महज दृष्टांत हैं जिन्हें विद्यालय की विशिष्ट स्थिति को ध्यान में रखकर और भी संशोधित–सुपरिष्कृत करने की जरूरत है। तथापि, कुछ अवश्य विचारणीय तथा शामिल करने योग्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तथा राज्य पाठ्यचर्या की रूपरेखा में उल्लिखित उद्देश्यों से मदद लेकर विद्यालय स्तर के उद्देश्यों की गणना फिर उस विस्तृत ढाँचे के अंदर शिक्षा के विशिष्ट स्तर आधारित उद्देश्य निर्धारित किए जा सकते हैं। ये स्तर निम्नलिखित हो सकते हैं:–

   स्तर 1: पूर्व–विद्यालय तथा कक्षा 1 एवं 2,

   स्तर 2: कक्षा 3 से 5 तक,

   स्तर 3: कक्षा 6 से 8 तक,

   स्तर 4: कक्षा 9 एवं 10,

   स्तर 5: कक्षा 11 एवं 12

2. **संसाधन** : विद्यालय की अधिसंरचनात्मक सुविधाओं, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की सूची तैयार करके विद्यालय का पूरा खाका तैयार करना चाहिए ताकि कार्ययोजना बनाई जा सके।

   अधिसंरचना के स्तर में सुधार तथा शिक्षण हेतु संसाधनकर्मी के रूप में सहयोग के लिए संभावित सामुदायिक सहायता का आकलन एवं अभिलेख तैयार करना मददगार होगा। पंचायती राज संस्थाओं, विद्यालय शिक्षा समिति और अभिभावक–शिक्षक संघ अथवा माता संघ के सदस्यों से अक्सर भारी मदद मिल सकती है। उनमें से कम से कम कुछ लोगों को तो सहायता के लिए अवश्य आगे आना चाहिए।

   कुछ सुविधाएँ संकुल संसाधन केंद्र, प्रखंड संसाधन केंद्र अथवा समीपवर्ती विद्यालय या महाविद्यालय में उपलब्ध हो सकती हैं, जैसे कम्प्यूटर प्रयोगशाला या समृद्ध पुस्तकालय अथवा विज्ञान प्रयोगशाला। अध्यापक अथवा प्रधानाध्यापक उनसे संपर्क कर सकते हैं और उनके सहयोग तथा भूमिका को शामिल करते हुए विद्यालय संबंधी गतिविधियों की योजना बना सकते हैं।

3. **विद्यालय के पोषक क्षेत्र की भौतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ :–**

   शिक्षकों को विद्यालय के भौगोलिक परिवेश को ध्यान में रखना चाहिए जिसका वे समय–समय पर उपयोग कर सकते हैं। बिहार को मोटे तौर पर गंगा के मैदान, उत्तर बिहार के बाढ़ प्रभावित क्षेत्र तथा पहाड़ी क्षेत्र में विभाजित किया जा सकता है। इनके अलावा, अन्य भौतिक विशिष्टताएँ भी हो सकती हैं जिन्हें पाठ्यचर्या संबंधी योजना का आधार होना चाहिए।

   क्षेत्र में ऐतिहासिक स्मारक, पुरातात्विक स्थल अथवा ऐतिहासिक महत्व के स्थल हो सकते हैं जिनके बारे में बच्चों को अपने अध्ययन के दौरान जानना चाहिए।

बच्चों को अच्छी तरह जानने के लिहाज से उनके पास विद्यालय के तमाम बच्चें का आर्थिक–सामाजिक खाका भी होना चाहिए। भाषायी पृष्ठभूमि और माता–पिता के सहयोग की संभावना व अन्य चीजों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इससे उन्हें उपयुक्त शिक्षण–अधिगम रणनीतियों के निर्माण में मदद मिलेगी।

किसी क्षेत्र के अपने सामाजिक–आर्थिक अथवा पर्यावरण संबंधी संसाधन या समस्याएँ हो सकती हैं जो अध्ययन का विषय, या यहाँ तक कि ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए प्रासंगिक हस्तक्षेप का मुद्दा भी बन सकते हैं।

किसी अंचल में कोई लोकप्रिय लोक कला भी हो सकती है जिसका बेहतर उपयोग किया जा सकता है। संस्कृति का उपयोग संसाधन तथा अनुदेश का माध्यम, दोनों रूपों में हो सकता है । मिथिला के पास अपने समृद्ध सांस्कृतिक संसाधन हैं जबकि अन्य अंचलों की अपनी खास सांस्कृतिक विशिष्टताएँ हैं।

संक्षेप में, परिवेश से सुपरिचय तथा आवश्यकतानुरूप उनके संभावित उपयोग की मानसिकता शिक्षा को एक खास संदर्भ देने तथा नवाचारी बनाने के लिहाज से शिक्षकों के लिए मददगार होगी। इस प्रकार विद्यालय को काफी हद तक समाज से जोड़ा जा सकता है जिससे बच्चे सीखने के अधिक मौके पाएँगे।

शिक्षकों की तैयारी :–

पाठ्यचर्या निर्माण तथा उसके अनुवर्तन के लिए प्रधानाध्यापकों तथा अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है। जहाँ प्रधानाध्यापकों तथा संकुल संसाधन केंद्रों के समन्वयकों को जिला शैक्षिक प्रशिक्षण केंद्र या प्रखंड संसाधन केंद्र के स्तर पर प्रशिक्षण दिया जा सकता है, वहीं अन्य अध्यापकों को संकुल संसाधन केंद्र की मासिक बैठक में, जिन्हें प्रशिक्षण कार्यक्रम समझा जाएगा, विभिन्न प्रसंगों से परिचित कराया जा सकता है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में जिन क्षेत्रों को सम्मिलित किया जा सकता हैं उनमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं:–

नोटः

–

NEP 2020 के आलोक में School complex की अवधारणा की संकल्पना की गई है। जिसके अर्न्गत स्कूल परिसर नामक एक समुहन सरंचना की स्थापना होगली जिसमें 5 से 10 किलोमीटर के दायरे में आँगन बाड़ी केन्द्रों सहित अपने पड़ोस के प्रारम्भिक स्तर के सभी विद्यालयों का गवर्नेंस सुधरेगा। इस योजना में शिक्षण अधिगम संसाधन भी शामिल रहेगा। School cmplex के तहत सभी विद्यालयों के बीच अकादमेक सहयोग रहेगा। जैसे कि एक विद्यालय का शिक्षक दूसरे विद्यालय में जाकर शिक्षा दे सकेंगे जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार होगा तथा सभी विद्यालयों को इसका लाभ मिलेगा।

- पाठ्यचर्या क्या है?
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा और राज्य पाठ्यचर्या की रूपरेखा के उद्देश्य तथा मार्गदर्शी सिद्धांत,
- बालक और विकास के स्तर,
- अधिगम प्रक्रिया, अधिगम स्थलों की वृद्धि तथा गतिविधि आधारित अधिगम,
- विद्यालय – समस्याएँ एवं संभावनाएँ,
- समावेशी शिक्षा के सिद्धांत एवं व्यवहार,
- विद्यालय निर्माण में प्रधानाध्यापक तथा अध्यापकों की भूमिका,
- समुदाय, पंचायती राज संस्थाएँ, विद्यालय शिक्षा समिति तथा माता–पिता के साथ सहलग्नता,
- अकादमिक योजना समेत विद्यालय विकास योजना,
- कार्ययोजना का अनुश्रवण।

समेकन तथा सीखने–सिखाने में सहयोगी ई–संसाधन

आप ने इस पाठ में पाठ्यचर्या के सामाजिक,आर्थिक, राजनीतिक व शैक्षिक रूपों को समेकित रूप में जाना। साथ ही साथ पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक के अन्तर सम्बन्धों को समझा। इसी के साथ–साथ एनसीएफ–2005 व बीसीएफ–2008 के ढाँचे व अन्तर्वस्तु की समझदारी बनायी। बिहार की पाठ्यचर्या का विशेष जोर ग्रामीण पाठ्यचर्या पर है जो स्वयं विद्यालय की पाठ्यचर्या बने इसके प्रति आग्रही है क्योंकि सभी पाठ्यचर्या अंततः विद्यालय व वर्ग कक्ष के क्रियाकलापों को संयोजित करती हैं।

मूल्यांकन

1. पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम में क्या अंतर है? सोदाहरण व्याख्या करें।
2. पाठ्यचर्या निर्माण में किन–किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए? स्पष्ट करें।
3. शिक्षा, ज्ञान और समाजीकरण के लिए पाठ्यपुस्तक कैसे आवश्यक है? अपने अनुभव के आधार पर चर्चा करें।
4. किसी भी विद्यालय के लिए स्थानीय पाठ्यचर्या क्यों आवश्यक है? स्थानीय पाठ्यचर्चा बनाते वक्त किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
5. क्या पूरे देश में एक समान पाठ्यचर्या आवश्यक है? पक्ष एवं विपक्ष में तर्क सहित उत्तर दें।

संदर्भ सूची

- कुमार, कृष्ण (1993). राज, समाज और शिक्षा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- चाँद किरण (2006). शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य. नई दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय.
- दयाकृष्ण (1997). ज्ञान मिमांसा. जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ ऐकेडमिक.
- शुक्ला, एस.सी, व कुमार, कृष्ण (1978). शिक्षा का सामाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य. नई दिल्ली : ग्रंथ शिल्पी.
- भारत सरकार, (2009). शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009. नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास विभाग.
- बिहार सरकार (2007). समान विद्यालय प्रणाली आयोग प्रतिवेदन. पटना : शिक्षा विभाग.
- Aries, P. (1965). *Centuries of Childhood-A social history of the family life.* Random House Inc: New York. Chapter 1: The Ages of Life, Chapter 2: The Discovery of Childhood, and conclusion - The two concepts of childhood.
- Illich, Ivan (1973). Deschooling Society. Penguin Books.
- Saraswati, T.S. (1999). Culture, Socialisation and Human Development. New Delhi: Sage
- किशोर, गिरिराज, हिंद स्वराज गांधी का शब्द अवतार, 2009 सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन नई दिल्ली
- गिजूभाई, दिवास्वप्न, 2010 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
- बधेका, जी.(1990), दिवास्वप्न, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली .
- गांधी, एम .(1921) हिंद स्वराज, प्रभात प्रकाशन .
- फुले, जे .(1991), गुलामगिरी, महात्मा फुले समग्र वांग्मय, 69–154 .
- फुले, ज्योतिराव. गुलामगिरी 2011 गौतम बुक सेंटर, नई दिल्ली
- टैगोर, आर. (1973), शिक्षा समस्याः शिक्षा –रविंद्र रचनावली, 6,582 .
- डॉ. जाकिर हुसैन का ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली से 10 मार्च 1936, 08 अप्रैल 1936, तथा 31 मई 1942 को संबोधन
- कृष्णमूर्ति, जी. शिक्षा संवादः छात्रों और शिक्षकों से, कृष्णमूर्ति फाऊंडेशन इंडिया, वाराणसी, 1998 (तृतीय संस्करण).
- कृष्णमूर्ति, जे. शिक्षा एवं जीवन का महत्व, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया वाराणसी, 1993 (तृतीय संस्करण).
- मोंटेसरी, मारिया, ग्रहणशील मन रूबाल मनोविज्ञान का विवेचन, अनुवादक सरला मोहनलाल, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली –
- जॉन, डीवी, डेमोक्रेसी एंड आचार्य, परमेश (2002). आदिवासी समाज और शिक्षा. नई दिल्लीः ग्रन्थ शिल्पी।
- कुमार, कृष्ण (2006). राज समाज और शिक्षा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।
- फ्रेरे, पाओलो (2002). उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र. नई दिल्लीः ग्रन्थ शिल्पी।
- रजा, मूनिस (2002). शिक्षा और विकास के सामाजिक आयाम. नई दिल्लीः ग्रन्थ शिल्पी।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005।

- फोकस ग्रुप के आधार पत्र, 2006।
- बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2008।
- शुक्ला, एस० सी० व कुमार, कृष्ण (1978). शिक्षा का सामाजिक परिप्रेक्ष्य. नई दिल्ली ग्रन्थ शिल्पी।
- सदगोपाल, अनिल (2000). शिक्षा में बदलाव का सवालः सामाजिक अनुबंधन से नीति तक. नई दिल्ली ग्रन्थ शिल्पी।
- Chandra, S.S., Sociology of Education, Atlanlantic Publishers and Distributers (P) Ltd. New Delhi, 2007.
- Durganand, Socialisation of the Indian child, concept publishing company, New Delhi, 1981.
- IGNOU. (2012). Self Learning Material for DPE Enrichment Programme. New Delhi.
- Leadership Development Unitss developed by TESS India
- Michaelis, John V. Social studies for children in a Democracy, Printice - Hall, Inc. Fnglewood Cliffs, N. J., 1956.
- Ruhela S. P., Vyas, K.C., (1970), Sociological foundations of Education in Contemporary India, Dhanpat Rai and Sons, Delhi